विचार
चिंतन
शोध सृजन

ISSN : 2455-4219

आलोचन दृष्टि

Aalochan Drishti

An International Peer Reviewed Refereed
Research Journal of Humanities

वर्ष : 08 अंक : 34 अक्टूबर - दिसम्बर, 2023
Year - 08 Volume - 34 October-December, 2023

प्रधान-संपादक
डॉ० सुनील कुमार मानस

संपादक
डॉ० योगेश कुमार तिवारी

प्रबंध-संपादक
डॉ० सुधीर कुमार तिवारी

वर्ष-8 अंक-34 अक्टूबर - दिसम्बर, 2023 ISSN : 2455-4219

ISSN : 2455-4219

आलोचन दृष्टि

Aalochan Drishti

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal of Humanities

वर्ष - 08	अंक - 34	अक्टूबर-दिसम्बर, 2023
Year - 08	**Volume - 34**	**October-December, 2023**

प्रधान-संपादक

डॉ. सुनील कुमार मानस

संपादक

डॉ. योगेश कुमार तिवारी

प्रबंध-संपादक

डॉ. सुधीर कुमार तिवारी

© **प्रकाशक :**

संपादकीय/प्रकाशकीय पता :–

सृजनश्री न्यास,

आजाद नगर, बिन्दकी, जनपद–फतेहपुर,

उ0प्र0–212635

ई–मेल : aalochan.p@gmail.com

मुद्रण :– जय ग्राफिक्स एण्ड कान्सट्रक्सन,
आई0टी0आई0 रोड़, फतेहपुर–212601।

सदस्यता शुल्क	एक अंक	वार्षिक	आजीवन
व्यक्तिगत	300	1200	10,000
संस्थागत	400	1500	15,000

संरक्षक एवं सलाहकार मंडल

- **प्रो. गिरीश्वर मिश्र,** शिक्षाविद् एवं पूर्व कुलपति, म. गां. अं. हिं. वि., वर्धा (महाराष्ट्र)।
- **प्रो. चितरंजन मिश्र,** पूर्व प्रोफेसर, पं. दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय (उ0प्र0)।
- **प्रो. नंदकिशोर आचार्य,** सुथारों की बड़ी गुवाड़, बीकानेर, राजस्थान–252028।
- **प्रो. सदानंद गुप्त,** निदेशक, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, (उ.प्र.)।
- **प्रो. कृपाशंकर चौबे,** महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, (महाराष्ट्र)।
- **प्रो. माधवेन्द्र पाण्डेय,** हिन्दी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग, मेघालय।
- **प्रो. प्रेमशंकर त्रिपाठी,** आशीर्वाद अपार्टमेन्ट, सी. ए. 5/10, देशबन्धु नगर, कलकत्ता।
- **प्रो. दिलीप सिंह,** इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक (म.प्र.)।
- **प्रो. आर0 एस0 सर्राजू,** हैदराबाद विश्वविद्यालय (तेलंगाना)।
- **प्रो. उमापति दीक्षित,** केन्द्रीय हिंदी संस्थान, आगरा (उ0प्र0)।
- **प्रो. एस0 वी0 एस0 एस0 नारायण राजू,** तमिलनाडु केन्द्रीय विश्वविद्यालय, तमिलनाडु।
- **Shri. Tejendra Sharma,** Harrow & Weealdstone, Middlesex HA3 7AN (U.K.)
- **Mrs. Archana Painyuly,** Islevhusvej, 72 B, 2700, Bronshoj, Copenhagen, Denmark.

संपादक-मंडल

- **डॉ. उदयन मिश्र,** हरिश्चन्द्र पी. जी. कॉलेज, वाराणसी, (उ. प्र.)।
- **डॉ. बलराम शुक्ल,** संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।
- **डॉ. शशिभूषण भट्ट,** संस्कृत विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, (उ. प्र.)।
- **डॉ. दण्डिभोट्ला नागेश्वर राव,** सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग, श्री चंदशेखरेंद्र सरस्वती विश्वविद्यालय, एनात्तूर–कांचीपुरम्, तमिलनाडु।
- **डॉ. आनंद कुमार,** राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हमीरपुर, (उ. प्र.)।
- **डॉ. अमित दूबे,** आर्य महिला पी. जी. कॉलेज, वाराणसी।
- **श्रीमती आकांक्षा अग्निहोत्री,** सरदार पटेल विश्वविद्यालय, बल्लभ विद्यानगर, आनंद–गुजरात।
- **डॉ. वर्षा तिवारी,** पं. शम्भूनाथ शुक्ल विश्वविद्यालय, शहडोल–(म. प्र.)।

विधि-परामर्शदाता

श्री **उमाशंकर त्रिपाठी** (एडवोकेट), सिविल कोर्ट, फतेहपुर उ0प्र0–212601।

नोट : सभी पद अवैतनिक एवं अव्यावसायिक हैं। प्रकाशित शोध–लेखों एवं उसमें दिये गये उद्धरणों के वाद–विवाद संबंधी किसी भी कार्यवाही का शोधकर्ता (लेखक) स्वयं जिम्मेदार होगा। इस तरह के किसी भी विवाद में संपादक, प्रकाशक एवं 'आलोचन दृष्टि' परिवार के किसी भी सदस्य की कोई जवाबदेही नहीं होगी। किसी भी प्रकार के विवाद–संवाद का समाधान फतेहपुर न्यायालय में ही होगा।

संपादकीय

कुछ समय से आलोचना के क्षेत्र में बहुत कुछ **दृष्टि–परिवर्तन** हो रहा है या किया जा रहा है। यह **दृष्टि–परिवर्तन** जनसमूह के मन और मस्तिष्क में भी दिखलाई पड़ रहा है, और उसका हृदय परिवर्तन भी हो रहा है। यह सब होने की प्रक्रिया महज **परिपक्व–चेतना** को व्यक्त करने का प्रयास मात्र है, **परिपक्व–चेतना** की अभिव्यक्ति नहीं, क्योंकि इन सारे प्रयासों के होने के बावजूद भी, जो मूलभूत समस्या है, वह ज्यों–का–त्यों बनी है। उसमें तनिक भी परिवर्तन हमें नहीं दिखलाई दे रहा है। ऐसे में, यह सोचना भी लाज़मी है कि भारत भले ही बड़े परिवर्तन या कहूँ कि क्रांतिकारी–परिवर्तन से गुजर रहा हो, एक प्रकार की बेमानी–सी बात लगती है, क्योंकि हमें जिस लौकिक जीवन–धारा से जागरूक होकर के आगे बढ़ाना है, उसकी ओर हमारा ध्यान ही नहीं जाता है। हम **क्षण–परिवर्तन** को ही– **युग–परिवर्तन** की दृष्टि से देखने के आदी होते जा रहे हैं। **क्षण–परिवर्तन** कभी–भी **युग–परिवर्तन** नहीं हो सकता है क्योंकि **युग–परिवर्तन** संपूर्ण जन समुदाय के भीतर कहीं–न–कहीं कोई–न–कोई बदलाव अवश्य ला देता है और यह तब होता है, जब संपूर्णता में कोई विचार–धारा अपना प्रभाव सामान्य जनता में स्थापित करती है। जितनी भी महान क्रांतियाँ हुई हैं, **युग–परिवर्तन** की एक बड़ी सामाजिक–उपलब्धि की द्योतक हैं। जो दृष्टियाँ तमाम तरह के परिवर्तन करने के बावजूद भी मूलभूत व्यवस्था को तोड़ने में असमर्थ हैं, वे महान या बड़ी अथवा महत्त्वपूर्ण नहीं कही जा सकती।

जो तमाम परिवर्तन की समसामयिक लहरें– हमें दिखाई देती हैं, वे आखिर सफल क्यों नहीं होती ? इसका मुख्य कारण यह है कि जो हमारे वर्तमान या कहूँ आजादी के बाद की शैक्षणिक व्यवस्था है, वह आज भी 1801 ई. में स्थापित 'फोर्ट विलियम कॉलेज', कोलकाता की तरह अपना काम कर रही है, जिसमें हम सत्ता–विशेष के प्रभाव एवं वर्चस्व को बनाए रखने एवं बढ़ाने के लिए– प्रतिबद्ध या वचनबद्ध ही रहते हैं। हमारी संवैधानिक व्यवस्था भी कुछ इसी ओर झुकी हुई– नजर आती है। ऐसे में जो जागरूकता की तमाम बातें आती हैं या उपस्थित हैं, वे सभी जानकारी के **प्रचारात्मक–व्यवस्था** के इर्द–गिर्द ही घूमते हुए– दिखायी देती है। ऐसी व्यवस्था का कोई विशेष–महत्त्व नहीं रहता। समय के साथ वह काल–कलवित भी होती जाती है।

आज जिस समय में हम रह रहे हैं, वह मात्र जानकारी (जिसका संबंध पूरी तरह से टेक्नोलॉजी से जुड़ा हुआ है, वे चाहे शासनिक हो या प्रशासनिक) के वशीभूत हो करके– महनीय होने का यह दावा मात्र है। इन्हीं दावों को लेकर हमारा यह शासनिक एवं प्रशासनिक वर्ग उन्नति एवं विकास की ढींग का स्वांग करके– सीना–फूलाता फिरता है। मज़े की बात यह है कि इस सीना–फूलाने की इस व्यवस्था के पीछे ही अब इस देश का बौद्धिक–समुदाय (बौद्धिक समुदाय करने के पीछे एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था का भावानुभव छिपा हुआ है, जो पश्चिमी विचारधारा की पूरक है कि मनुष्य एक सामाजिक पशु या जानवर है) हाँ में हाँ मिलाता हुआ, गौरव का अनुभव करते हुए या कहूँ कि चापलूसी करते हुए– महत्त्वपूर्ण पद–प्रतिष्ठा का दावेदार भी बनता जा रहा है, और बनी–बनायी बौद्धिक–संपदा और संपन्नता को मटिया–मेल करते हुए या कहूँ कि धूल–धूसरित करते हुए– व्यक्तिगत–समृद्धि को ही लेकर सदैव खुश रहने के आदी हो गए हैं, और अब इसी को वे अपनी सफलता मानते हैं। यह क्रम निरंतर आगे बढ़ता जा रहा है। अगर कुछ दिन ऐसा और होता रहा तो निश्चिय ही **बौद्धिक–चिंतन** की सामाजिक–सौहार्दात्मक हमारी चिंतन–धारा– हमसे विलग हो जायेगी। समाज विश्रृंखल हो जायेगा, अराजकता फैल जायेगी, मनमाना चलने लगेगा।... ऐसा होते हुए नजर भी आ रहा है, दिखलाई भी दे रहा है और सुनाई भी दे रहा है। पर यह दावे के साथ कहा जा सकता है कि इसकी मात्रा अभी बहुत कम है। इसीलिए समाज की व्यवस्था चल रही है। परिवर्तन की अनंत

संभावना भी बनी है। सद्प्रयास के तमाम अवसर भी सुलभ हैं। ऐसे में कुछ बेहतर करना– हर बौद्धिक–व्यक्ति का दायित्व है, जिसके लिए अब कमर कसने की जरुरत है।

हमारे वर्तमान समय की सबसे बड़ी परेशानी का सबक यह है कि जब भी कोई सामाजिक सौहार्द्र की बात शुरू होती है तो वह तुरंत ही एक प्रचारात्मक रूप को ग्रहण कर लेती है। यह **प्रचारात्मक–रूप** फिर तुरंत ही यश, पहचान और महत्ता से जुड़कर मनुष्य की अहंकारात्मक–वृत्ति की 'गर्वता' से जुड़ जाता है और वह अन्ततः सौहार्दात्मक–वृत्ति से अलग हटकर केवल धन–अर्जित करने का मात्र एक साधन बन जाता है। सामाजिक व्यवस्था के उन्नयन की जो उसकी दृष्टि होती है, वह सिकुड़ जाती है। हमें इसी सिकुड़न से बचना है और सर्वजन समुदाय को भी– बचाना है। जिसमें हमारा शासन भी है और प्रशासन भी। बचने–बचाने का यह काम है– शिक्षित–बौद्धिक–वर्ग का है और शिक्षा का भी।

आलोचन–दृष्टि पत्रिका को लेकर जो **ऑनलाइन फ्रॉड** (लिंक : **https://ejahan.org/** और ईमेल : **submitadj@gmail.com** एवं सम्बद्ध मोबाइल नम्बर : 9906519694 & 7981064362 **)** चल रहा है, उसकी कार्यवाही भी चल रही है। निवेदन है कि उपरोक्त लिंक और ईमेल से **आलोचन दृष्टि** पत्रिका का किसी भी तरह का कोई संबंध या लेना–देना नहीं है। अतः उपरोक्त **फ्रॉड** से सावधान रहें।

उपरोक्त पत्रिका का यह अंक कुल 212 शीर्षकों में प्रकाशित हो रहा है, जिसमें हिंदी–भाषा के 18 (अठारह) शोध–पत्र, अंग्रेजी–भाषा के 3 (तीन) शोध–पत्र और संस्कृत–भाषा का– 1 (एक) शोध–पत्र शामिल है। सभी शोध–पत्र या लेख अपने–अपने क्षेत्र के विद्वानों की महनीय अभिव्यक्तियाँ हैं। इस अंक में **कमलाकांत त्रिपाठी** जी का **'तुलसी का योगदान'** (भाग : 1 से लेकर 6 तक) प्रकाशित हो रहा है। निश्चित रूप से यह लेख स्वाधीन–बौद्धिक–चिंतन के धरातल से तुलसी का मूल्यांकन करता है। यह एक महत्वपूर्ण काम है। इस तरह से ही– काम करने की जरूरत है। ऐसे प्रयास ही भारतीय चिन्तनधारा को समझने में हमारी मदद कर सकते हैं। निश्चित ही, इससे आने वाली पीढ़ी को सोचने–समझने की एक नयी दिशा मिलेगी। इस लेख के अन्य शेष भाग अगले अंक में प्रकाशित होंगे।

'आलोचन दृष्टि' पत्रिका के 'संरक्षक एवं सलाहकार मंडल' और 'संपादक मंडल' में परिवर्तन करने की आवश्यकता महसूस हो रही है। अतः 'आलोचन दृष्टि' परिवार एवं 'संपादक मंडल' के सदस्यों के साथ जल्द ही एक मीटिंग आहूत की जायेगी, जिसमें उपस्थित सदस्यों की सहमति के आधार पर 'आलोचन दृष्टि' पत्रिका के 'संरक्षक एवं सलाहकार मंडल' और 'संपादक मंडल' में परिवर्तन संभावित है।

हाल ही में, 3 दिसम्बर 2023 की शाम (6.45 बजे) महामहोपाध्याय आचार्य कमलेशदत्त त्रिपाठी का लगभग 86 वर्ष की अवस्था में देहावसान हुआ है। आप कश्मीर शैव दर्शन के महान आचार्य रहे हैं, भारत अध्ययन केन्द्र, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी– के इमेरिटस प्रोफेसर रहे हैं, संस्कृत और संस्कृति ज्ञान के **'वट–वृक्ष'** रहे हैं, भरतमुनि के नाट्यशास्त्र और संस्कृत भाषा के नाटकों के मर्मज्ञ आचार्य रहे हैं और महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा के माननीय कुलाधिपति जैसे तमाम पदों को सुशोभित भी किया है। **आलोचन–दृष्टि–परिवार** की ओर से महामहोपाध्याय आचार्य त्रिपाठी सर को मैं **भावभीनी अश्रुपूरित–श्रद्धांजलि** अर्पित करता हूँ।

अंत में, इस अंक के संपादन हेतु 'आलोचन–दृष्टि–परिवार' को सादर आभार ज्ञापित करता हूँ, जिनके सहयोग और सहकार से ही– पत्रिका का यह अंक अपना अंतिम कलेवर ग्रहण कर रहा है। साथ ही, पाठकों–लेखकों के स्नेह एवं लगाव के प्रति भी, मैं कृतज्ञ हूँ। शेष....

31 दिसम्बर, 2023।

विषयानुक्रमणिका

- संपादकीय iii-iv
- विषयानुक्रमणिका v-vi

1. तुलसी का योगदान (भाग : 1-6) 1-21
   कमलाकांत त्रिपाठी
2. 'सामाजिक-परिप्रेक्ष्य' एवं 'साहित्यिक-वैचारिकता' के अंतःसंबंधों की सैद्धांतिक... 22-26
   डॉ. जितेन्द्र कुमार गिरि
3. गुरु नानक की ज्ञानात्मक दृष्टि एवं सृष्टि 27-29
   आशीष कुमार (महन्त आशीष शास्त्री)
4. भारतीय राष्ट्र और राष्ट्रवाद 30-33
   रंजना देवी
5. रानी लक्ष्मीबाई का नेपथ्य : झलकारीबाई 34-37
   आकांक्षा अग्निहोत्री
6. भारतीय संस्कृति के संरक्षण एवं निर्माण में शिक्षा का महत्त्व (राष्ट्रीय शिक्षा....) 38-43
   साक्षी दीक्षित एवं डॉ. रचना यादव
7. हिंदी गद्य की विकास-यात्रा 44-47
   प्रशान्त कुमार एवं डॉ. निशात बानो
8. 21वीं सदी की हिन्दी बाल कविताओं में वैज्ञानिक एवं तकनीकी मूल्यबोध 48-53
   रेखा
9. भाषा के परिप्रेक्ष्य मे हिन्दी का वैश्विक परिदृश्य 54-57
   मुमताज परवीन
10. मैत्रेयी पुष्पा की औपन्यासिक-सृजनात्मकता 58-62
    कु. मीना
11. मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में स्त्री-विमर्श 63-65
    ऋषि कुमार मिश्र
12. डॉ. धर्मवीर भारती की प्रेरणा-भूमि 66-69
    पंकज विश्वकर्मा एवं डॉ. निशात बानो
13. सोहनलाल द्विवेदी के काव्य में स्वतंत्रता-आंदोलन के वैचारिक-पहलू 70-72
    सत्येन्द्र कुमार द्विवेदी एवं डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी

14.	स्त्रीवादी उपन्यास : तृन धरि ओट *नविता भारद्वाज*	73-75
15.	राम कथा की सफलता है समन्वय भावना *अखिलानंद मिश्र एवं डॉ कुसुम सिंह*	76-80
16.	स्वामी विवेकानंद का धर्मदर्शन *डॉ. रतिलाल गिरधर कालरीया*	81-84
17.	राजस्थान स्वास्थ्य देखभाल अधिकार अधिनियम 2022 : भविष्य की चुनौतियाँ *डॉ. अनिल सैनी*	85-89
18.	अपमानजनक संबंध और अंतरंग साथी-हिंसा (भारत के विशेष संदर्भ में) *दुर्गेश नंदिनी एवं निर्मल कुमार निर्मोही*	90-94
19.	लिङ्गस्वरूपविमर्शः *नीरजकुमारभार्गवः*	95-98
20.	**A Study of the Attitudes of Students with Special Needs towards...** *Dr. Sudheer Kumar Tiwari*	99-101
21.	**Views of Swami Vivekananda for Developing Personality** *Dr. Sunil kumar Manas*	102-105
22.	**Role of Agriculture towards Economic Growth & Development in M.P.** *Dr. Sanchet Singh deshmukh & Dr. Raj Kumar Gautam*	106-110

तुलसी का योगदान

कमलाकांत त्रिपाठी*

(भाग-एक)

तुलसी की लोकप्रियता और उनका काव्य–व्यक्तित्व

तुलसी के रामचरितमानस की सामान्यजन और अभिजन दोनों में अपूर्व लोकप्रियता का रहस्य संभवतः लोक–जीवन, लोक–मन और लोक–संवेदना में तुलसी की गहरी पैठ है। उन्होंने लोकभाषा में अति सरल, गेय और आसानी से याद हो जाने योग्य दोहा, चौपाई, और सोरठा छंदों में लोकाख्यान लिखा और उसमें शास्त्रीय परंपरा का अपना समस्त ज्ञान समाविष्ट कर उसे सर्वसुलभ बना दिया। उनके आख्यानों में निहित भावजगत् और उनमें वर्णित मानव–स्वभाव तथा मानव–व्यवहार से सामान्यजन का तादात्म्य इस क़दर त्वरित और घनीभूत होता है कि उसमें डूबकर शास्त्रीय परंपरा के कील–काँटे सम–सोझ हो जाते हैं, उनकी धार गोठिल पड़ जाती है। कम पढ़ा–लिखा पाठक (एवं श्रोता) भी उनमें अपने जीवनानुभव का निचोड़, अपने मन का ऊहापोह और दिल की धड़कन महसूस करता है, अपने चारों ओर बिखरे सामान्य लोकजीवन के मासूम, निर्मल चित्र देखता है। वह इतना विभोर हो जाता है कि कई अंश अनजाने ही उसे याद हो जाते हैं और गाहे–बगाहे उन्हें सूक्ति की तरह उद्धृत करने लगता है। अकारण नहीं कि अवध में रामचरितमानस के दोहे–चौपाइयाँ और उनकी अर्द्धालियाँ लोकजीवन की ज़मीन से उपजी कहावतों, उक्तियों, मुहावरों और सुभाषितों की कोटि में दाख़िल होकर उस जीवन के अविभाज्य अंग बन चुकी हैं। एक ही उदाहरण पर्याप्त होगा–

तिन्हहि बिलोकि बिलोकति धरनी। दुहुँ संकोच सकुचति बरबरनी।।
सकुचि सप्रेम बाल मृगनयनी। बोली मधुर बचन पिकबयनी।।
सहज सुभाय सुभग तन गोरे। नामु लखन लघु देवर मोरे।।
बहुरि बदन बिधु अंचल ढाँकी। पिय तन चितइ भौंह करि बाँकी।।
खंजन मंजु तिरीछे नयननि। निज पति कहेउ तिन्हहि सिय सैननि।।

(अयोध्याकाण्ड, 116ः 3–7)

(**वनगमन मार्ग :** राम, सीता और लक्ष्मण एक गाँव की बस्ती से गुज़र रहे हैं। ग्राम्य–वधुयें राम और लक्ष्मण को सहज उत्सुकता से देखती हैं। संकोच के कारण उनसे तो कुछ पूछ नहीं सकतीं। तो सीता से ही पूछती हैं– ये दोनों आपके कौन लगते हैं?)

दोनों की ओर देखकर गौरांगी सीता अपनी निगाह धरती में गड़ा देती हैं। दोहरे संकोच से संकुचित– न बताने पर ग्राम्य–वधुओं को बुरा लगेगा और बतायें तो राम के बारे में कैसे बतायें! आख़िर हिरणशावक–जैसे सुंदर नेत्रोंवाली और कोयल–जैसी मधुर वाणीवाली सीता ने संकोच और प्रेम से विगलित स्वर में कहा– जो सहज स्वभाव और सुंदर, गोरे शरीर के हैं, उनका नाम लक्ष्मण है, वे मेरे छोटे देवर हैं। फिर उन्होंने अपने चंद्र–मुख को आँचल से ढ़क लिया और राम के शरीर पर एक नज़र डालकर भौंहों को टेढ़ी किया। खंजन पक्षी–जैसी अपनी आँखो को तिरछी किया और इशारे से उन्हें अपना पति बता दिया।)

जन–ग्राह्यता के इस पहलू को तुलसी ने लगातार कितनी अहमियत दी और इस पर कितना श्रम किया, सोचकर आश्चर्य होता है। रामचरितमानस के हर काण्ड के प्रारम्भ में आये संस्कृत श्लोकों से यह पक्ष दिन की रोशनी की तरह साफ़ हो जाता है। ये सारे श्लोक संस्कृत व्याकरण और छंदशास्त्र की दृष्टि से सर्वथा त्रुटिहीन हैं, किंतु संरचना और शब्दचयन का ऐसा जादू कि हिंदी के सामान्य जानकार के लिए भी ये सहज गम्य हैं, जैसे इन संस्कृत पदों की कोई पृथक् भाषा ही न हो! संप्रेषण में यह सहजता, सरलता और

***प्रख्यात चिंतक एवं लेखक, 40/891, कुवेम्पू नगर, हिण्डाल्गा, बेलगावी, कर्नाटक–591108।**

गम्यता लाने के लिए कितनी दक्षता और कितना अध्यवसाय चाहिये, किसी भी रचनाकार को सहज एहसास होगा। उसे इस विडंबना का भी एहसास होगा कि सहज, सरल, सर्वगम्य लिखना कितना कठिन, कितना श्रमसाध्य है। भाषा और उसकी संप्रेषणीयता के प्रति तुलसी की अक्षुण्ण प्रतिबद्धता असाधारण कोटि की है जो उनकी निराडंबर और केन्द्रीभूत जनोन्मुखता की ही परिचायक हो सकती है।

विडंबना ही है कि भक्त तुलसी की निराडंबरता ही उन्हें अपने काव्य में निजी परिवेश और संस्कार तथा सामयिक भावबोध का अतिक्रमण करने और भक्तिमार्ग में अंतर्निहित आध्यात्मिक समतावाद से इतर किसी वैचारिक–सामाजिक परिवर्तन की ज़मीन बनाने में अक्षम कर देती है। वे एक निष्ठावान भक्त कवि थे, समाज–सुधारक नहीं। कबीर के लिये जो सहज था, तुलसी के लिए उनके युग और उनके परिवेश के परिप्रेक्ष्य में एक आडंबरी मानवतावाद होता। वे आध्यात्मिक निष्ठा में भक्त थे किंतु सामाजिक निष्ठा में अपने युग के एक निरीह, निर्धन, निराश्रित ही सही, संयोग से ब्राह्मण थे और उसी के अनुरूप उन्हें शिक्षा–दीक्षा मिली थी। गंगा में इतना पानी बह जाने के बाद, मौजूदा दौर के शिक्षित ब्राहमणों की (राजपूतों और वैश्यों की भी) सामान्य मानसिकता क्या है? मेरी समझ से स्वयं को साम्यवादी घोषित करने के बावजूद कुछ ब्राह्मण और राजपूत ओढ़े हुए साम्यवाद का लबादा उतरने पर कितने दंभी ब्राह्मण/राजपूत नज़र आते हैं, यह सामान्य अनुभव का विषय होना चाहिए। ब्राह्मण और राजपूत ही क्यों, अन्य जातियों में भी ऐसे लोग मिल जायेंगे जो जातीय अस्मिता के नये उभार से इस क़दर फूले रहते हैं कि मात्र नाम के आधार पर छूटते ही नीयत का सवाल उठा देते हैं और उनके साथ सदाशय, सौहार्दपूर्ण संवाद असंभव हो जाता है। ऐसे में मध्यकाल की सीमाओं से सीमित तुलसी पर आधुनिक विवेकवाद और मानवतावाद की कसौटी थोपना और इस सम्बंध में उनके विचलन को अतिक्रामक महत्व देते हुए, कवि के रूप में उनके योगदान की पूर्ण अवहेलना करने से उनका समग्र और संतुलित आकलन कैसे हो सकता है?

विशिष्टाद्वैत से उपजी सर्वजन–सुलभ सगुण विष्णु–भक्ति के श्री–संप्रदाय के संस्थापक रामानुज (1017–1137) को ब्राह्मणों के जातीय दर्प के कारण कितना कुछ झेलना पड़ा था, इतिहास में निर्विवाद रूप से दर्ज है। रामानंद की राम–केन्द्रित सगुण भक्तिधारा रामानुज के विशिष्टाद्वैत से ही निकली थी। रामानंद रामानुज की शिष्य–परंपरा में, काशी–निवासी राघवानंद जी के शिष्य थे। वही उत्तर में इस धारा के सशक्त प्रचारक सिद्ध हुए। एक परंपरा के अनुसार कबीर ने रामानंद को अपना गुरु स्वीकार किया। कबीर का मानवतावाद रामानुज और रामानंद का मानवतावाद था जो संयोग से कबीर की सामाजिक स्थिति और उनके निजी परिवेश के लिये भी मुफ़ीद था। यह ज़रूर है कि कबीर रामानंदी सम्प्रदाय की सर्वसुलभ रामभक्ति तक सीमित नहीं रहे, शंकर के अद्वैत और सिद्धों–नाथों–तांत्रिकों के इंगला–पिंगलावाद की रहस्यमय वाणी में उलटवाँसियाँ भी रचते रहे। अंततः उन्हें निर्गुण अद्वैतवाद का वह गूढ़ पद रचना पड़ा– 'एक कहूँ तो है नहीं, दो कहूँ तो गारि/है जैसा तैसा रहे कहे कबीर बिचारि।' साथ ही कबीर हिंदुओं और मुसलमानों दोनों की तत्वहीन पूजा–पद्धति और सामाजिक संरचना पर क़रारी चोट करते रहे जो सिकंदर लोदी के शासन के उनके समय में संभव था, आज के धार्मिक पुनरुत्थानवाद और धार्मिक ध्रुवीकरण के समय में शायद ही संभव होता।

तुलसी मूलतः उसी रामानंदी सगुण धारा के भक्त थे और वही बने रहे। बचपन में माता–पिता द्वारा परित्यक्त उनका लालन–पालन पहले 'मुनिया' नाम की एक सेविका ने, किया। उसकी मृत्यु के बाद उन्हें बेसहारा देखकर, एक रामानंदी संत नरहरिदास ने उन्हें अपने आश्रय में ले लिया और उनकी शिक्षा–दीक्षा का प्रबंध किया। उन्हीं नरहरिदास के साथ वे काशी आये और पंचगंगाघाट पर रहते हुए एक विद्वान शेषसनातन जी से 15 वर्ष तक वेद, वेदाङ्ग, दर्शन, इतिहास, पुराण आदि की समुचित शिक्षा प्राप्त की। अपने जन्म और बचपन तथा शिक्षाकाल के विशेष परिवेश के चलते, तुलसी उस उन्मुक्त दार्शनिक बिंदु तक नहीं पहुँच सके, जिस तक कबीर पहुँचे। दूसरी ओर, तुलसी ने राम को केंद्र में रखकर जनभाषा में जो सांगोपांग प्रबंधकाव्य लिखा, वह कबीर के लिए असम्भव था। दोनों का आकलन उनके अलग–अलग परिवेश और अलग–अलग कोटि की उपलब्धियों के परिप्रेक्ष्य में स्वतंत्र रूप से होना चाहिये। एक के परिवेश–गत विचलन की दूसरे के आदर्श से तुलना करना समीचीन नहीं कहा जा सकता।

तुलसी एक भक्त कवि थे, भक्त कवि की मर्यादा के प्रति सतत सावधान। उस युग की कृष्ण भक्ति धारा में प्रचलित श्रृंगार रस का सहारा उन्होंने कभी नहीं लिया जैसा कि उनके समकालीन सूरदास ने किया। तुलसी मर्यादा पुरुषोत्तम का चरित्र रचने की संभावना से संगर्भित (वर्णाश्रमी) सामाजिक मर्यादा के कवि थे। उनका श्रृंगार भी तदनुरूप सामाजिक मर्यादा का श्रृंगार था जो अपनी सात्विक सीमा से पाठकों और श्रोताओं को चमत्कृत करता है–

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन राम हृदय गुनि।।
मानहुँ मदन दुंदुभी दीन्हीं। मनसा बिस्व बिजय कहँ कीन्ही।।
अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा। सियमुख ससि भए नयन चकोरा।
भये बिलोचन चारु अचंचल। मनहुँ सकुचि निमि तजे दिगंचल।। (बा. कां. 229: 1–4)

(**जनकपुर :** पुष्पवाटिका में सीता और राम का प्रथम मिलन। अनुप्रास की अद्भुत ध्वनि से शुरू होती है चौपाई। (सीता के हाथों के) कंगन, (कमर की) करधनी, और (पैरों के) नूपुर की मिली–जुली झंकार सुनकर राम हृदय में विचार करने के बाद लक्ष्मण से कहते हैं– मानो कामदेव विश्वविजय के संकल्प से दुंदुभी बजा रहे हों। ऐसा कहकर राम ने पुनः सीता की ओर देखा। फिर तो सीता का मुख चंद्रमा बन गया और राम की दृष्टि उसे निहारने वाली चकोर। सीता को देखते हुए राम के सुंदर नेत्र स्थिर हो गये। मानो निमि (जनक के पूर्वज, जिनका निवास पलकों में माना जाता है) ने सकुचाकर राम की पलकों को त्याग दिया जिससे झपने–खुलने का उनका गुणधर्म जाता रहा।)

तुलसी ने वाल्मीकि के ग्रंथ में प्रक्षिप्त (दे. अगला भाग) सीता–निर्वासन और शम्बूक–वध प्रसंग को निकाल फेंका जो वाल्मीकि के निकटतर परवर्ती कालिदास (पहली शताब्दी ई. पू.) और भवभूति (आठवीं शताब्दी) नहीं कर सके। दोनों ने सीता के व्यक्तित्व को अधिक सशक्त, अधिक मुखर ज़रूर बनाया। भवभूति ने तो सीता–निर्वासन की त्रासदी को राम की राजनीतिक विवशता के दंड स्वरूप उनकी व्यक्तिगत त्रासदी– आत्मनिर्वासन की पीड़ा– में अंतरित करने का काफ़ी हद तक सफल प्रयास किया। किन्तु दोनों उत्कृष्ट कवि परंपरा को विदीर्ण करनेवाले प्रक्षिप्त को नहीं पहचान सके।

तुलसी अपने परिवेश और संस्कार में सहज रूप से व्याप्त वर्णाश्रम और उसमें निहित पूर्वाग्रहों से तो मुक्त नहीं हो पाये किंतु उन पर ब्राह्मणवादी होने का आरोप सर्वथा निराधार है। राम ने आततायी ब्राह्मण रावण का वधकर उपमहाद्वीप के निवासियों को उसके आतंक से मुक्त किया। पौराणिक परंपरा के अनुरूप, इसके बावजूद, राम को ब्रह्महत्या का पाप लगा और उन्हें उसका प्रायश्चित्त करना पड़ा। तुलसी ने ब्राह्मणों द्वारा रचित इस अयुक्तिपूर्ण मिथक का परित्याग कर दिया। दूसरे ब्राह्मण परशुराम (जिन्हें विष्णु पुराण में विष्णु के दस मुख्य अवतारों में शामिल किया गया है) को तो तुलसी ने एक हास्यास्पद खलनायक बना दिया। शिवधनुष टूटने से कुपित, अपना फरसा लिये, तड़कते–भड़कते वे रंग में भंग डालने पहुँच जाते हैं। अपने दम्भपूर्ण दुर्वचनों से पहले लक्ष्मण, फिर राम को खुलेआम अपमानित करते हैं, लक्ष्मण की तो हत्या तक करने को तत्पर हो जाते हैं। फिर जैसे तड़कते–भड़कते आये थे, राम का प्रभाव जान लेने पर वैसे ही शांत और विनत होकर तपस्या के लिये वन चले गये। तुलसी ने अपने समय के पाखंडी ब्राह्मणों की जमकर ख़बर ली है। पत्नी की मृत्यु और घर व सम्पत्ति के नष्ट होने पर गृहस्थी के उत्तरदायित्व से पलायन कर मात्र जीविका चलाने के लिये संन्यासी बननेवाले ब्राह्मणों की घोर आलोचना की है। रामचरितमानस भ्रष्ट और ढोंगी ब्राह्मणों के कुकृत्यों से भरा पड़ा है। तुलसी उन्हें निरक्षर, लोलुप, दंभी कहते हैं, समाज की पतनोन्मुखता के लिए उन्हें उत्तरदायी ठहराते हैं– जिसमें तपस्वी का बाना (बड़े नाखून और बड़ी–बड़ी जटायें) बनाये लोग (आज की ही तरह) धनवान हैं जबकि गृहस्थ दरिद्र हैं।

खलनायक की भूमिका में समुद्र द्वारा शूद्र और स्त्री की अस्मिता के विरुद्ध कहे गये वचन, रावण के वचनों की तरह ही, तुलसी के वचन नहीं माने जा सकते। किंतु तत्कालीन समाज में शूद्रों के प्रति व्याप्त पूर्वाग्रह यत्र–तत्र रामचरितमानस में निश्चय ही व्यक्त हुआ है जो बेहद दुर्भाग्यपूर्ण है। किंतु रामचरितमानस का कोई शूद्र पात्र खलनायक या खल की भी भूमिका में नहीं मिलता।

इसके बरअक्स सम्पूर्ण रामचरितमानस का मूल स्वर द्वंद्वों और विरोधों में समन्वय और सामंजस्य का है। तुलसी–साहित्य के विशाल फलक पर शैव–वैष्णव, भक्ति–ज्ञान, निर्गुण–सगुण, क्षत्रिय–ब्राह्मण–निषाद –भील (शबरी), मानव–बंदर–रीछ, नागरसंस्कृति–वनसंस्कृति, उत्तर–दक्षिण, संस्कृत–अवधी–व्रज, दोहा–चौपाई –सोरठा–कवित्त– कई–कई आयामों में सामंजस्य और समन्वय का स्वर व्याप्त है, जो किसी भी अन्य कवि की तुलना में तुलसी को विशिष्ट बनाता है।

तुलसी के काव्य–व्यक्तित्व के आकलन में आनुषंगिक को उभारकर केंद्रीय अभिप्रेत की अवहेलना करना उतना ही दुर्भावनापूर्ण है जितना तत्कालीन समाज में व्याप्त स्त्रियों और शूद्रों के प्रति पूर्वाग्रह जिसे तुलसी ने अपनी स्वभावगत सरलता में यत्र–तत्र बिना किसी लाग–लपेट के व्यक्त कर दिया है। कहना नहीं होगा, तुलसी से पॅलिटिकल करेक्टनेस की अपेक्षा करना सर्वथा परिप्रेक्ष्य–विहीन होगा। तुलसी और कबीर दोनों हमारी परंपरा की उत्कृष्ट देन हैं। उनमें आज के आधुनिक भावबोध के लिए जो प्रासंगिक है उसे सँजोने और जो अप्रासंगिक है उसे त्यागने के अलावा मुझे और कोई वरेण्य और संतुलित मार्ग नहीं दिखता। परंपरा में यदि कुछ मूल्यवान है तो उसकी सार्थकता इसी में हो सकती है।

भाग–दो

तुलसी का रामचरितमानस और वाल्मीकीय रामायण का मूल स्वरूप– क

वाल्मीकीय रामायण के मूल स्वरूप के निर्धारण में प्रक्षिप्त की पहचान के लिए सामान्यतः संस्कृत के ऐसे प्रकाण्ड विद्वान की ज़रूरत होनी चाहिए जो भाषाविज्ञान का भी विशेषज्ञ हो। लेकिन, आप देखेंगे, वाल्मीकीय रामायण के विशेष संदर्भ में प्रक्षिप्त की जो प्रकृति है, उसके मद्देनज़र प्रकाण्ड संस्कृतज्ञ–कम–भाषाविज्ञान–विशेषज्ञ की तलाश में सत्तू–पिसान बाँधकर निकलने की ज़रूरत नहीं। रामायण की अन्तर्वस्तु, यहाँ तक कि मात्र विषय–सूची, के एक सरसरी पाठ से जो चीज़ स्पष्ट हो जाये उसके लिये विशेषज्ञ को कष्ट क्यों देना? रहीम जी कह ही गये हैं– जहाँ काम आवे सुई कहा करै तरवारि।

रामायण का शाब्दिक अर्थ है राम की यात्रा। अयन का आद्य अर्थ है चलना, जाना (अय् +ल्युट्)। वामन शिवराम आप्टे ने अपने (सर्वसुलभ) 'संस्कृत–हिंदी कोश' में इस आद्य अर्थ के उदाहरण में ही रामायणम् का उल्लेख कर दिया है। आप्टे ने अयन का दूसरा अर्थ दिया है मार्ग या पथ, वह भी उपरोक्त आद्य अर्थ से सम्बद्ध है। अयन के शेष अर्थ प्रसंगानुरूप इतने भिन्न–भिन्न हैं कि प्रस्तुत संदर्भ के लिए सर्वथा अप्रासंगिक हैं।

जब 'राम की यात्रा' की बात होगी तो स्पष्ट है, एक ही यात्रा अभीष्ट होगी। राम–लक्ष्मण द्वारा विश्वामित्र की यज्ञ–रक्षा के लिए की गई एक और यात्रा का विवरण उपलब्ध है, जिसमें इन दोनों के ही नहीं, चारों भाइयों के एक साथ विवाह का भी संयोग बैठ जाता है। किंतु जब एक ही यात्रा अभीष्ट हो तो निश्चय ही राम वनगमन, जिसमें सीता–हरण प्रसंग के कारण लंका–यात्रा भी जुड़ गई, एकमात्र उद्दिष्ट यात्रा होनी चाहिये। और राम की यह यात्रा अयोध्याकाण्ड से शुरू होकर युद्धकाण्ड में राम के अयोध्या लौटने और उनका राज्याभिषेक होने पर समाप्त हो जाती है। एक राज्याभिषेक की (निष्फल) तैयारी (अयोध्याकाण्ड) से दूसरे राज्याभिषेक (युद्धकाण्ड) के सम्पन्न होने में 14 वर्षों का लंबा अंतराल है। और वही है राम की कठिन यात्रा जो वाल्मीकीय रामायण का प्रतिपाद्य है। तो वाल्मीकीय रामायण में बालकाण्ड और उत्तरकाण्ड कहाँ से आ गये? ऐसा तो नहीं हो सकता कि लौकिक संस्कृत के आदिकवि को रामायण शब्द का अर्थ न ज्ञात रहा हो। तो सवाल है, वाल्मीकि ने आदिकाव्य लिखते समय उसका नामकरण रामचरितम् के बजाय रामायण क्यों किया होगा?

संस्कृत में चरितम् (चरित्रम् से थोड़ा भिन्न) शब्द का भी एक अर्थ गमन करना, हिलना–डुलना है। किंतु संस्कृत की रचनाओं के नामकरण के संदर्भ में यह शब्द जीवनी या जीवनचरित के एकमात्र अर्थ में रूढ़ हो गया है। नैषधीयचरितम् (श्रीहर्ष का महाकाव्य), उत्तररामचरितम् (भवभूति का नाटक), दशकुमारचरितम् (दण्डी का गद्यकाव्य), हर्षचरितम् (बाणभट्ट का गद्यकाव्य), बुद्धचरितम् (अश्वघोष का

महाकाव्य) इसके कुछ प्रसिद्ध उदाहरण हैं। चरितम् में पूरे जीवन का आख्यान होता है। तुलसी ने रामकथा पर भाषा (अवधी) में लिखे गये अपने प्रबंध का नाम रखा रामचरितमानस। निहितार्थ, राम के सम्पूर्ण जीवन का आख्यान। अपने प्रबंध के शुरू में ही उन्होंने वाल्मीकीय रामायण का उल्लेख करते हुए लिख दिया था– 'यद् रामायणे निगदितम् क्वचिदन्यतोपि' (जो वाल्मीकीय रामायण में वर्णित है वह तथा कुछ और)। तुलसीदास संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान थे। यह तो सम्भव नहीं कि उन्हें रामायण शब्द के अपेक्षाकृत सीमित अर्थ का एहसास न रहा हो। ऐसे में क्वचिदन्यतोपि तो अपरिहार्य था। इस तरह रामचरितमानस में बालकाण्ड और उतरकाण्ड का समावेश क्वचिदन्यतोपि के अनुरूप ही है। किंतु द्रष्टव्य यह है कि तुलसी ने अपने प्रबंध के उत्तरकाण्ड में (संप्रति प्रचलित) वाल्मीकीय रामायण के उत्तरकाण्ड का कोई प्रसंग नहीं लिया और उसे ज्ञान–भक्ति विवेचन पर ख़र्च कर दिया। इस तरह तुलसी को विवादित शम्बूक–वध और सीता–निर्वासन प्रसंग से स्वतः छुटकारा मिल गया। किंतु 'यद् रामायणे निगदितं...' में तो उन्होंने कुछ अतिरिक्त लेने की बात कही थी, कुछ छोड़ने की नहीं। एकमात्र निहितार्थ– तुलसी को मूल वाल्मीकीय रामायण में उत्तरकाण्ड के न होने का आभास। या संदेह। यह उनके इष्टदेव मर्यादा पुरुषोत्तम के प्रति अखण्ड सम्मान के अतिरिक्त अन्य कारण हो सकता है। आप पायेंगे कि वाल्मीकीय रामायण के अयोध्याकाण्ड से युद्धकाण्ड तक की कथा पूर्णतः सुसम्बद्ध है, आद्यन्त एक सूत्र में पिरोई हुई, निरंतर आगे बढ़ती है, बायें–दायें या लौटकर पीछे नहीं जाती। पूरी कथा राम पर केंद्रित है। राम, उनके जीवन के घटित और उनसे जुड़े पात्रों पर लगातार फ़ोकस बनाये रखती है, एक भी असम्बद्ध, अवांतर प्रसंग नहीं आता। इसके ठीक विपरीत बालकाण्ड और उत्तरकाण्ड में अवांतर प्रसंग ही भरे हुये हैं। ख़ास पौराणिक शैली में परस्पर असम्बद्ध, भाँति–भाँति के आख्यानों का बेतरतीब जमावड़ा, जिनका रामकथा से कोई लेना–देना नहीं। इन काण्डों के शेष अंश में रामायण के ही कुछ प्रसंगों की पुनरावृत्ति होती है किंतु उनमें कुछ जोड़कर, उनका रूप बदलकर। इन काण्डों की मात्र विषयसूची पर एक निगाह डाल लेने से स्पष्ट हो जायेगा कि ये दोनों काण्ड उस व्यक्ति द्वारा लिखे हुए कदापि नहीं हो सकते जिसने अयोध्याकाण्ड से युद्धकाण्ड तक राम की बहुचर्चित यात्रा को पूर्वापर सुसम्बद्ध, उतरोत्तर अग्रगामी, एकल सूत्र में बँधी, सुगम संस्कृत के सरल साहित्यिक सौदर्य की झलक देती, प्रवहमान भाषा में, प्रकृति, और मानवीय भावों के सूक्ष्म को कुशलता से उभारती, एक उत्कृष्ट कथा का रूप दिया है।

इन दो काण्डों में मूल रामायण (अयोध्याकाण्ड से युद्धकाण्ड) के किसी प्रसंग की पुनरावृत्ति में कथा की अन्विति, उसकी मर्यादा, उसके सौष्ठव को प्रसंग के इतर विवरणों ने किस तरह स्खलित किया है इसका एक ही उदाहरण पर्याप्त होगा– युद्धकाण्ड का अंतिम (128वाँ) सर्ग। इस सर्ग के वर्ण्य विषय हैं– भरत द्वारा राम को राज्याधिकार का हस्तान्तरण {भरत के अनुसार राज्य उनके पास महज़ न्यास (Trust) में होने से उसका प्रत्यर्पण}, राम द्वारा नगर–भ्रमण, राम का राज्याभिषेक, उपहार देकर ससम्मान विभीषण एवं वानरों की विदाई तथा रामायण की फलश्रुति (जो हमेशा ग्रंथ के अंत में आती है)।

विभीषण और वानरों की विदाई :– ".....तत्पश्चात् राजा राम ने अपने मित्र सुग्रीव को एक दिव्य, मणिजटित, सूर्य की किरणों की तरह प्रकाशवान् स्वर्णहार उपहार दिया। उसके बाद धैर्यशाली रघुवीर ने बालिपुत्र अङ्गद को कंगन भेंट किये जिनमें चित्र–विचित्र नीलम जड़े थे, जो चंद्रकिरणों से विभूषित लग रहे थे। वायुदेव द्वारा राम को उपहार में दिया गया, चंद्रकिरणों से प्रकाशित, मुक्ताहार राम ने सीता के गले में डाल दिया...सीता ने पति की ओर देखकर संकेत में वायुपुत्र हनुमान् को कुछ उपहार देने की इच्छा व्यक्त की। राम की आज्ञा पाकर सीता ने वह मुक्ताहार हनुमान् को भेंट कर दिया। इसी प्रकार जितने भी प्रधान वानरवीर थे, सबका वस्त्रों एवं आभूषणों से यथोचित सम्मान किया गया। और तब–

विभीषणोथ सुग्रीवो हनूमाञ्जाम्बवांस्तथा। सर्वे वानरमुख्याश्च रामेणाक्लिष्टकर्मणा ।।85।।
यथार्हं पूजिताः सर्वे कामै रत्नैश्च पुष्कलैः। प्रहृष्टमनसः सर्वे जग्मुरेव यथागतम् ।।।86।।

(अतिशय क्लिष्ट कर्म से निवृत्त हुए राम ने विभीषण, सुग्रीव, हनुमान् तथा जाम्बवान् आदि सभी श्रेष्ठ वानरवीरों का उनकी मनोवाञ्छित वस्तुओं एवं प्रचुर रत्नों से यथोचित सम्मान किया। वे सब प्रसन्न होकर, जैसे आये थे, उसी तरह अपने–अपने निवासस्थान को लौट गये।)

अब यही प्रसंग उत्तरकाण्ड में देखिए।

(प्रक्षिप्त?) उत्तरकाण्ड के सर्ग 37, 38, 39 और 40 में राज्याभिषेक, सभासदों के साथ बैठक और वानरों आदि की विदाई का प्रसंग पुनः आता है। पहला प्रश्न तो यही उठता है कि विदाई दुबारा क्यों? किंतु यह प्रश्न गौण है। महत्वपूर्ण यह है कि उत्तरकाण्ड में यह प्रकरण अनपेक्षित, अमर्यादित और कृत्रिम विवरणों के समावेश से अनावश्यक विस्तार पाता है; उसका एक विचित्र रूप सामने आता है। उत्तरकाण्ड में पुनर्वर्णित राज्याभिषेक समारोह में भरत द्वारा बुलाये जाने पर राजा जनक सहित दूर–पास के अनेक राजा भी उपस्थित होते हैं (इतना समय था?)। वे सब अपनी बड़ी–बड़ी (कई अक्षौहिणी) सेनाओं के साथ युद्ध के लिए उद्यत होकर (?) आते हैं (39–1)। उनकी विदाई होने पर वापस लौटते समय वे आपस में बे–सिर–पैर की गर्वीली बातें करते हैं– हमने तो राम और रावण को युद्ध में आमने–सामने खड़े देखा नहीं। भरत ने हमें पहले सूचना ही नहीं दी। बाद में (राम–रावण) युद्ध समाप्त हो जाने पर व्यर्थ ही हमें बुलाया। हम सभी युद्ध में भाग लेने गये होते तो निःसंदेह सभी राक्षसों का शीघ्रता से संहार हो जाता। हम लोग भी समुद्र के उस पार राम लक्ष्मण के नेतृत्व में भलीभाँति युद्ध कर सकते थे (39– 3,4,5)। फिर इन राजाओं ने वापस अपनी–अपनी राजधानियों में पहुँचकर नाना प्रकार के रत्न और उपहार भेजे (साथ क्यों नहीं लाये थे?)। उपहारों में घोड़े, हाथी, उत्तम कोटि का चंदन, आभूषण, मणि, मोती, मूँगा, बहुत सारे रथ थे। और तो और, रूपवती दासियाँ, नाना प्रकार की बकरियाँ और भेड़ें भी थीं (39– 7,10)। (हास्यास्पद)।

भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न उन रत्नों को लेकर अयोध्या पुरी पहुँचते हैं (लिया किस जगह?) और राम को समर्पित कर देते हैं (39–11,12)। राम उन सब उपहारों को विभीषण, अन्य राक्षसों (युद्धकाण्ड के उपरोक्त प्रकरण में 'अन्य राक्षसों' का उल्लेख नहीं है, क्या वे भी राम के साथ आये थे?) और वानरों में वितरित कर देते हैं क्योंकि उन्ही के सहयोग से राम ने युद्ध में विजय प्राप्त की थी (39–13,14)। उन सभी ने तत्काल उन रत्नों और आभूषणों को अपने मस्तक और भुजाओं पर धारण भी कर लिया (39–15)।

इसके बाद जो होता है, वह तो अजीबोग़रीब समाँ उपस्थित करता है। राम ने महाबाहु हनुमान् और अङ्गद को गोद में बिठाकर सुग्रीव से कहा– सुग्रीव जी, अङ्गद आपके सुपुत्र हैं और हनुमान् आपके मन्त्री। ये दोनों मेरे लिये भी मन्त्री का काम करते रहे और मेरे हित–साधन में लगे रहे। इसलिये और आपके सम्बंध के नाते, ये मेरी ओर से आदर–सत्कार और उपहार पाने के हक़दार हैं (अन्यथा न होते?)। ऐसा कहकर राम ने अपने शरीर से बहुमूल्य आभूषण उतारकर अङ्गद और हनुमान् के अङ्गों में बाँध दिया (39–16–19)। फिर राम ने अन्य वानर यूथपतियों– नील, नल, जाम्बवान् तथा 17 अन्य के नामों का उल्लेख है (ये नाम कहाँ मिले?) को बुलाकर मधुर वाणी में कहा– वानरवीरों, आप लोग मेरे मित्र, मेरे शरीर और मेरे बंधु हैं। आपने ही मुझे संकट से उबारा। आप जैसे श्रेष्ठ मित्रों को पाकर राजा सुग्रीव धन्य हैं। (39–20–24)। ऐसा कहने के बाद राम ने उन्हें यथायोग्य आभूषण और बहुमूल्य हीरे (वज्र) देकर उनका आलिङ्गन किया (39– 25)।

लेकिन यह उनकी विदाई नहीं थी। इसके बाद पिङ्गलवर्णी वानर अयोध्या में सुगंधित मधु का पान करते, राजभोग की वस्तुओं का भोग करते, साथ ही स्वादिष्ट फल–मूल खाते, उपस्थित दिखाई पड़ते हैं। लिखा है, वे एक महीने से अधिक रह गये और इक्ष्वाकुवंशी राजाओं की सुरम्य राजधानी में बड़े आनंद और प्रेम से समय बिताये। फिर लिखा है, इस तरह शिशिर ऋतु का दूसरा महीना बीत गया (शुरुआत किस ऋतु में हुई थी?) (39– 26–30)। विभीषण और उनके साथ के राक्षस भी वानरों के साथ वहीं पड़े रहे किंतु वे क्या करते रहे, कोई उल्लेख नहीं।

इसके उपरांत राम ने रीछों, वानरों और राक्षसों (?) के प्रतिनिधि के तौर पर सुग्रीव को संबोधित करते हुए स्वयं उनसे प्रस्थान करने के लिये कहा (कितना अमर्यादित!)– अब आप देवताओं और असुरों के लिये भी अजेय अपनी किष्किंधापुरी जाएँ और मन्त्रियों के साथ रहते हुए, निष्कंटक वहाँ का राज्य करें (40–2)। फिर राम ने एक 'भाषण' दिया जिसमें उन वानरों का नाम ले–लेकर, जिन्होंने युद्ध में विशेष पराक्रम दिखाया था, सुग्रीव को उनका विशेष ध्यान रखने के लिए हिदायत दी। अंत में बारंबार सुग्रीव का

आलिङ्गन किया (40– 3–9)। फिर राम मधुर वाणी में विभीषण से बोले (ये कहाँ से प्रकट हो गये?), दरअसल विभीषण को सावधान किया– मेरे विचार से तुम धर्मज्ञ हो। तुम्हारे भाई कुबेर भी तुम्हें धर्मज्ञ मानते हैं। तुम्हारे नगर के राक्षस भी तुम्हें धर्मज्ञ मानते हैं। इसलिये धर्मानुसार लङ्का का शासन करो। कभी अधर्म में मन मत लगाना। जो राजा बुद्धिमान होता है, वही दीर्घकाल तक पृथ्वी का राज्य भोगता है। सुग्रीव–सहित तुम भी मुझे हमेशा याद रखना। अब निश्चिन्त होकर प्रसन्नतापूर्वक यहाँ से जाओ (पुनः अमर्यादित व्यवहार) (40– 10–12)। राम का भाषण सुनकर, रीछ, वानर, और राक्षस उन्हें धन्य–धन्य करने लगे। उन लोगों ने कहा (एक स्वर से?) महाबाहु श्रीराम, स्वयंभू ब्रह्मा की तरह आपके स्वभाव में सदा अतिशय मधुरता रहती है। आपकी बुद्धि और पराक्रम अद्भुत हैं (40–14)।

राक्षसों और वानरों के जाने का मुहूर्त अभी भी नहीं आया। बीच में हनुमान् जी खड़े हो गये, राम का गुणगान करने लगे, उनके प्रति अपनी भक्ति का वरदान माँगने लगे। बीच में (बाल–ब्रह्मचारी) हनुमान् ने यह भी माँग रख दी– हे रघुकुलनंदन, नरश्रेष्ठ राम, यह जो आपका दिव्य चरित्र और दिव्य कथा है, अप्सराएँ इसे गाकर मुझे सुनाया करें (40–18)। अंत में राम सिंहासन से उठकर खड़े हो गये, हनुमान्‌को हृदय से लगा लिया, उनके प्रति विशेष कृतज्ञता व्यक्त की और अपने गले का चंद्रमा के समान उज्ज्वल हार निकालकर हनुमान् जी के गले में पहना दिया (40– 20–25)।

अब जाकर सम्पन्न होती है विदाई। सुग्रीव और विभीषण राम को हृदय से लगाकर उनका प्रगाढ़ आलिंगन करने के बाद विदा हुए। सभी अपने नेत्रों से आँसू बहाते हुए राम के भावी विरह से व्यथित हो उठे (40– 28)। राम को छोड़कर जाते हुए सभी अतीव दुःख के कारण किंकर्तव्यविमूढ़ और अचेत–से हो रहे थे। गला रुँध जाने से कोई कुछ बोल नहीं पा रहा था, बस सभी की आँखों से आँसू झर रहे थे। किंतु राम द्वारा कृपा और प्रसन्नतापूर्वक विदा दिये जाने पर सभी वानर विवश होकर उसी प्रकार अपने–अपने घर गये जैसे जीवात्मा विवशता में शरीर छोड़कर परलोक जाता है। वे राक्षस, रीछ और वानर रघुवंश की वृद्धि करनेवाले राम को प्रणाम करके, नेत्रों में वियोग के आँसू लिये अपने–अपने निवासस्थान को लौट गये (40– 29–31)। (पुनरुक्ति और अतिकथन?)

यदि अवांतर और असंबद्ध पौराणिक आख्यानों के अतिरिक्त इस तरह की पुनरावृत्तियों के ऊटपटाँग, अमर्यादित और अराजक विस्तार को आप आदिकवि वाल्मीकि–कृत मान सकते हैं तो उत्तरकाण्ड और बालकाण्ड को वाल्मीकीय रामायण का हिस्सा ज़रूर मानते रहें और सीता–निर्वासन तथा शम्बूक–वध जैसे अयुक्तिपूर्ण, प्रतिगामी प्रसंगों को लेकर उन पर आक्षेप भी लगाते रहें।

अभी और भी है, बहुत कुछ है। युद्धकाण्ड के अंत में फलश्रुति, उत्तरकाण्ड और बालकाण्ड में अन्य पुरुष में स्वयं वाल्मीकि की कथा घुसाकर उन्हें राम का समकालीन सिद्ध करने की चेष्टा, उपलब्ध हस्तलिखित प्रतियों में इन दोनों काण्डों को लेकर अनेक विसंगतियाँ, प्राचीन दाक्षिणात्य प्रति में अयोध्याकाण्ड को आदिकाण्ड बताते हुए केवल पाँच काण्डों का समावेश... और भी बहुत कुछ।

भाग-तीन

तुलसी का रामचरितमानस और वाल्मीकीय रामायण का मूल स्वरूप– ख

मूल वाल्मीकीय रामायण में "रामायण" के शब्दार्थ "राम की यात्रा" के अनुरूप बालकाण्ड और उत्तरकाण्ड की प्रक्षिप्तता की स्थापना करनेवाले विद्वानों में वासुदेव शरण अग्रवाल और डॉ. नंद किशोर देवराज प्रमुख हैं। माना कि किसी भी स्थापना के मूल्यांकन का एकमात्र आधार गुणावगुण (Merits) के आलोक में उसका विश्लेषण और परीक्षण ही होना चाहिये। किंतु, दुनिया जैसी है, उसमें सम्बंधित विद्वानों की हैसियत और प्रतिष्ठा को अधिक वरीयता दी जाती है। दुनिया के ढर्रे को तर्जीह देते हुए, सार्वजनिक क्षेत्र में उपलब्धता के कारण अनावश्यक होने के बावजूद, पाठकों के लिए त्वरित सुलभता की दृष्टि से इन दोनों विद्वानो के मतों की पूर्वपीठिका के तौर पर इनसे सम्बंधित कुछ सूचनाओं का भी उल्लेख प्रासंगिक होगा।

वासुदेवशरण अग्रवाल (1904–1960) का शुमार प्राचीनभारत–केंद्रित प्राच्यविद्या (प्दकवसवहल) के मूर्धन्य विद्वानों में होता है। लखनऊ विश्वविद्यालय की देन डॉ. अग्रवाल मथुरा पुरातत्व संग्रहालय के अध्यक्ष (1930–40) तथा भारतीय पुरातत्व विभाग के अध्यक्ष (1946–1951) रहे। 1951 में बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के कॉलेज ऑफ़ इंडोलॅजी में प्रोफ़ेसर नियुक्त हुए। 1952 में लखनऊ विश्वविद्यालय में राधाकुमुद मुखर्जी व्याख्यान–निधि के व्याख्याता के रूप में पाणिनि पर महत्वपूर्ण व्याख्यानमाला का आयोजन किया। डॉ. अग्रवाल के शोध और लेखन का बहुआयामी क्षेत्र संस्कृत और हिंदी दोनों भाषाओं के साहित्य और उनमें बिंबित भारतीय संस्कृति के मूलाधारों की वैज्ञानिक एवं तार्किक व्याख्या है। संस्कृत साहित्य में कालिदास और बाणभट्ट से लेकर पुराण और महाभारत तक एवं हिंदी साहित्य में विद्यापति के अवहट्ठ काव्य कीर्तिलता से लेकर जायसी के पद्मावत तक उनकी तर्कसंगत व्याख्या के हासिल में नवीन प्रासंगिकता प्राप्त करते हैं। उनकी हिंदी कृतियों– 'मेघदूत–एक अध्ययन', 'हर्षचरितः एक सांस्कृतिक अध्ययन', 'कादम्बरी', 'पाणिनि कालीन भारतवर्ष', 'मार्कण्डेय पुराणः एक सांस्कृतिक अध्ययन', 'पद्मावत' (मूल एवं संजीवनी व्याख्या), कीर्तिलता (ऐतिहासिक–सांस्कृतिक अध्ययन एवं संजीवनी व्याख्या), भारत सावित्री (तीन खण्डों में महाभारत–कथा का निचोड़ और उसका आलोचनात्मक पाठ), भारत की मौलिक एकता, भारतीय कला, सात निबंध–संग्रहों के अतिरिक्त उनके द्वारा अनूदित एवं संपादित पुस्तकों का पूरा भंडार है। हिंदी के अतिरिक्त अंग्रेजी में भी भारत–केंद्रित प्राच्यविद्या पर उनके द्वारा लिखित 11 पुस्तकें और संपादित 3 पुस्तकें हैं। साहित्य अकादमी ने उनकी चुनी हुई रचनाओं को लेकर 'वासुदेवशरण अग्रवाल रचना संचयन' प्रकाशित किया है जो एक बहुमूल्य ग्रंथ है।

वासुदेवशरण अग्रवाल ने वाल्मीकीय रामायण के गहन अनुशीलन के बाद एक महत्वपूर्ण शोध–आलेख "रामायणी कथा" शीर्षक से लिखा था। सौभाग्य से उनका यह आलेख वियोगी हरि द्वारा संपादित और सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली से प्रकाशित (2011) पुस्तक "हमारी परंपरा" में संगृहीत (पृ. 210–232) है। अग्रवाल जी लिखते हैं–

"अब हम रामायण की कथा को लेते हैं। इसके लिये वर्तमान संस्करण का ही आश्रय लिया गया है। यह स्मरण रखना चाहिये कि वर्तमान लोक प्रचलित संस्करण दाक्षिणात्य पाठ पर आधारित है। निर्णयसागर और गीताप्रेस के संस्करण नहीं हैं। इसके अतिरिक्त इटली के विद्वान् गौरेशियों ने बंगीय पाठ मुद्रित किया था, और पं. विश्वबंधु ने उत्तर–पश्चिम का पाठ प्रकाशित किया है। किंतु वे दोनों लोक में चालू नहीं हुये। फिर भी यह उल्लेखनीय है कि रामायण की उत्तरापथवाचना के, जो वस्तुतः कौशल जनपद की वाचना थी, संपादन और प्रकाशन की आवश्यकता अभी बनी है। अनन्य गति से हम यहाँ प्रस्तुत प्रकाशित संस्करण को ही आधार मानकर कथा का वर्णन कर रहे हैं।

"रामायण के कुछ हस्तलेख ऐसे हैं जिनमें अयोध्याकांड को ही आदिकांड कहा गया है। ज्ञात होता है कि उस समय 'कौशलो नाम मुदितः स्फीतो जनपदो महान्' से ही ग्रंथ का आरंभ होता था।" (पृ.215–16)

अग्रवाल जी अयोध्याकाण्ड (आदिकाण्ड) के जिस आरंभिक श्लोक का संदर्भ दे रहे हैं वह प्रचलित संस्करण (गीताप्रेस) में बालकाण्ड के पाँचवे सर्ग (सर्ग–1 से सर्ग–4 तक अन्य पुरुष में स्वयं वाल्मीकि की कथा घुसा देने के बाद) का पाँचवाँ श्लोक है–

कोशलो नाम मुदितः स्फीतो जनपदो महान्। निविष्टः सरयूतीरेतीरे प्रभूतधनधान्यवान्।।

(कोशल नाम का एक खुशहाल और विशाल जनपद है। वह सरयू के किनारे बसा हुआ, प्रचुर धन–धान्य से सम्पन्न है।)

अयोध्या में घटित मानव–सम्बंधों की एक अपूर्व विडम्बना के तहत मर्यादा पुरुषोत्तम (ईश्वर नहीं) राम जिस धैर्य और कर्तव्य–बोध के साथ सिंहासन–त्याग और वनवास–स्वीकार करते हैं, वही रामायण (राम–यात्रा) का बीज–बिंदु है। उस यात्रा पर आधारित प्रबंध–काव्य की शुरुआत के लिए इस श्लोक से अधिक सहज, सरल, लोकोन्मुख पद्य और क्या हो सकता था?

वर्तमान में प्रचलित बालकाण्ड के उपर्युक्त पाँचवें सर्ग के शुरू के चार श्लोकों का कथ्य भी द्रष्टव्य है। सर्ग–4 में वाल्मीकि द्वारा रामायण की रचनाकर लव–कुश को उसमें प्रशिक्षित करने के बाद यह सर्ग लव–कुश द्वारा रामायण के गायन से प्रारम्भ होता है। गायन के माध्यम से ही इस सर्ग–5 का कथ्य यूँ शुरू होता है– समस्त पृथ्वी पूर्वकाल से जिस वंश के विजयशाली राजाओं के अधिकार में रही है, जिन्होंने समुद्र का उत्खनन कराया था, जिन्हें यात्रा–काल में साठ हज़ार पुत्र घेरकर चलते थे, वे महाप्रतापी राजा सगर जिनके कुल में उत्पन्न हुए, उन्हीं इक्ष्वाकुवंशी महात्मा राजाओं की कुल–परंपरा में रामायण नाम से प्रसिद्ध इस महान् आख्यान का अवतरण हुआ है। हम दोनों (लव–कुश) आदि से अंत तक इस काव्य का पूर्ण रुप से गान करेंगे। इसके द्वारा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष– चारों पुरुषार्थों की सिद्धि होती है। अतः आप लोग दोषदृष्टि का परित्याग कर इसका श्रवण करें। इसके बाद ही प्रचलित रामायण के बालकाण्ड के पाँचवें सर्ग का उपरोक्त श्लोक आता है जिसका उल्लेख अग्रवाल जी मूल रामायण के आदिकाण्ड (अयोध्याकाण्ड) के प्रथम श्लोक के रूप में करते हैं।

आपको स्पष्ट हो गया होगा कि इस श्लोक के कथ्य की शैली ही वाल्मीकि की आडम्बरहीन, सरल, प्रकृत और लोकगम्य शैली है जो (प्रक्षिप्त) बालकाण्ड के पाँचवे सर्ग के ही शुरू के चार श्लोकों के कथ्य की अलौकिक, आडंबरी और अतिशयोक्तिपूर्ण शैली से इसे पृथक् कर देती है। अग्रवाल जी अपने उपरोक्त आलेख में प्रचलित रामायण के बालकाण्ड से युद्धकाण्ड तक की कथा का संक्षिप्त पाठ देकर बालकाण्ड के प्रक्षिप्त होने का प्रमेय निर्मित करते है। फिर युद्धकाण्ड के अंतिम सर्ग में आई फलश्रुति (दे. पिछली पोस्ट) के आधार पर उसे अंतिम काण्ड मानते हुए (निहितार्थ– उत्तरकाण्ड भी प्रक्षिप्त है) अपना आलेख निम्नलिखित निष्कर्ष के साथ समाप्त करते हैं– "यहाँ यह उल्लेखनीय है कि वाल्मीकि–रामायण में पहले पाँच ही कांड थे। उसका आरंभ अयोध्याकांड से और समाप्ति युद्धकांड में होती थी। बालकांड और उत्तरकांड कालांतर में आगे–पीछे संकलित हुए जब गुप्त–युग में (?) उसे काव्य–रूप में परिणत किया गया।" (पृ.232)

यहाँ 'कालांतर' शब्द तो सर्वथा समीचीन है किंतु गुप्तकाल का निश्चयात्मक उल्लेख अन्य विवादों को जन्म दे सकता है। कारण, कालिदास के रघुवंशम् में भी उत्तरकाण्ड के सीता–निर्वासन और शम्बूक–वध प्रसंग आते हैं जिससे उत्तरकाण्ड का समावेश कालिदास के पूर्व इंगित होता है। कालिदास का समय यद्यपि पाश्चात्य विद्वान् गुप्तकाल मानते हैं किंतु भारतीय विद्वान विक्रम संवत् के जनक उज्जयिनी–नरेश विक्रमादित्य और कालिदास के नाटक विक्रमोर्वशीयम् की सम्बद्धता तथा कालिदास के समस्त साहित्य में उज्जयिनी और महाकाल से उनके अकाट्य सम्बंध के प्रभूत साक्ष्य के आधार पर (गुप्त राजाओं की राजधानी उज्जयिनी नहीं, पाटलिपुत्र थी) उन्हें एकमत से पहली शताब्दी ई. पू. में रखते हैं; विक्रम संवत् ईसवी सन् से 57 साल पहले शुरू हुआ था। अंधानुकरण किसी का भी हो, त्याज्य है।

आधुनिक भारत के बहुआयामी चिंतकों में अग्रगण्य डॉ. नंद किशोर देवराज (जन्मः1917) भी लखनऊ विश्वविद्यालय की देन थे (कई साल पहले एक दुर्भाग्यपूर्ण सड़क–दुर्घटना में उनकी असामयिक मृत्यु हो गई)। वे लखनऊ विश्वद्यालय में दर्शनशास्त्र के प्राध्यापक रहे, तदुपरांत उन्होंने काशी हिंदू विश्वविद्यालय के दर्शनशास्त्र विभाग में प्रोफ़ेसर और अध्यक्ष का कार्यभार सँभाला। इस विश्वविद्यालय के उच्चानुशीलन केंद्र के निदेशक भी रहे। भारतीय दार्शनिक अनुसंधान परिषद् के सीनियर फ़ेलो के रूप में पौर्वत्य और पाश्चात्य दर्शन और संस्कृति पर उन्होंने अभूतपूर्व कार्य किया। हिंदी में उन्होंने कई उच्च कोटि के उपन्यास और कविताएँ भी लिखीं तथा सैद्धांतिक आलोचना पर अपनी सुसंगत साहित्य–दृष्टि का खुलासा किया। उनकी पुस्तकों में Philosophy of Culture and an Introduction to Creative Humanism' (हिंदी में– 'संस्कृति का दार्शनिक विवेचन'), 'Freedom, Creativity and Value, "Humanism in Indian Thought", 'Limits of Disagreement', 'The Mind - Spirit of India, 'Hinduism and the Modern Age, 'Hinduism and Christianity', 'Islam and the Modern Age Society', 'दर्शनः स्वरूप, समस्याएँ एवं जीवन–दृष्टि', 'भारतीय संस्कृतिः महाकाव्यों के आलोक में' के अतिरिक्त उनके द्वारा संपादित 'भारतीय दर्शन' नाम की एक लोक–विश्रुत पुस्तक है। उनके बीस निबंधों का संग्रह Philosophy, Religion & Culture शीर्षक से तथा

एक और निबंध–संग्रह The Concept of Person and other Essays के नाम से प्रकाशित है। 'अजय की डायरी', मैं, वे और आप' तथा 'पथ की खोज' उनके विशिष्ट कोटि के उपन्यास तथा 'इतिहास पुरुष' उनका कविता संग्रह है। उनके उपन्यासों के केंद्र में साहित्य में दार्शनिक दृष्टि का सुष्ठ समावेश है, वे जीवन के इस मूल प्रश्न से जूझते हैं कि क्या सांस्कृतिक अभिरुचि और बौद्धिकता स्त्री–पुरुष सम्बंधों को सार्थकता प्रदान कर सकती है? उन्होंने अपनी पुस्तक 'आलोचना सम्बंधी मेरी मान्यताएँ' में साहित्य और आलोचना के अंतर्सम्बंध, आलोचना की भूमिका तथा उसकी सीमाओं का बेबाक निदर्शन किया है। डॉ. देवराज बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी, एक प्रखर मानवतावादी थे और समाजवाद तथा व्यक्तिवाद में सम्यक सामंजस्य के लिए आजीवन चिंतन–मनन करते रहे। उन्हें बहुमुखी भारतीय मनीषा का आधुनिक प्रतिरूप कहा जा सकता है।

डॉ. नंद किशोर देवराज अपनी पुस्तक "भारतीय संस्कृतिः महाकाव्यों के आलोक में" {उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान (हिंदी समिति प्रभाग) लखनऊ ,1979 संस्करण} में पृष्ठ 226– 229 पर वाल्मीकीय रामायण के हर काण्ड की कथा के प्रमुख प्रसंगों का उल्लेख करते हैं। पृष्ठ 228 पर युद्धकाण्ड और उत्तरकाण्ड के कथा–प्रसंगों का उल्लेख करते हुए वे लिखते हैं– "युद्धकाण्ड– .....चौदह वर्ष पूर्ण होने पर राम का अयोध्या प्रत्यागमन। भरत द्वारा राज्य–रूप धरोहर का वापस देना। पुष्पक विमान का लौट जाना। राम का अभिषेक। सीता द्वारा हनुमान्को हार का दान, राम के राज्य का वर्णन और रामायण की कथा सुनने के फल का कथन। "उत्तरकाण्ड– रामायण–श्रवण के फल–कथन से जान पड़ता है कि मूल रामायण युद्धकाण्ड के साथ समाप्त हुई थी। उत्तरकाण्ड में काफ़ी बाद को सुग्रीव, विभीषण आदि का प्रयाण दिखाया गया है (जब कि युद्धकाण्ड में राज्याभिषेक के तुरंत बाद उनकी बिदाई हो जाती है– पिछले भाग में दोनों काण्डों के भिन्न वर्णनों का उल्लेख विस्तार से दिया जा चुका है)।" इस तरह डॉ. देशराज भी उत्तरकाण्ड को प्रक्षिप्त मानते हैं। बालकाण्ड के सम्बंध में डॉ. देवराज इसी पुस्तक के पृष्ठ 226 पर अयोध्याकाण्ड के कथा–प्रसंगों का उल्लेख करते हुये लिखते हैं– "अयोध्याकाण्ड काव्य की दृष्टि से रामायण का सर्वश्रेष्ठ अंश है। बालकाण्ड में अलौकिक कथाओं की भरमार है, अयोध्याकाण्ड में विशुद्ध मानवीय कथा कही गई है।" इस तरह डॉ. देवराज की कसौटी कथा–प्रसंगों की मानवीयता बनाम अलौकिकता है। लोक में रामकथा अतिप्राचीनकाल से प्रचलित थी। निश्चय ही यह लोककथा प्रकृत रूप से अलौकिकता और राम पर अवतारत्व या ईश्वरत्व के आरोपण से मुक्त थी। वाल्मीकि ने इसी लोककथा के आधार पर अपने आदिकाव्य में विडंबनाओं से भरी राम–यात्रा के लौकिक आख़्यान को प्रबंध काव्य का रूप दिया। रामायण काल तक वासुदेव भक्ति संप्रदाय के अवतारवाद का उदय ही नहीं हुआ था। यह तो बाद के महाभारत काल की उपज थी। महाभारत में भी रामकथा आती है जिससे सिद्ध होता है कि रामकथा उसके बहुत पहले से लोक में प्रचलित थी जब अवतारवाद का उदय नहीं हुआ था।

इस तरह वाल्मीकीय रामायण में बालकाण्ड और उत्तरकाण्ड तो पूर्णतः प्रक्षिप्त हैं ही, शेष पाँच काण्डों में भी यत्र–तत्र प्रक्षिप्त घुसाकर पुराण–शैली में अलौकिकता की पच्चीकारी कर दी गई है। जहाँ–जहाँ कथा में अलौकिकता का तत्व आता है या राम पर आदर्श पुरुष, आदर्श राजा और आदर्श लोकनायक से इतर अवतारत्व या ईश्वरत्व का आरोपण होता है, वे सभी अंश बाद के प्रक्षिप्त हैं। इसके लिये वाल्मीकीय रामायण के विभिन्न वाचनों तथा हस्तलिखित प्रतियों में उपलब्ध पाठों के गहन परीक्षण से प्रक्षिप्त अंशों की पहचान और उनके बहिष्करण की ज़रूरत है। यह शुद्ध रूप से अकादमिक काम है। किंतु इसका एक अनिवार्य राजनीतिक परिप्रेक्ष्य भी है। सामान्य जन में गहरी जड़ें जमाये जो आस्था (या दुरास्था) का तत्व है, इस प्रयास को अतिरिक्त पेचीदा और जोखिम–भरा बनाने के लिए नियतिबद्ध है। जो भी हो, सनातन के मूलाधार में जो सतत अग्रगामी परंपरा अभिनिविष्ट है उसे कभी न कभी यह कठिन कार्य हाथ में लेना ही होगा।

तुलसी ने और नहीं तो उत्तरकाण्ड के अमानवीय एवं अयुक्तिपूर्ण सीता–निर्वासन और शम्बूकवध के अधोगामी प्रसंगों का बहिष्करण कर एक क्रांतिकारी परंपरा का सूत्रपात किया। उस परंपरा में अभी प्रभूत संभावनाएँ संगर्भित हैं।

भाग-चार

"यद् रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतौपि" : तुलसी में वाल्मीकि के सीता–राम सम्बंध की वैकल्पिक उद्‌भावना

भिन्न–भिन्न काल में, भिन्न–भिन्न वैचारिक समूहों का प्रतिनिधित्व करनेवाली कई रामायणें लिखी गईं किंतु देश की मुख्य धारा में वाल्मीकीय रामायण को इतनी प्रतिष्ठा मिली कि 'रामायण' कहने से (विशाल हिंदी क्षेत्र में तुलसीकृत रामचरितमानस को छोड़कर) सामान्यतः वाल्मीकीय रामायण का ही बोध होता है। फिर इसके लौकिक संस्कृत (आध्यात्म–प्रधान वैदिक भाषा के बरअक्स, उस भाषा के साथ भिन्न–भिन्न इलाक़ों में लोक–प्रचलित भाषाओं के शब्द भंडार को संसृष्ट कर पाणिनि द्वारा व्याकरण के औज़ार से गढ़ी गई एक समन्वयात्मक, कालातीत एवं मानक संपर्क भाषा) का 'आदिकाव्य' होने के कारण अन्य रामायणें इसके समकक्ष कैसे आ सकती थीं? तुलसीदास ने रामचरितमानस लिखते समय अपनी रचना के बारे में 'नानापुराणनिगमागमसम्मतं' के साथ 'यद् रामायणे निगदितं 'क्वचिदन्यतौपि' कहना ज़रूरी समझा. सीता का चरित्र–निर्माण शायद इस क्वचिदन्यतौपि के विस्तार का सीमांत है।

मध्यकाल की एक नारी–केंद्रित विशेषता संभवतः अलक्षित रह गई है। इसी काल में जयदेव ने अपने गीतगोविंदम् में कृष्ण को राधाकृष्ण में अंतरित कर दिया– भागवत पुराण में राधा का नामोल्लेख तक नहीं, बस रासपंचाध्यायी (भागवत, 10:29–33) के एक प्रसंग में उस (अनाम) गोपी का ज़िक्र भर है, जिससे 'आराधित' कृष्ण प्रसन्न होकर, रासलीला के दौरान, कुछ समय के लिए, उसे साथ लेकर अन्य गोपियों से अलग, एकांत में चले गए थेः (10:30:28)। इसी काल में तुलसी ने राम को सीता–निर्वासन के कलंक से मुक्तकर सीताराम में अंतरित कर दिया जिसे लोक ने अपूर्व स्वीकृति और प्रतिष्ठा प्रदान की.

रामचरितमानस लिखना शुरू करने के पूर्व, नहीं तो अरण्य काण्ड तक आते–आते निश्चय ही तुलसीदास को वाल्मीकीय रामायण में उत्तरकाण्ड के प्रक्षिप्त होने की प्रतीति हो गई थी। रावण द्वारा अपहृत निर्दोष सीता को लंका में अकेली और असहाय अवस्था में जिस भीषण मानसिक और शारीरिक यातना से गुज़रना पड़ा, उसके अतिरिक्त स्वजनों द्वारा उनके चरित्र पर संदेह उससे भी अधिक मारक था– एक ऐसे दुर्भाग्यपूर्ण और यंत्रणादायक घटित के ब्याज से उनके चरित्र पर दोषारोपण जिस पर उनका कोई वश नहीं था। बिना किसी अपराध के दोहरा दंड। तुलसी ने मां सीता को इस दोहरे, अन्यायपूर्ण आघात से रचनात्मक मुक्ति दिलाने का मन बना लिया होगा। इसीलिए अरण्यकांड में बिना किसी प्रकट संदर्भ के उन्होंने एक दोहे और उसके बाद पांच चौपाइयों का समावेश कियाः

लछिमन गए बनहि जब लेन मूल फल कंद।
जनकसुता सन बोले बिहसि कृपा सुख बृंद। 23।
सुनहु प्रिया ब्रत रुचिर सुसीला। मैं कछु करबि ललित नरलीला।।
तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा। जौ लगि करौं निसाचर नासा।।
जबहिं राम सब कहा बखानी। प्रभु पद धरि हियँ अनल समानी।।
निज प्रतिबिम्ब राखि तहँ सीता। तैसइ सील रूप सुबिनीता।।
लछिमनहुँ यह मरमु न जाना। जो कछु रचित रचा भगवाना।।

(आहार के लिए कंद–मूल–फल एकत्र करने लक्ष्मण वन गए हुए थे। एकांत पाकर कृपा और सुख के आश्रय राम ने हंसकर जानकी जी से कहा– हे पातिव्रतधर्मपरायणे, सुशीले, प्रिये, सीते, सुनो। अब मैं कुछ विचित्र मानव–लीलाएँ करूँगा। जब तक मैं राक्षसों का विनाश करूं, तुम अग्नि में निवास करो। जब राम ने 'पूरी बात खोलकर' कह दी, सीता प्रभु श्रीराम के चरणों को हृदय में रखकर अग्नि में प्रवेश कर गईं। वे अपनी यथावत् छायामूर्ति वहां छोड़ गईं– शील, स्वभाव, रूप और विनम्रता में ठीक अपने अनुरूप।)

सीता की ओर से प्रतिरोध तो दूर, किसी जिज्ञासा, किसी आशंका तक का उल्लेख नहीं. बस 'जबहिं राम सब कहा बखानी' के अवगुंठन में तुलसी एक दोहे व पाँच चौपाइयों से परंपरा की पूरी ज़मीन बदलकर रख देते हैं।

वाल्मीकीय रामायण के युद्धकांड में सीता पर राम का आक्षेप :–

वाल्मीकि ने जैसे राम के विरुद्ध और सीता के पक्ष से अपनी प्रतिबद्धता दिखाते हुए इस प्रसंग को सात सर्गों (112–118) में विस्तार दिया है। प्रारम्भ ही संदेह का बीज बो देता है। राम हनुमान् से कहते हैं– आप महाराज विभीषण की आज्ञा लेकर लंकानगरी जाएँ और सीता से मिलकर, उनका कुशल समाचार पूछकर लौट आएँ; साथ ही उन्हें सुग्रीव व लक्ष्मण सहित मेरा कुशल समाचार भी दे दें और सूचित कर दें कि रावण युद्ध में मारा गया....बस?

सीता अशोकवाटिका में राक्षसियों से घिरी, स्नान–रहित, मलिन और सशंक बैठी हैं. राम आदि का कुशल समाचार देकर हनुमान् सीता से कहते हैं– राम अपने शत्रु का वध करके सफलमनोरथ हो गए हैं और उन्होंने आपका कुशल समाचार पूछा है। फिर अपनी ओर से जोड़ देते हैं– उन्होंने आपके उद्धार के लिए जो प्रतिज्ञा की थी उसके लिए निद्रा त्यागकर अथक परिश्रम किया और समुद्र में पुल बाँधकर, रावण का वध करके उसे पूरी किया। सीता जी इस 'प्रिय' समाचार को सुनकर हनुमान् को कुछ पुरस्कार देना चाहती हैं किंतु उन्हें कोई उपयुक्त वस्तु नहीं दिखती (पास में कुछ है ही कहाँ?)। सीता को धर्मसंकट से मुक्त करने हेतु हनुमान् उन्हें आश्वस्त करते हैं कि उनके (हनुमान् के) सारे प्रयोजन सिद्ध हो चुके हैं और उन्हें सब कुछ मिल गया है। तब सीता हनुमान् से सीधे–सीधे मन की बात कहती हैं– मैं अपने भक्तवत्सल स्वामी का दर्शन करना चाहती हूँ। ऐसे में हनुमान् जी क्या कहते? सीता जी की इच्छा पूरी होने का भरोसा देकर लौट आते हैं। वहाँ से लौटकर राम से सीता को दर्शन देने की पैरवी करते हुए हनुमान् कहते हैं– सीता जी शोक–संतप्त हैं और उनकी आँखों में आँसू भरे हैं।

हनुमान् की बात सुनकर राम उन्हें कुछ उत्तर देने के बजाए ध्यानस्थ हो जाते हैं। फिर नीची निगाह किए हुए विभीषण से कहते हैं– सीता को सिर से (बाल धोकर) स्नान कराने के बाद दिव्य अंगराग व दिव्य आभूषणों से सुसज्जित कर शीघ्र मेरे पास ले आइए। मर्यादानुसार निवेदित किए जाने पर सीता ने विभीषण से कहा– मैं बिना स्नान किए, अभी ही पतिदेव का दर्शन करना चाहती हूँ। विभीषण ने आग्रह किया कि आपको रामचंद्र जी की आज्ञानुसार ही करना चाहिए। आख़िर सीता ने बाल धोकर स्नान किया, सारे श्रृंगार किए और बहुमूल्य वस्त्राभूषण धारणकर विभीषण के संरक्षण में पालकी में बैठकर श्रीराम के शिविर में आईं। पालकी दूर रख दी गई। विभीषण ने ध्यानस्थ राम के पास जाकर सीता के उपस्थित होने की सूचना दी। किंतु राम यह सोचकर, कि सीता बहुत दिनों तक राक्षस के घर में रहीं, एक साथ रोष, हर्ष और विषाद में डूब जाते हैं। उन्हें सीता के पालकी से आने पर आपत्ति–सी है। जैसे–तैसे उन्होंने सीता को पास लाने की अनुमति दी। विभीषण अपने सुरक्षाकर्मियों से वानर योद्धाओं को वहाँ से दूर हटाने लगते हैं तो राम रोषपूर्वक इस काम को रुकवाते हैं और आदेश देते हैं कि सीता पालकी छोड़कर पैदल ही मेरे पास आएँ जिससे सभी वानर बेरोकटोक उनका दर्शन कर सकें। राम के इस आदेश से विभीषण, लक्ष्मण, सुग्रीव व हनुमान् बहुत व्यथित होते हैं, उन्हें लगता है, सीता के प्रति राम न केवल निरपेक्ष हो गए हैं, उनसे अप्रसन्न भी हैं। ख़ैर, लज्जा से सिकुड़ी–सहमी सीता किसी तरह विभीषण के पीछे–पीछे चलती, राम के सामने उपस्थित होती हैं और इतने दिनों बाद राम का मुख देखकर निर्मल चंद्रमा की तरह खिल उठती हैं।

राम ने सीता से कहा– युद्ध में शत्रु को पराजित कर मैंने तुम्हें उसके चंगुल से छुड़ा लिया। मेरे अमर्ष का अंत हो गया, मुझ पर लगा कलंक धुल गया, मैंने शत्रु और शत्रु–जनित अपमान दोनों को नष्ट कर दिया। सबने मेरा पराक्रम देख लिया और मैं अपनी प्रतिज्ञा के बोझ से मुक्त हो गया। चंचल–चित्त रावण द्वारा तुम्हें हर लिए जाने से दुर्भाग्यवश जो दोष मुझे लग गया था, मैंने मानवोचित पुरुषार्थ से उसका परिमार्जन कर दिया।

राम इस कार्य में हनुमान, सुग्रीव और विभीषण के बहुमूल्य सहयोग का कृतज्ञतापूर्वक विस्तार से उल्लेख करते हैं किंतु सीता को समीप देखकर उनका हृदय लोकापवाद के भय से विदीर्ण हो रहा है। राम सीता से आगे कहते हैं– तुम्हें मालूम होना चाहिए कि मैंने जो युद्ध का उद्योग किया, जिसमें मित्रों की वीरता से मुझे विजय मिली, वह तुम्हें पाने के लिए नहीं, सदाचार की रक्षा, चारों ओर फैले अपवाद के

निवारण और अपने प्रसिद्ध वंश पर लगे कलंक को धोने के लिए था.....तुम्हारे चरित्र पर संदेह का अवसर उपस्थित है और तुम मेरे सामने खड़ी हो. जिस तरह रुग्ण आँखवाले को दीपक प्रतिकूल लगता है, उसी तरह तुम मुझे अत्यन्त प्रतिकूल लग रही हो। अतः हे जनकपुत्री, तुम्हारी जहाँ इच्छा हो, चली जाओ। दसों दिशाएँ तुम्हारे लिए खुली हैं, अब मुझे तुमसे कोई मतलब नहीं.....रावण तुम्हें अपनी गोद में उठाकर ले गया, दुष्ट ने तुम पर कुदृष्टि डाली। ऐसी स्थिति में अपने कुल को उच्च बतानेवाला मैं तुम्हें कैसे ग्रहण कर सकता हूँ? तुम चाहो तो भरत या लक्ष्मण के संरक्षण में सुखपूर्वक रहने पर विचार कर सकती हो। इच्छा हो तो शत्रुघ्न, सुग्रीव या विभीषण के पास भी रह सकती हो। तुम–जैसी दिव्यरूप सुंदरी को घर में मौजूद देखकर रावण बहुत दिनों तक धैर्य नहीं रख पाया होगा। इतने सारे लोगों के सामने राम के मुख से ऐसी भयंकर बातें सुनकर सीता हाथी की सूँड़ से आहत लता की तरह आँसू बहाने लगीं. लज्जा से गड़ गईं। अपने में ही सिमटकर रह गईं.

सीता का प्रतिकार :– सीता का प्रतिकार जैसे वाल्मीकि का अपना ही उद्‌गार हो। आँसुओं से भीगे अपने मुख को आँचल से पोंछते हुए सीता ने धीरे–धीरे बोलना शुरू किया– हे वीर, आप ऐसी कठोर, अनुचित, कर्णकटु, रूक्ष और अकथनीय बातें क्यों कर रहे हैं जो एक निम्न स्तर का पुरुष निम्नस्तर की स्त्री से ही कर सकता है? मैं अपने सदाचार की शपथ लेकर कहती हूँ, मैं संदेह से परे हूँ। निम्न श्रेणी की स्त्रियों का आचरण देखकर समूची स्त्री–जाति पर आपका संदेह करना उचित नही। रावण के शरीर से जो मेरे शरीर का स्पर्श हुआ, मेरी अवशता में हुआ। मेरा दुर्भाग्य, मेरे अंग पराधीन थे। जो मेरे अधीन है– मेरा हृदय– वह सदा आपमें ही अनुरक्त रहा। हम दोनों इतने दिनों साथ रहे, इस दौरान हमारा परस्पर अनुराग बढ़ता ही गया। इतने पर भी आप मुझे नहीं समझ पाए तो इसमें मेरा क्या दोष! जब आपने मुझे देखने के लिए (लंका–युद्ध के पहले) हनुमान् जी को भेजा था, तभी मेरा परित्याग कर दिया होता तो उसी समय मैं अपने प्राणों को त्याग देती। तब आपको अपने प्राणों को संकट में डालकर युद्ध आदि का उद्योग न करना पड़ता और आपके मित्रों को भी अकारण कष्ट न उठाना पड़ता। आपने एक ओछे मनुष्य की भाँति केवल रोष का अनुसरण किया और मेरे शील–स्वभाव का विचार न कर निम्न कोटि की स्त्री मान लिया......और अंत में, हे लक्ष्मण, मेरे लिए चिता तैयार करो, मेरे दुःख का अब यही इलाज है, मिथ्या कलंक से कलंकित होकर अब मैं जीना नहीं चाहती।

लक्ष्मण ने रोष के साथ राम की ओर देखा किंतु राम ने इशारे से अपना अभिप्राय इंगित कर दिया और उनकी सम्मति से ही उन्होंने चिता तैयार की। उस समय राम ऐसे प्रलयकालीन संहारकारी यमराज–तुल्य दिख रहे थे कि कोई मित्र उन्हें समझाने, कुछ कहने, यहाँ तक कि उनकी ओर देखने तक का साहस नहीं कर सका। जब सीता ने राम की परिक्रमा की, वे सिर झुकाए खड़े रहे। फिर सीता ने अग्निदेव के समीप जाकर कहा– यदि मेरा हृदय कभी एक क्षण के लिए भी श्री रघुनाथ से दूर न हुआ हो तो संपूर्ण जगत के स्वामी अग्निदेव मेरी सब ओर से रक्षा करें....सीता के अग्नि–प्रवेश करते समय राक्षस और वानर ज़ोर–ज़ोर से हाहाकार कर उठे। उनका आर्तनाद चारों ओर गूँज उठा।

अंततः मूर्तिमान अग्निदेव सीता को गोद में लिए हुए चिता से ऊपर उठे और यह कहते हुए उन्हें श्रीराम को समर्पित कर दिया कि इनमें कोई पाप या दोष नहीं है। विस्तार में सीता के सतीत्व की साक्षी में कहे गए अग्निदेव के वचन सुनकर श्रीराम प्रसन्न हो गए. उन्होंने कहा– लोगों में सीता की पवित्रता का विश्वास दिलाने के लिए यह अग्नि–परीक्षा आवश्यक थी। यदि मैं यह न करता तो लोग यही कहते कि दशरथपुत्र राम बड़ा मूर्ख और कामी है। मुझे तो पहले ही विश्वास था कि अपने ही तेज से सुरक्षित सीता पर रावण कोई अत्याचार नहीं कर सकता था, जैसे महासागर अपनी तट–भूमि को नहीं लाँघ सकता। यह है वाल्मीकि द्वारा उकेरा गया सीता का और सीता के संदर्भ में राम का चरित्र।

लंकाकांड के उक्त प्रसंग में तुलसी की सीता :– तुलसी में भी लंकाकांड में यह प्रसंग आता है। उस पर 'यद् रामायणे निगदितम्' की छाया भी है। किंतु भक्त तुलसी अरण्य काण्ड के उपरोद्धृत एक दोहे और पांच चौपाइयों की क़िलेबंदी से अपने आराध्य राम के चारित्रिक विचलन के समाहार का मार्ग निकाल लेते हैं।

यहाँ भी श्रीराम रावण पर विजय का समाचार देने और सीता का समाचार लाने हेतु हनुमान् को उनके पास भेजते हैं। यहाँ भी इस समाचार को सुनकर प्रसन्न हुई सीता हनुमान् को कुछ पुरस्कार देने की इच्छा व्यक्त करती हैं और हनुमान् को यह कहकर समझाना पड़ता है कि रण में शत्रु–सेना को जीतकर, निर्विकार खड़े राम को देखकर, मैंने जगत् का राज्य पा लिया। यहाँ भी सीता हनुमान् से ऐसा उपाय करने का आग्रह करती हैं कि वे श्रीराम के कोमल श्याम शरीर का दर्शन कर सकें। लेकिन इसके आगे की कथा कुछ अलग राह पर चलती है।

हनुमान् से सीता की राम को देखने की इच्छा की सूचना पाकर राम ने विभीषण और युवराज अंगद को बुलाया और उन्हें हनुमान् के साथ अशोक वाटिका जाकर आदर के साथ सीता को ले आने को कहा। जब तीनों सीता के पास पहुँचे, राक्षसियाँ विनीत भाव से उनकी सेवा में लगी थीं। विभीषण के आदेश पर इन राक्षसियों ने विधिवत् सीता का स्नान कराया। अनेक प्रकार के आभूषण पहनकर सीता हर्ष के साथ एक सुंदर पालकी में सवार हुईं। पालकी के चारों ओर हस्तदंड लेकर रक्षक चले। जब रीछ–वानर सीता के दर्शन के लिए उमड़ने लगे, रक्षक क्रुद्ध होकर उन्हें हटाने दौड़े। तब श्रीराम ने हँसकर कहा, बेहतर होगा, सीता पैदल ही आएँ जिससे वानर उन्हें माता की तरह देख सकें। राम की बात सुनकर रीछ–वानर प्रसन्न हो गए। आकाश से देवताओं ने पुष्प–वर्षा की। और तब अरण्यकांड में जोड़े गए उपरोक्त अंश से तुलसी ने तार जोड़ दियाः

सीता प्रथम अनल महुँ राखी। प्रगट कीन्हि चह अंतर साखी।।

{सीता को (राम ने) पहले अग्नि में रख दिया था. अंतर्यामी राम अब उन्हें प्रकट करना चाहते हैं।}

और आगे–

तेहि कारन करुनानिधि कहे कछुक दुर्बाद। सुनत जातुधानीं सब लागीं करै विषाद।।

{इसी कारण करुणानिधि राम ने कुछ कटु वचन कहे जिन्हें सुनकर राक्षसियों को विषाद हुआ.}

राम ने कुछ कटु वचन कहे– किसके लिए और क्यों? निश्चय ही वे सीता के लिए थे। किंतु तुलसी सीता का नाम तक नहीं लेते। सीता पर उनका क्या प्रभाव पड़ा और उनकी क्या प्रतिक्रिया रही, तुलसी मौन। कटु वचन का एक ही असर हुआ कि उसे सुनकर राक्षसियों को (सीता की पवित्रता के प्रति पूर्ण आश्वस्ति और तदनुरूप सीता के प्रति पूर्ण सहानुभूति के चलते) विषाद हुआ। लेकिन स्वयं सीता पर 'कछुक दुर्बाद' की क्या प्रतिक्रिया हुई? तुलसी इसे स्पष्ट करने की ज़रूरत नहीं समझते क्योंकि प्रस्तुत सीता छाया सीता हैं। राम व सीता दोनों इस तथ्य को जानते हैं।

इसके ठीक बाद की चौपाइयों में सीता राम के वचन को शिरोधार्य कर लक्ष्मण से शीघ्रता से चिता लगाने की बात करने लगती हैं–

प्रभु के वचन सीस धरि सीता। बोली मन क्रम वचन पुनीता।।
लछिमन होहु धरम के नेगी। पावक प्रगट करहु तुम बेगी।।

यहाँ वाल्मीकि के लक्ष्मण के अनुरूप तुलसी के लक्ष्मण ने भी राम से कुछ अपेक्षा की। किंतु उनकी ओर रोषपूर्वक देखकर नहीं। बस सजल नेत्रों से दोनों हाथ जोड़कर खड़े रह गए। और राम की चुप्पी से लक्ष्मण को उनका रुख़ समझ में आ गया तो दौड़कर चिता लगाने में व्यस्त हो गए। चूंकि रामचरितमानस में जिस सीता का हरण हुआ था, वे असली नहीं, छाया सीता थीं, रावण के संपर्क में आने से सीता के प्रति राम के मन में किसी तरह के संदेह या क्रोध के लिए कोई गुंजाइश नहीं थी। उनके कटु वचन बनावटी थे। सिर्फ़ इसलिए कहे गए ताकि छाया सीता अग्नि में समा जायँ और अग्निदेव असली सीता को (जो अरण्यकांड में अग्नि की सुरक्षा मे रख दी गई थीं) प्रकट कर दें।

यहां रामचरितमानस की कथा में कुछ अन्विति–दोष का आरोपण हो सकता है। पाठक तो यह रहस्य जानते हैं, इसलिए उन्हें राम के द्वारा यूं ही कुछ कटु वचन कहे जाने और सीता के तत्काल अग्निपरीक्षा के लिए तत्पर हो जाने से कोई अचंभा नहीं होगा। किंतु सुधी पाठक वहां उपस्थित लक्ष्मण, विभीषण, वानरसेना और राक्षसियों पर भी सुसंगत प्रतिक्रिया की अपेक्षा कर सकते हैं जिन्हें सीता के छाया–सीता होने का कोई आभास नहीं था। राम ने वनवास काल में असली सीता को अग्नि को समर्पित

कर, आगे की लीला के लिए, जो छाया सीता का निर्माण किया था, अतिशय गोपन होने के कारण लक्ष्मण तक को उसकी भनक नहीं थी। इसलिए सभी उपस्थितों की निगाह में सीता की पवित्रता सिद्ध करने के लिए अग्नि–परीक्षा का प्रसंग लाना आवश्यक था। किंतु तुलसी ने उसे असली सीता की छाया सीता से अदलाबदली के रूप में प्रस्तुत कर दिया। सवाल है, वहां उपस्थित लोगों की दृष्टि में अग्नि परीक्षा का अवसर क्यों और कैसे उपस्थित हुआ? राम ने कटु वचन क्यों कहे और सीता उन्हें सुनकर चुपचाप अग्निपरीक्षा के लिए राज़ी कैसे हो गईं? भक्त तुलसी इस किंचित् अन्विति–दोष की परवाह नहीं करते। वाल्मीकि ने राम और सीता के बीच जो कटु संवाद कराया था, वह भक्त तुलसी के लिए असंभव था। अपने आराध्य राम और माता सीता के मध्य वैसा कटु और अप्रिय दृश्य उपस्थित करना तुलसी के लिए अकल्पनीय था, राम और सीता दोनों की मर्यादा का हनन था। तो उन्होंने पूरे अप्रिय प्रसंग को एक चौपाई में समेट लिया– 'तेहि कारन करुनानिधि कहे कछुक दुर्बाद। सुनत जातुधानीं सब लागीं करै विषाद।।' इसमें सिर्फ़ एक शब्द है दुर्बाद और उसका असर है राक्षसियों का विषाद; छाया सीता ने उसे कैसे लिया, इस पर तुलसी मौन हैं। इसके बाद छाया सीता लक्ष्मण से शीघ्रता के साथ अग्नि प्रकट करने का निवेदन करने लगती हैं और किसी को कोई आश्चर्य नहीं होता।

प्रक्षिप्त उत्तरकांड की प्रक्षिप्ति को पहचानकर, इसी अग्नि–परीक्षा की बुनियाद पर तुलसी सीतानिर्वासन प्रसंग को सिरे से ख़ारिज कर देते हैं। उन्होंने लव और कुश का जन्म दिखाया किंतु वन में नहीं, अयोध्या में। प्रक्षिप्ति की अवहेलना करने के लिए तुलसी उसका कोई प्रत्याख्यान नहीं रचते। बस छाया सीता की उद्भावना से, भक्ति–मार्ग के अनुरूप उसका समाहार निकाल लेते हैं।

राम और उनके भ्राताओं के पुत्र–जन्म का प्रसंग तुलसी महज़ तीन चौपाइयों में समेटकर निकल जाते हैं–

दुइ सुत सुंदर सीता जाए। लव कुस बेद पुरानन्ह गाए।।
दोउ विजई बिनई गुन मंदिर। हरि प्रतिबिंब मनहुँ अति सुंदर।।
दुइ दुइ सुत सब भ्रातन्ह केरे। भए रूप गुन सील कनेरे।।

(दोहा–24 के बाद पाँचवीं, छठी और सातवीं चौपाइयाँ)

कहा जा सकता है कि अयोध्या में लव और कुश का जन्म दिखाना महज़ 'क्वचिदन्यतोपि' (कुछ जोड़ना भर) नहीं है, वाल्मीकि का पूर्ण अस्वीकार और वैकल्पिक संरचना है। इसमें कोई संदेह नहीं। यह तभी संभव हो सकता था जब तुलसी को पूर्ण प्रतीति रही हो कि वाल्मीकीय रामायण में सीतानिर्वासन, बल्कि (शंबूक–प्रसंग सहित) पूरा उत्तरकाण्ड ही प्रक्षिप्त है।

निहित स्वार्थों द्वारा किए गए इस प्रक्षिप्तीकरण के सदियों बाद तुलसी ने पहली बार इसे प्रक्षिप्त के रूप में पहचाना और अपने लोकमंगलकारी भक्त व्यक्तित्व के अनुरूप उसका समाहार किया। तुलसी ने जिस तरह काशी के पंडितों के विरुद्ध विद्रोह कर पहली बार रामकथा को 'देववाणी' संस्कृत के बजाय लोकभाषा अवधी में लिखा, ठीक उसी तरह अपने पूर्ववर्ती कालिदास (महाकाव्य रघुवंशम्) और भवभूति (नाटक उत्तररामचरितम्) द्वारा उपरोक्त प्रक्षिप्ति को वाल्मीकीय परंपरा का अविभाज्य अंग मानते हुए उसका अनुगमन किए जाने के विरुद्ध भी विद्रोह किया। विडंबना यह कि परंपरा के प्रक्षिप्ति–जन्य प्रदूषण के विरुद्ध यह क्रांतिकारी क़दम उठाने का काम एक परंपरावादी भक्ति–कवि को करना पड़ा जिसने शुरू में ही "यद् रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतौपि" द्वारा वाल्मीकीय परंपरा के प्रति अपनी प्रतिश्रुति व्यक्त कर दी थी। तुलसी–जैसा स्वतंत्रचेता व्यक्ति ही ऐसा कर सकता था।

भाग-पाँच

तुलसी का रामचरितमानस और वाल्मीकीय रामायण का मूल स्वरूप– ग

आलेख के भाग–दो में वाल्मीकीय रामायण के युद्धकाण्ड के अंतिम सर्ग (128) में फलश्रुति का ज़िक्र आया था। इस सर्ग के अंत के कुल 19 श्लोक (128ः 107–125) रामायण की फलश्रुति का उल्लेख करते

हैं। इस संदर्भ में स्पष्ट कर दिया जाये कि वाल्मीकीय रामायण में केवल दो काण्ड ही प्रक्षिप्त नहीं है, शेष काण्डों में भी यत्र–तत्र, ख़ासकर अलौकिकता की पच्चीकारी करनेवाले, प्रक्षिप्त अंश मिल जाते हैं (आगे देखें)। युद्धकाण्ड के अंत में आनेवाली फलश्रुति तो घोषित तौर पर प्रक्षिप्त है। फलश्रुति के पहले ही श्लोक से स्पष्ट है–

धर्म्यं यशस्यमायुष्यं राज्ञां च विजयावहम्। आदिकाव्यमिदं चार्षं पुरा वाल्मीकिना कृतम्। 128:107।

(यह (महाकाव्य) धर्म, यश और आयु की वृद्धि करनेवाला तथा राजाओं के लिये विजयदायी है। यह आदिकाव्य है जिसे पूर्वकाल में ऋषि वाल्मीकि ने रचा था।)

यह शायद वाल्मीकीय रामायण का एकमात्र श्लोक है जिसमें किसी अन्य व्यक्ति ने अपनी ओर से वाल्मीकीय रामायण में वाल्मीकि के बारे में कुछ लिखा है। इन श्लोकों का प्रक्षेपक एक सरल व्यक्ति है। यह कार्य वह वाल्मीकि का स्थानापन्न बनकर नहीं करता, स्वयं से पृथक् उनका उल्लेख करता है, उन्हें पूर्वकाल का ऋषि बताता है।

किंतु इस फलश्रुति से इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि इसके सन्निवेश के समय तक रामायण में उत्तरकाण्ड नहीं था, अन्यथा, परम्परानुसार, फलश्रुति उत्तरकाण्ड के अंत में आती। तात्पर्य यह कि फलश्रुति उस आदिकाव्य की है जिसमें उत्तरकाण्ड शामिल नहीं है। स्पष्ट है कि यह 'प्रक्षेपक' शुरूआती दौर के प्रक्षेपकों में था, बल्कि असली अर्थ में प्रक्षेपक था ही नहीं। किंतु उत्तरकाण्ड को प्रक्षिप्त मानने का एक ठोस आधार अवश्य दे गया। बाद में आनेवाले उत्तरकाण्ड के घाघ प्रक्षेपकों ने उस काण्ड के अंतिम सर्ग (111) में फलश्रुति का समावेश तो किया किंतु युद्धकाण्ड में पहले ही आ चुकी फलश्रुति को हटाना भूल गये। परिणाम यह हुआ कि आज उपलब्ध वाल्मीकीय रामायण में दो–दो जगह फलश्रुति मिलती है जो परंपरा के प्रतिकूल है। छोटी–मोटी फलश्रुतियाँ बीच में भी मिल जायेंगी लेकिन वे सही अर्थ में समग्र रामायण की फलश्रुति नहीं हैं। इस संभावना से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि आदि कवि वाल्मीकि के समय तक फलश्रुति देने की परम्परा ही न रही हो।

क्या वाल्मीकि राम के समकालीन थे (अंतःसाक्ष्य के परिप्रेक्ष्य में)?

I - **बालकाण्ड :–** वाल्मीकीय रामायण में बालकाण्ड सर्ग–1 से सर्ग–4 तक वाल्मीकि–केंद्रित है। सर्ग–1 में वाल्मीकि नारद से पूछते हैं– इस समय संसार में गुणवान्, पराक्रमी, परोपकारी, धर्मज्ञ, दृढ़प्रतिज्ञ, सदाचारी तथा प्रियदर्शन कौन है? नारद वाल्मीकि को अतिसंक्षेप में रामकथा सुनाते हैं जो इस काण्ड के अनुसार वाल्मीकि–रचित रामायण का आधार बनती है।

यहाँ सबसे बड़ी विसंगति यह है कि नारद के आगमन और उनके द्वारा रामकथा के संक्षिप्त वर्णन के समय तक राम बस अयोध्या लौटकर राज्य सँभाल पाये थे– नन्दिग्रामे जटां हित्वा भ्रातृभिः सहितोऽनघः। रामः सीतामनुप्राप्य राज्यं पुनरवाप्तवम् (बा. का., 1:89) (निष्पाप राम ने सीता को प्राप्त करने के बाद नन्दिग्राम में अपनी जटा कटाकर भाइयों के साथ पुनः अपना राज्य प्राप्त किया।)

आगे की कथा कहने के बजाय नारद भविष्यवाचन शैली में केवल इतना बताते हैं कि रामराज्य में सभी प्रसन्न, सुखी, संतुष्ट, पुष्ट, धर्मपरायण तथा रोगमुक्त होंगे। उन्हें अकाल का भय नहीं रहेगा। कोई अपने पुत्र की मृत्यु नहीं देखेगा, स्त्रियाँ विधवा नहीं होंगी तथा सदा पतिव्रता रहेंगी। न आग लगने का भय होगा, न जल में डूबने का। राष्ट्र धन–धान्य से सम्पन्न रहेगा, भूख और चोरी का डर जाता रहेगा, सत्ययुग की तरह सभी लोग प्रसन्न रहेंगे। राम सौ अश्वमेध यज्ञ करेंगे जिनमें प्रभूत स्वर्णदान करेंगे। ब्राह्मणों को दस हज़ार करोड़ (एक खरब) गायों तथा अपरिमित धन का दान देंगे। संसार में चारों वर्णों को अपने–अपने धर्म में नियोजित रखेंगे। इस तरह ग्यारह हज़ार वर्षों तक राज्य करने के बाद राम ब्रह्मलोक सिधारेंगे।

इसके आगे नारद किसी अन्य भावी घटित का वर्णन करने के बजाय (तब तक अस्तित्व–विहीन) रामायण की लघु फलश्रुति भी बता डालते हैं जो ग़ौरतलब है– वेदों के समान पवित्र, पापनाशक और पुण्य से ओतप्रोत इस रामचरित (रामायण नहीं) का जो पाठ करेगा वह सभी पापों से मुक्त हो जायेगा। उसकी

आयु में वृद्धि होगी और मृत्यु के बाद पुत्र, पौत्र तथा परिजनों के साथ (?) स्वर्ग प्राप्तकर वहीं प्रतिष्ठित होगा। ब्राह्मण इसका पाठ करेगा तो विद्त्ता प्राप्त करेगा, क्षत्रिय पाठ करेगा तो पृथ्वी का राज्य प्राप्त करेगा, वैश्य पाठ करेगा को व्यापार में लाभ होगा और शूद्र पाठ करेगा तो उसे भी महत्व (?) मिलेगा। इतना बताने के बाद, वाल्मीकि और उनके शिष्यों से पूजित होकर नारद जी आकाशमार्ग से चलते बने (बा. का., 1:90–100)।

कहने की ज़रूरत नहीं कि यह शुद्ध पौराणिक शैली है, अतिशयोक्ति अलंकार में सत्यनारायण कथा (स्कंद पुराण) के टक्कर की। ठीक पुराणों की तरह यहां वर्णव्यवस्था का महिमागान हुआ है। रामायण (राम की यात्रा– अयोध्याकांड से युद्धकांड) की कथा से इसका कोई तारतम्य नहीं। स्पष्ट है कि यह बहुत बाद का प्रक्षिप्त है। और प्रक्षेपक किस वर्ण का व्यक्ति रहा होगा, इसका सुराग़ भी दे जाता है। मज़े की बात यह कि बालकाण्ड के इस प्रक्षिप्त और उत्तरकाण्ड के शम्बूक–वध वाले प्रक्षिप्त में अंतर्विरोध है। ऊपर नारद ने भविष्यवाचन शैली में रामराज्य के बारे में बताया– रामराज्य में कोई अपने पुत्र की मृत्यु नहीं देखेगा। और (प्रक्षिप्त) उतरकाण्ड में शम्बूक–वध का मूल कारण ही एक ब्राह्मण के पुत्र की असमय मृत्यु है (उ. का., 73:2–3)। वहाँ राम को इस अनहोनी का कारण बताया जाता है– एक शूद्र शम्बूक द्वारा की जा रही घोर तपस्या। बताने वाले सज्जन भी (संयोग से) नारद नामधारी कोई ब्राह्मण हैं जो, स्पष्ट है, इस प्रक्षेपण से तपस्या पर ब्राह्मणों का एकाधिकार स्थापित करना चाहते हैं।

(प्रक्षिप्त) बालकाण्ड के दूसरे सर्ग में नारद के प्रस्थान के बाद वाल्मीकि शिष्यों के साथ तमसा नदी के तट पर पहुँचते हैं, जहाँ निषाद द्वारा क्रौंच–युगल में से नर का वध होता है। मादा के चीत्कार से द्रवित वाल्मीकि के मुँह से लौकिक संस्कृत का वह पहला छंद (श्लोक) फूट पड़ता है– मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वती समाः। यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्। (बा.का.,2:15)

वाल्मीकि इस अनायास स्फुटित श्लोक से विस्मित–संभ्रमित, अपने शिष्य भरद्वाज के साथ इस पर वार्ता करते हुए आश्रम पहुँचते हैं। तभी आश्रम में ब्रह्मा जी का आगमन होता है। वाल्मीकि यह श्लोक ब्रह्मा को सुनाते हैं। ब्रह्मा उसे अपने संकल्प और प्रेरणा का परिणाम बताकर वाल्मीकि को नारद द्वारा बतायी गई रामकथा (जो अपूर्ण है) के आधार पर रामकाव्य का सृजन करने का आदेश देते हैं। तदुपरांत वाल्मीकि राम के 'उदार चरित' का प्रतिपादन करनेवाले, 'मनोहर पदोंवाले' महाकाव्य की रचना कर डालते हैं (कितना समय लगा, किसी को जानने की जिज्ञासा नहीं हुई)। सर्ग–3 में इस महाकाव्य की विषय–वस्तु का वर्णन है। सर्ग–4 में वाल्मीकि 24 हज़ार श्लोकों का रामकाव्य लव–कुश को 'पढ़ाते' हैं। लव–कुश मुनिमंडली में उसका गायन करते हैं और प्रशंसित होते हैं। फिर एक दिन जब वे अयोध्या के मार्गों पर रामायण का गायन करते हुए विचर रहे होते हैं, उन पर राम की नज़र पड़ जाती है। राम उन्हें बुलाकर सम्मानित करते हैं और अयोध्या के राज–दरबार में वीणा–वादन के साथ उनका गायन सुनते हैं। यह उत्तरकाण्ड में राम के अश्वमेध यज्ञ के अवसर पर लव–कुश द्वारा किये गये रामायण–गान से भिन्न है लेकिन बालकाण्ड में रामायण–गायन के इस प्रसंग का कोई संदर्भ उत्तरकाण्ड के गायन में नहीं आता, जैसे राम उत्तरकाण्ड में पहली बार लव–कुश का रामायण–गान सुन रहे हों। प्रक्षेपण करनेवाले अन्विति का इतना ध्यान कहाँ रख पाते हैं!

इन सर्गों में कहीं वाल्मीकि के अतिरिक्त किसी अन्य द्वारा इनके रचित होने का संकेत नहीं मिलता। जैसे वाल्मीकि खुद अपनी कथा अपने लिए अन्यपुरुष का प्रयोग करते हुए लिख रहे हों।

इस तरह सम्पूर्ण वाल्मीकीय रामायण का प्रणयन कथा के आरम्भ में ही हो चुकता है, जब राम लंका से लौटने पर भरत से लेकर नया–नया राज्य सँभाले ही थे। उत्तरकाण्ड की घटनाएँ कहाँ से ली गईं?

वाल्मीकीय रामायण की रचना होती है और लव–कुश द्वारा उसका गायन भी होने लगता है। उत्तरकाण्ड में सीता–निर्वासन तो राम द्वारा राज्य सँभाले जाने के काफ़ी समय बाद दिखाया गया है किंतु लवकुश रामायण लिखे जाने के तुरंत बाद कथा में कैसे प्रकट हो जाते हैं? अकारण नहीं कि विद्वानों ने उत्तरकाण्ड के साथ–साथ बालकाण्ड को भी प्रक्षिप्त माना है (आगे देखें), जो इस काण्ड के बिखरे हुए

परस्पर असम्बद्ध प्रसंगों के अतिरिक्त इस अयुक्ति से भी सिद्ध होता है। वाल्मीकि को राम का समकालीन सिद्ध करने की गढंत का हिस्सा है यह।

II–उत्तरकाण्ड :– राम और वाल्मीकि की समकालीनता (प्रक्षिप्त) उत्तरकाण्ड में पुनः स्थापित करने की कोशिश होती है। इस संदर्भ में उत्तरकाण्ड के सर्ग–45, 49, 65, 66, 71, 72, 93, 94, 96, 97 और 98 द्रष्टव्य हैं।

सर्ग–45– सीता–केन्द्रित लोकनिन्दा से अवगत होने पर, तीनों भाइयों के साथ परामर्श करने और उनकी एकराय का कठोर राजधर्म के आधार पर खण्डन करने के बाद, राम लक्ष्मण से सीता को वन में छोड़ने के लिये कहते हैं। उन्हें हिदायत भी दे देते हैं– गंगा के उस पार, तमसा के तट पर वाल्मीकि का आश्रम है, उसी के निकट निर्जन वन में सीता को छोड़ देना (श्लोक–17,18)।

सर्ग–49– निर्जन वन में सीता को अकेली विलाप करती देखकर कुछ ऋषिकुमारों ने वाल्मीकि को इसकी सूचना दी। तदुपरांत ऋषिकुमारों के साथ वाल्मीकि गंगातटवर्ती उस स्थान पर गये, दिव्यदृष्टि से सीता को पहचान लिया और उन्हें निर्दोष भी जान लिया। तब वे सीता को आश्रम के पास रहनेवाली कुछ तापसी स्त्रियों के पास ले आये, उन्हें सीता का परिचय दिया, उनके निष्पाप होने की बात बताई और देखभाल के लिए उन्हीं को सौंपकर आश्रम लौट आये (श्लोक– 1–23)।

सर्ग–65– राम की आज्ञा से लवणासुर का वध करने निकले शत्रुघ्न ने वाल्मीकि आश्रम में एक रात बिताई (श्लोक– 2–7)।

सर्ग–66– उसी रात सीता के जुड़वाँ पुत्र उत्पन्न हुए, मुनिकुमारों से समाचार पाकर वाल्मीकि तापसी स्त्रियों के आवास–खण्ड में स्थित सीता की पर्णकुटी तक गये, आवश्यक व्यवस्थाओं का निर्देश दिया और पुत्रों का नामकरण किया। ख़बर पाकर शत्रुघ्न भी रात में ही वहाँ पहुँच गये (किंतु वल्मीकि के साथ नहीं) और सीता का दर्शन किया।

सर्ग–71– लवणासुर के वध के बाद अयोध्या लौटते समय शत्रुघ्न पुनः वाल्मीकि–आश्रम पधारे, वहाँ भोजन किये, लव–कुश को बिना देखे रामायण का गायन सुने, सुनकर विस्मित भी हुये, किंतु गायकों के बारे में बिना कुछ पूछे, अपने शिविर लौट गये।

सर्ग–72– प्रातःकाल शिविर में नित्यकर्म से निवृत्त होकर शत्रुघ्न पुनः वाल्मीकि आश्रम आये किंतु इस बार भी सीता के पुत्रों– रामायण–गायकों– के बारे में कोई जिज्ञासा व्यक्त नहीं की। वाल्मीकि की आज्ञा लेकर वे अयोध्या के लिये प्रस्थान कर गये।

लवणासुर अभियान में 12 साल लग गये थे। वाल्मीकि–आश्रम में शत्रुघ्न के दोनों पड़ावों के बीच के अंतराल में लव–कुश 12 वर्ष के हो गये थे, रामायण यादकर उसका गायन करने लगे थे। किंतु शत्रुघ्न ने दूसरे पड़ाव में न तो उनके बारे में कुछ पता लगाया, न ही वहाँ से अयोध्या लौटकर सीता और लव–कुश के बारे में राम को कुछ बताया। सात दिन अयोध्या में रहने के बाद, राम के आदेश पर, शत्रुघ्न यमुनातटवर्ती मधु प्रदेश की राजधानी मधुपुरी चले गये; राम ने उन्हें लवणासुर के वध के बाद उसके अत्याचारों से पीड़ित मधु प्रदेश के राजा के रूप में अभिषिक्त कर दिया था (सर्ग–63)।

सर्ग–93– राम ने जब नैमिषारण्य में गोमती के तट पर अश्वमेध यज्ञ का आयोजन किया, वाल्मीकि अपने शिष्यों के साथ (अनाहूत, उन्हें क्यों नहीं बुलाया गया?) उसमें पधार गये और ऋषियों के लिए बने कुटीरों के पास अपने और अपने शिष्यों के रहने के लिए पर्णकुटीर बनवाकर उन्हीं में रहने लगे। उन्होंने अपने दो हृष्ट–पुष्ट शिष्यों (लव–कुश) को आदेश दिया कि वे चारों ओर घूम–घूम कर रामायण काव्य का गायन करें। विशेषकर राम के निवास और यज्ञ के ऋत्विजों के सामने। उन्हें यह भी सिखा दिया कि यदि राम उनसे पूछें कि वे किसके पुत्र हैं तो उत्तर में अपने को केवल 'महर्षि' वाल्मीकि का शिष्य बताएँ। लव–कुश द्वारा तदनुरूप घूम–घूम कर वीणावादन के साथ संगीत की उत्कृष्ट और त्रुटिहीन पद्धति से किये

जा रहे गायन को राम ने सुन लिया। भरत को उन्हें अठारह–अठारह हज़ार स्वर्णमुद्रायें पुरस्कार में देने को कहा। भरत उन्हें स्वर्णमुद्राएँ देने लगे तो दोनों ने अस्वीकार करते हुए कहा– हम वनवासी हैं, जंगली फल–मूल से निर्वाह करते हैं, सोना लेकर क्या करेंगे? तब राम ने दोनों से पूछा– जो महाकाव्य आप गा रहे हैं उसकी श्लोक–संख्या कितनी है, उसके रचयिता कौन हैं और वे कहाँ रहते हैं? दोनों ने बताया– इस महाकाव्य में 24 हज़ार श्लोक हैं, इसके रचयिता भगवान् वाल्मीकि हैं और वे इस यज्ञ में पधारे हुए हैं। तब यज्ञ के आयोजन में आये राजाओं और ऋषियों के साथ बैठकर राम ने रामायण {जो राम की अपनी ही कथा थी, किंतु उसमें सीता–निर्वासन की (प्रक्षिप्त) त्रासदी शामिल नहीं थी} का विधिवत् गायन सुना।

सर्ग–95– इस तरह कई दिनों तक राम ऋषियों, राजाओं और वानरों के साथ रामायण का गायन सुनते रहे। तब उन्होंने वाल्मीकि के पास शुद्ध आचार–विचारवाले दूतों के माध्यम से संदेश भेजा– यदि सीता का चरित्र शुद्ध है, उनमें किसी तरह का पाप नहीं है तो आपकी अनुमति लेकर वे कल सुबह यहाँ भरी सभा में आयें और जनसमुदाय के सामने "अपनी शुद्धता प्रमाणित कर मेरा कलंक दूर करें।" (कैसी दुराग्रही क्रूरता, प्रजा की नहीं, स्वयं राम की, जिन्होंने युद्धकाण्ड में बेहद अप्रिय दृश्य उपस्थित कर सीता को अग्निपरीक्षा के लिये बाध्य किया था– आ चुका है।) वाल्मीकि ने संदेश सुनकर कहा– ऐसा ही होगा (वहाँ सीता कहाँ थीं? वाल्मीकि आश्रम से नैमिषारण्य के यज्ञस्थल तक वाल्मीकि और उनके शिष्यों के साथ सीता के भी आने का उपरोक्त सर्ग–93 में कोई उल्लेख नहीं है।)

सर्ग–96– दूसरे दिन सुबह–सुबह राम यज्ञशाला पहुँचे और सभी ऋषियों को वहाँ बुलाया। कुछ बिना बुलाये, कौतूहलवश भी आ गये। महापराक्रमी राक्षस और महाबली वानर भी कौतूहलवश वहाँ इकट्ठे हो गये। नाना देशों से पधारे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हज़ारों की संख्या में आ जुटे। इस जमावड़े के बारे में सुनकर वाल्मीकि जी सीता को साथ लेकर शीघ्र वहाँ पहुँच गये। सीता तपस्विनी का गेरुआ वस्त्र पहने हुए थीं। वे वाल्मीकि के पीछे–पीछे, सिर झुकाये, दोनों हाथ जोड़े हुए चल रही थीं, उनकी आँखों से झर–झर आँसू गिर रहे थे, वे लगातार अपने हृदय में राम का ध्यान कर रही थीं। जनसमुदाय के बीच पहुँचकर वाल्मीकि राम से बोले– सीता उत्तम व्रत का पालन करनेवाली, धर्मपरायणा हैं। आपने लोकापवाद से डरकर उन्हें मेरे आश्रम के निकट छोड़ दिया था। लोकापवाद से भयभीत आपको सीता अपनी शुद्धता का विश्वास दिलाना चाहती हैं। आप आज्ञा दें। ये दोनों कुमार कुश और लव सीता के गर्भ से जुड़वाँ उत्पन्न हुए हैं। ये आपके ही पुत्र हैं और आपके ही समान दुर्धर्ष वीर हैं। हे राम, मैं प्रचेता (वरुण) का दशम पुत्र हूँ। मेरे मुँह से कभी असत्य नहीं निकला है। मैं सत्य कहता हूँ, ये दोनों आपके ही पुत्र हैं। मैंने कई हज़ार वर्षों तक तपस्या की है। यदि सीता में कोई दोष हो तो मेरी तपस्या का फल नष्ट हो जाये.... (श्लोक 16–20)। अपनी सत्यनिष्ठा पर वाल्मीकि का वक्तव्य सर्ग के अंतिम श्लोक 24 तक जारी रहता है।

सर्ग–97– अपनी ज़िद पर अड़े राम ने वाल्मीकि को उत्तर दिया– आपके निर्दोष वचनों से मुझे सीता की शुद्धता पर पूरा विश्वास हो गया है। एक बार पहले भी (युद्धकाण्ड में अग्निपरीक्षा से) सीता की शुद्धता का प्रमाण मुझे प्राप्त हो चुका है जिसके कारण मैंने इन्हें अपने घर में स्थान दिया था। किंतु आगे चलकर घोर लोकापवाद उठा, जिससे विवश होकर मुझे इनका त्याग करना पड़ा। यह जानते हुये भी कि सीता सर्वथा निष्पाप हैं, मैंने केवल समाज के भय से इनका परित्याग किया। मैं यह भी जानता हूँ कि ये जुड़वाँ पुत्र मेरे ही हैं। किंतु अब तो जनसमुदाय के बीच सीता के शुद्ध प्रमाणित होने पर ही मेरा इनसे (पुत्रों से) प्रेम हो सकता है।

तब सीता ने कहा– राम के सिवा किसी अन्य पुरुष की ओर मेरा कभी चित्त तक नहीं गया (स्पर्श तो दूर की बात है)। यदि मैं मन, वाणी और कर्म से केवल राम की ही आराधना करती हूँ, उनके अतिरिक्त किसी अन्य पुरुष को नहीं जानती तो भगवती पृथ्वी मुझे अपनी गोद में स्थान दें (श्लोक–15–16)। सीता के इस प्रकार पृथ्वी की शपथ लेते ही भूतल से एक दिव्य, सुंदर सिंहासन प्रकट हुआ। दिव्य रत्नों से विभूषित, महापराक्रमी नागों ने उसे सिर पर धारण कर रखा था। सिंहासन के साथ ही पृथ्वी की अधिष्ठात्री देवी भी अपने दिव्य रूप में प्रकट हो गईं। दोनों भुजाओं से उन्होंने सीता को अपनी गोद में उठाया और सिंहासन

पर आसीन करा दिया। सिंहासन पर विराजमान सीता जब रसातल में प्रवेश कर रही थीं, देवगण आकाश से पुष्पवर्षा कर रहे थे। सीता का भूतल में प्रवेश देखकर वहाँ उपस्थित कुछ लोग हर्ष (?) में तो कुछ विषाद में डूब गये। दो घड़ी तक सभी मोहाच्छन्न–से जड़वत् बने रहे (श्लोक–17–26)। अगले सर्ग में राम के शोक का विस्तार से वर्णन है।

(उत्तरकाण्ड का उपरोक्त विवरण इतना ढीला–ढाला, असम्बद्ध और अयुक्तियों तथा अत्युक्तियों से खचित है कि संक्षेप में गम्य बनाने के लिये काफ़ी मशक़्क़त करनी पड़ी है।)

ध्यान देने की बात यह है कि प्रक्षेपकों ने प्रबंध की अपनी अधकचरी क्षमता और असंतुलित दृष्टि के चलते राम को कहीं तो ईश्वरत्व से महिमामंडित कर अतिमानव बना दिया है तो कहीं औसत मनुष्यता से भी नीचे गिरा दिया है। युद्धकाण्ड में राम के कटु, कठोर किंतु प्रिय जीवनसाथी के प्रति मानवोचित असुरक्षा–भाव से उपजे संदेह, ईर्ष्या और अविश्वास के भावों ने सीता को अग्निपरिक्षा की ओर ठेला। इसके बावजूद उत्तरकाण्ड के प्रक्षेपकों ने पहले तो राम की आत्यंतिक रूप से लोकापवाद–भीरु, एक कमज़ोर राजा की छवि गढ़ते हुए उनसे गर्भवती सीता का परित्याग कराया। फिर तथ्य को भलीभाँति जानते हुए भी राम को अपने असंवेदनशील दुराग्रह पर अड़ा हुआ दिखाकर उन्हें निरपराध सीता की मृत्यु का भी कारण बना दिया।

उत्तरकाण्ड के शम्बूक प्रसंग में भी यही असंवेदनशीलता अपने अधिक क्रूर, अधिक अमानवीय संस्करण में दिखती है। यह वाल्मीकि की प्रबंध–शैली नहीं है। वाल्मीकि ने अतिप्राचीन काल से लोक में प्रचलित रामकथा के महत्वपूर्ण अंश राम की यात्रा को एक सुव्यवस्थित महाकाव्य का रूप प्रदान किया था। उनके लिये राम एक आदर्श पुरुष, आदर्श राजा हैं, लोकनायक हैं, जीवनमूल्यों की रक्षा के लिए सब कुछ न्योछावर करने को तत्पर रहते हैं। किंतु हैं मनुष्य ही, मनुष्य की संवेदना, उसके राग–विराग, उसकी मानवीय कमज़ोरियों से शासित होते हैं, उनसे त्रुटियाँ भी होती हैं, उनका परिमार्जन भी करते हैं। अयोध्याकाण्ड से युद्धकाण्ड तक उनका यह चरित्र सुसंगत एकरूपता में प्रतिबिम्बित होता है। किंतु प्रक्षेपकों ने जहाँ बालकाण्ड और उत्तरकाण्ड जोड़कर कथा के अभिप्रेत और उसकी अन्विति को नष्ट कर दिया, वहीं अन्य काण्डों में भी यत्र–तत्र छिटपुट श्लोक घुसाकर राम की वाल्मीकि–निर्मित आदर्श मनुष्य, उदात्त लोकनायक की छवि को भी ऊपर उठाकर या नीचे गिराकर खंडित कर दिया।

बालकाण्ड और उत्तरकाण्ड के उपरोक्त प्रसंग ही वाल्मीकि और राम को समकालीन बनाते हैं। ये प्रसंग खुद वाल्मीकि द्वारा लिखे हुए होने का आभास देते हैं। किंतु सवाल है, वाल्मीकि अपने बारे में लिखते समय अन्य चरित्रों की तरह अन्य पुरुष में क्यों लिखेंगे? रचनाकार का, किसी भी कलाकर का, अपनी कलाकृति में अपने नाम का उल्लेख तक भारतीय परंपरा के प्रतिकूल है। ऐसे में वाल्मीकि अपना ही गुणगान कैसे करेंगे? उत्तरकाण्ड के उपरोक्त प्रसंग में एक पात्र के रूप में वाल्मीकि की सत्यनिष्ठा पर लम्बा व्याख्यान चलता है जिसका केवल एक अंश ऊपर उद्धृत है।

मूल मुद्दा है, क्या बालकाण्ड और उत्तरकाण्ड के ऊपर वर्णित प्रसंगों के आधार पर वाल्मीकि को राम का समकालीन माना जा सकता है? यह इतिहास और भाषाविज्ञान दोनों का मुद्दा है। कट्टर परंपरावादियों को छोड़ दें तो मेरी जानकारी में इतिहास या भाषाविज्ञान का कोई विद्वान वाल्मीकि को राम का समकालीन नहीं मानता। यह ज़रूर सर्वमान्य है कि वाल्मीकि लौकिक संस्कृत के आदिकवि हैं। सवाल है लौकिक संस्कृत साहित्य की भाषा कब बनी?

वैदिक युग की मानक भाषा केवल आर्ष ग्रंथों (संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्) तक सीमित है। वैदिक युग की समाप्ति पर भिन्न–भिन्न क्षेत्र की पाकृतों (पालि उनमें से एक क्षेत्र विशेष की प्राकृत थी) के साथ व्यवहार यानी बोलचाल में वैदिक भाषा से उद्भूत उसका एक परिवर्तित रूप प्रचलित हो गया था, जो अलग–अलग इलाक़ों और अलग–अलग समुदायों में भिन्नता लिए हुए था। ऐसे में इस वैदिकेतर भाषा के विभिन्न रूपों को परिष्कृत और संस्कारित कर एक ऐसी समावेशी और सर्वमान्य मानक भाषा की निर्मिति का

दुस्तर कार्य पाणिनि द्वारा सम्पन्न हुआ, जो पूरे देश के लिए हर तरह के साहित्य–सृजन, पठन–पाठन की भाषा बन सके। इसके अतिरिक्त देश भर के विद्वज्जनों के बीच ज्ञान–विज्ञान के आदान–प्रदान के लिये संपर्क भाषा का काम भी कर सके। वही भाषा संस्कृत है जो युगों–युगों के उत्कृष्ट सृजन को अपने भीतर सँजोये, देश भर के संस्कृत विद्वानों के लिए आज भी गम्य, भारतीय प्रतिभा का कालातीत दर्पण बन गई।

उपरोक्त भाषाई संक्रमण काल में वैदिक भाषा से उद्‌भूत जो भाषा व्यवहार में प्रचलित हो गई थी, उसमें एकरूपता लाने और उसके मानकीकरण के लिए उसे व्याकरण के अनुशासन में बाँधने का प्रयास पाणिनि के पहले भी हुआ था, किंतु संबंधित आचार्यों में मतैक्य नहीं था और किसी का मत सर्वमान्य नहीं हो सका था। पाणिनि ने उस संक्रमण काल की इस कठिन चुनौती को स्वीकार किया। उन्होंने विभिन्न शाखाओं की वैदिक संहिताओं, ब्राह्मण ग्रंथों, आरण्यकों और उपनिषदों का गहन अध्ययन कर उनकी शब्द–संपदा को सँजोया। फिर अपने समय में देश के भिन्न–भिन्न भागों में प्रचलित लोक–भाषा के भिन्न–भिन्न रूपों का सूक्ष्म निरीक्षण किया। दूर–दूर तक यात्राएँ कर विभिन्न समुदायों के विभिन्न पेशों में लगे लोगों द्वारा व्यवहृत शब्दों का संकलन और उनकी व्युत्पत्ति का विश्लेषण किया। ब्राह्मण, क्षत्रिय, सैनिक, व्यापारी, किसान, रँगरेज, बढ़ई, रसोइए, मोची, ग्वाले, चरवाहे, गड़रिए, बुनकर, कुम्हार आदि अनगिनत पेशेवर लोगों के पेशों में विशेष रूप से प्रयुक्त होनेवाले शब्दों का एक विशाल भंडार एकत्रकर उन्होंने अपनी समावेशी दृष्टि से उन्हें सर्व–स्वीकार्यता और नियमबद्धता की कसौटी पर कसा। फिर वैदिक भाषा के यास्क–प्रभृत वैयाकरणों तथा प्रचलित भाषा के अपने से पहले के आचार्यों के मतों का सम्यक् समाहार किया। वैदिकेतर भाषा के एक पूर्व आचार्य शाकटायन का मत था कि सभी संज्ञा शब्द धातुओं में प्रत्यय लगाकर बने हैं। पाणिनि ने मोटे तौर पर इस प्रमेय को स्वीकार कर लिया किंतु इसमें इतना जोड़ दिया कि बहुत–से ऐसे शब्द लोकजीवन के व्यवहार में आ गए हैं जिनकी धातु और जिनमें लगे प्रत्यय पकड़ में नहीं आते। इस तरह विपुल सामग्री एकत्रकर उसके सूक्ष्म मनन–विश्लेषण के उपरांत उन्होंने आठ अध्यायों के अपने अद्‌भुत् ग्रंथ अष्टाध्यायी की रचना की, जिसमें उपरोक्त सामग्री का ऐसा सांगोपांग और युक्तिसंगत विवेचन है कि प्रचलित भाषा के पाणिनि के पहले के व्याकरण–ग्रंथ अप्रासंगिक होकर लुप्त हो गए। उनके बारे में आज उतना ही ज्ञात है जितना अष्टाध्यायी में आए उनके संदर्भों में उपलब्ध है।

वाल्मीकि का रामायण इसी संस्कृत भाषा का आदि काव्य है। दुर्भाग्य से पाणिनि का काल निर्विवाद रूप से तय नहीं है। विद्वानों ने उन्हें सातवीं ई.पू. से पाँचवीं ई. पू. के बीच रखा है। इससे इतना तो निश्चित है कि वाल्मीकीय रामायण की रचना पाँचवी शताब्दी ई. पू. के पहले नहीं हो सकती थी। रामकथा शून्य में उत्पन्न नहीं हो सकती थी। रामायण और महाभारत दोनों ग्रंथों को भारतीय परंपरा में पुराणों से पृथक 'इतिहास' की श्रेणी में रखा गया है। इधर कुछ इतिहासकारों ने इस दिशा में जो काम किया है उसके आधार पर रामायण काल को 2500 ई. पू. के बाद नहीं रखा जा सकता।

अस्तु, किसी भी व्याख्या या प्रमेय के अनुरूप, वाल्मीकि को राम का समकालीन सिद्ध करने का कोई तात्विक आधार नहीं बनता। यह प्रश्न रामायण के बालकाण्ड और उत्तरकाण्ड के ऊपर वर्णित वाल्मीकि और राम दोनों से एक साथ जुड़े हुए प्रसंगों के कारण उठा है। यह विसंगति इसी प्रमेय को पुष्ट करती है कि वाल्मीकि को राम का समकालीन चित्रित करनेवाले बालकाण्ड और उत्तरकाण्ड के ये प्रसंग बाद के प्रक्षिप्त है। वस्तुतः बालकाण्ड और उत्तरकाण्ड पूरे के पूरे प्रक्षिप्त हैं।

अकारण नहीं कि 'यद् रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतौपि' की घोषणा के बावजूद तुलसी ने रामचरितमानस की रचना करते समय वाल्मीकीय रामायण के बालकाण्ड से रामकथा के कुछ ही प्रसंग लिये हैं (जो वाल्मीकीय रामायण में बहुत अल्प हैं, रामकथा से असम्बद्ध प्रसंग अधिक हैं) और उत्तरकाण्ड से कुछ भी नहीं लिया है।

.... क्रमशः – (शेष भाग अगले अंक में)

‘सामाजिक-परिप्रेक्ष्य’ एवं ‘साहित्यिक-वैचारिकता’ के अंतःसंबंधों की सैद्धांतिक-मीमांसा

डॉ. जितेन्द्र कुमार गिरि*

जिस प्रकार से साहित्य एवं समाज के मध्य परस्पर अन्योन्याश्रित संबंध अंतर्निहित होता है या फिर साहित्यिक परिक्षेत्र में जिस तरह से वैचारिकता और सर्जनात्मक साहित्य को परस्पर अनुपूरक साहित्यिक घटकीय प्रवृत्ति माना जाता है ठीक उसी तरह से सामाजिकता तथा वैचारिकता में भी एक–दूसरे के प्रति आधारिक सरोकार अतंर्भुक्त होता है। सामाजिकता वस्तुतः एक प्रकार की वैचारिकता ही होती है जिसमें मनुष्य जीवन के सामाजिक पक्षों से अंतर्संबंधित विचारों की एक श्रृंखला व्यवस्थित प्रकृति में संगुम्फित होती है जबकि वैचारिकता के अंतर्गत भौतिक आयाम अत्यधिक विस्तीर्ण स्वरूपों वाला होता है। दरअसल वैचारिकता के अन्तर्गत व्यक्ति, वस्तु, पदार्थ समूह संगठन या किसी भी सचराचर विषयक विचार–श्रृंखला को सम्मिलित किया जा सकता है। दृष्टांतस्वरूप यदि मानव–जीवन की आद्यंत परिस्थितियों उसके क्रिया–व्यापारों उसकी चित्तवृत्तियों उससे संबंधित घटनाओं उसके भावानुभावों अथवा हृदय–व्यापारों और उसके भौतिक पर्यावरण आदि पर एकीकृत रूप से दृष्टिपात करें तो स्पष्टतः अभिज्ञात अथवा प्रत्यक्षित होता है कि उसका समग्र सांसारिक जीवन अनेक पक्षों, सोपानों या अंगों–उपांगों में विभक्त होता है। ये पक्ष, सोपान या अंग होते हैं– सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, साम्प्रदायिक, भौगोलिक, पर्यावरणीय, भौतिक–अभौतिक, ग्रामीण, शहरीय, पर्वतांचलीय, मैदानी, नद्यावसित वैज्ञानिक, राष्ट्रीय, प्रांतीय जनपदीय आदि। मानव–जीवन के इन विभाजक पक्षों या सोपानों की आधारशिला भी भिन्न–भिन्न होती है तथा इस पाक्षिक पार्थक्य में नैसर्गिक एवं कृत्रिम दोनों प्रकृतियों का अंतर्वेशन होता है। प्रकृति ने मानव–जीवन की सरल और सहज गतिशीलता तथा उसकी अनन्य प्राणिधारीय विशिष्टता, अस्मिता एवं उसके चिरकालीन अस्तित्व को दृष्टिगत रखते हुए जहाँ उसके जीवन के अगणित प्राकृतिक पक्षों–सोपानों मसलन–पर्वतीय, मैदानी, पठारी, वन–प्रांतीय आदि का निर्माण किया वहीं मनुष्य ने अपनी आवश्यकताओं, महत्वाकांक्षाओं, अनुसंधानीय प्रवृत्तियों, मनोवृत्तियों जीवनिक गतिशीलता, विकसन, नियंत्रण आदि को अवलोकित करते हुए स्वयं के जीवन को असंख्य पक्षों या अंगों यथा–सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, ग्रामीण, नगरीय, प्रांतीय, राष्ट्रीय, वैज्ञानिक आदि में कृत्रिम रूप से विभक्त कर लिया। इस तरह से नैसर्गिक एवं अप्राकृतिक आधार पर होने वाले मनुष्य–जीवन के आंगिक या सोपानिक विभाजनों के सम्मिलनोपरांत उसके अनेक पक्ष सामने आते हैं। जो कि यथासमय एवं यथावश्यक रूप से प्रत्येक मनुष्य के जीवन काल में विभिन्न नसेनी (सोपानिक) समयावधियों में उससे अवश्यमेव अंतर्संबंधित रहते हैं या रह चुके होते हैं। मनुष्य–जीवन के इन नैसर्गिक या कृत्रिम पक्षों पर कभी–न–कभी विचार अवश्य करना पड़ता है। यह विचार व्यक्ति विशेष के जीवन के सभी सोपानों या किसी एक पक्ष अथवा सामूहिक मनुष्यों के जीवन के सभी अंगों या किसी अंग विशेष की स्थिति, उसकी निर्माण प्रक्रिया, जीवनगत उपादेयता, प्राकृतिक महत्ता आदि के अध्ययन–विवेचन, अनुशीलन व अनुसंधान आदि से संबंधित हो सकता है। दृष्टांतस्वरूप किसी एक मनुष्य या उसके परिवार, समूह, संगठन अथवा समाज की राजनीतिक स्थिति–परिस्थिति, सक्रियता, व्यक्तिगत जीवन में राजनीतिक प्रासंगिकता आदि का अध्ययन–विवेचना या अन्वेषण करने की प्रक्रिया में विचारों की एक श्रृंखला निर्मित होगी, अध्येयता, विवेचक या अन्वेषणार्थी के मस्तिष्क में जो नूतन या पारम्परिक विचारों की लड़ी प्रादुर्भूत होगी, उसे ही उस व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह से संदर्भित राजनीतिक वैचारिकता अथवा उनकी राजनैतिकता कहा जाएगा। इसी प्रकार से मानव–जीवन के अन्य पक्षों–सोपानों यथा–इतिहास विषयक विचार श्रृंखला–ऐतिहासिकता, अर्थ संबंधी विचारोद्भावना–आर्थिकी या आर्थिकता, समाज विषयक

*हिन्दी विभाग, कुमाऊँ विश्वविद्यालय नैनीताल, उत्तराखण्ड।

विचारमाला–सामाजिकता, धर्म से संदर्भित विचार पंक्तियाँ–धार्मिकता, भूगोल संबंधी विचार समुच्चय–भौगोलिकता तथा विज्ञान विषयक विचार सिलसिला–वैज्ञानिकता आदि के संदर्भ में भी समझना चाहिए।

समाज शब्द में 'इक' प्रत्यय के योग से 'सामाजिक' शब्द की संरचना अस्तित्व में आती है जिसका शब्दार्थ होता है– समाज संबंधी या समाज विषयक। इसी सामाजिक शब्द में पुनः 'ता' प्रत्यय का योग करने पर 'सामाजिकता' नामक गुणवाचक विशेषणवाची ध्वनि समूह का निर्माण होता है जिससे समाज से घनिष्ठता के साथ अतर्संबंधित होने का बोध होता है। ध्यातव्य है कि 'सामाजिक' एवं 'सामाजिकता' शब्द की संरचना में समरूपता होने के साथ–साथ इनकी अर्थवत्ता में भी किसी प्रकार का स्थूल विभेद दृष्टिगोचर नहीं होता है। वस्तुतः ये दोनों विशेषणपरक शब्द हैं जिनमें किसी व्यक्ति, वस्तु, पदार्थ या विचार के समाज से संबंधित होने की बोधगम्यता निहित होती है। परंतु यदि अत्यंत सूक्ष्मता से विचार किया जाए तो प्राप्त होता है कि 'सामाजिक' और 'सामाजिकता' शब्द की संरचनात्मक एवं अर्थवत्तापरक प्रकृति में एक सूक्ष्म विभेद अंतर्भुक्त है। दरअसल 'सामाजिक' शब्द के निर्माण में 'समाज' मूल शब्द एवं 'इक' प्रत्यय का योग हुआ है जबकि 'सामाजिकता' शब्द की बुनियादी संरचना में 'सामाजिक' शब्द आधारिक शब्द के रूप में तथा 'ता' प्रत्यय का सन्निवेश हुआ है। इसी तरह से सामाजिक शब्द की अर्थवत्ता में समाज से सरोकार रखने का भाव अंतर्निहित होता है जबकि इसकी समतुल्यता में 'सामाजिकता' शब्द का अर्थगत आयाम अत्यधिक सुविस्तीर्ण प्रकृति का होता है। इससे किसी व्यक्ति, वस्तु, पदार्थ, विचार, भाव आदि के समाज से संबंधित होने के साथ–साथ संबंधित होने की प्रकृति, प्रक्रिया एवं संबंधों की सघनता आदि का भी बोध होता है। जहाँ 'सामाजिक' की अर्थवत्ता के लिए किसी व्यक्ति, वस्तु, कार्य, भाव विचारादि के कुछ घटकों–अवयवों की वर्तमानता से ही काम चल सकता है वहीं 'सामाजिकता' का 'ता' प्रत्यय इससे सम्यक अर्थोद्घाटन के लिए ऐसे अगणित कारकों की विद्यमानता की माँग करता है। किसी व्यक्ति का किसी विशिष्ट समूह के साथ विचार–विनिमय या खान–पान भी सामाजिक हो सकता है लेकिन उस वैचारिक आदान–प्रदान या खान–पान की सामाजिकता में इनकी प्रक्रियाओं, कार्य–व्यापारों का समाज पर पड़ने वाला सकारात्मक प्रभाव समाज के नियमों, आदर्शों, नैतिकताओं के अनूरूप होना आवश्यक होता है। इस प्रकार से 'सामाजिक' जहाँ समाज से संबंधित एक अवस्था या प्रवृत्ति का नाम है जिसमें संबंध अधिष्ठापन की प्रक्रिया पूर्ण हो चुकी होती है वहीं 'सामाजिकता' संबंध स्थापन की एक प्रक्रिया का नाम है जिसमें संबंधों की स्थापना या तो हो रही होती है, हो चुकी होती है या फिर उसका होना अपरिहार्य होता है। अतः स्पष्ट है कि 'सामाजिकता' की अर्थगत आयामिक परिधि 'सामाजिक' की अर्थवत्ता के समतोलन में अधिक प्रकीर्णित होती है। परंतु यहाँ इन दोनों की ध्वनिगत प्रकृति और निर्माणक अर्थवत्ता के मध्य के पारस्परिक संबंधों में जब से खींचातानी या बलात् विभाजन न करके इनकी अर्थवत्ता को एक ही नहीं तो कम–से कम परस्पर अनुपूरक मानना ही अधिक समीचीन एवं विषय संगत प्रतीत होता है अन्यथा विषय के अनावश्यक खिंचाव तथा अर्थगत घालमेल के साथ–साथ बारंबारता (आवृत्ति) की संभावना बढ़ जाएगी।

'सामाजिकता' की भाँति ही 'वैचारिकता' शब्द की संरचना, निर्माण प्रक्रिया और अर्थवत्ता भी द्विमुखी व द्विअर्थी प्रकृति वाली है। 'विचार' मूल शब्द में 'इक' प्रत्यय के योग से 'वैचारिक' शब्द अस्तित्व में आया जिसका सामान्य अर्थ होता है– विचार संबंधी या किसी विशिष्ट प्रकार के विचारों से संबंधित। वस्तुतः जब किसी विशेष विषय से अंतर्संबंधित विचारों के गुम्फन को व्यवस्थित अथवा श्रृंखलाबद्ध रूप से अभिव्यक्त किया जाता है तब विचारों की उन्हीं मालिका को वैचारिक, वैचारिकी अथवा वैचारिकता आदि पारिभाषिक शब्दों से अभिहित किया जाता है। दरअसल 'वैचारिक' शब्द में ही 'ता' प्रत्यय के विधान से वैचारिकता शब्द अस्तित्ववान हुआ है। ध्यातव्य है कि उपर्युक्त प्रकरण में 'सामाजिक' और 'सामाजिकता' शब्द की प्रकृति, निर्माण प्रक्रिया एवं अर्थवत्ता में जो समरूपता एवं विभेद संकेतित या वर्णित हुआ है वही समानता एवं अंतर 'वैचारिक' तथा 'वैचारिकता' शब्द की संरचना रचना–प्रक्रिया तथा अर्थवत्ता में भी होता है जिसका यहाँ पर सूक्ष्मातिसूक्ष्म वर्णन–विवेचन करना न तो विषय अथवा तर्कसंगत ही प्रतीत होता है और न ही यहाँ ऐसा करने के लिए आवश्यक अवकाश व स्थान ही है। यहाँ केवल इतना ही समझने–समझाने की आवश्यकता है कि किसी विशिष्ट या सामूहिक वस्तु, भावानुभाव, विचार अथवा पदार्थ विषयक व्यस्थित या क्रमिक विचार

श्रृंखला ही एतद्विषयक वैचारिकता, वैचारिक या वैचारिकी कहलाती है। क्योंकि वैचारिकता किन्हीं–न–किन्हीं विचारों से अवश्य संबंधित होती है और ये विचार मनुष्य अथवा मनुष्येत्तर किसी भी अंग–उपांग या पक्ष से संबंधित हो सकते हैं इसलिए स्वाभाविक है कि वैचारिकता का डायमेंशन अत्यधिक विस्तीर्ण प्रकृति का होता है। इसके नितांत विपरीत सामाजिकता, वैचारिकता का एक घटक मात्र होती है जोकि केवल मनुष्य जीवन के सामाजिक पक्ष से ही सरोकार रखती है। क्योंकि मनुष्य जीवन की गतिशीलता, उसके अस्तित्व का संरक्षण, उसकी विशिष्ट जैविक प्रवृत्ति के प्रदर्शन आदि की दृष्टि से उसका सामाजिक पक्ष अत्यधिक महत्व का सिद्ध होता है इसलिए 'वैचारिकता' को यदि मंदाकिनी नामक आकाशगंगा मान लिया जाए तो 'सामाजिकता' इस आकाशगंगा की वह सूर्य होगी जिसके उर्जा एवं प्रकाश से पृथ्वी पर जीवन का अस्तित्व संभव हो सका है। वस्तुतः जिस प्रकार से असंख्य तारों के सम्मिलन से मंदाकिनी नामक जीवन सम्भवा आकाशगंगा का निर्माण होता है और इस आकाशगंगा का अपना एक सौर्यमण्डल है जिसमें तारे, ग्रह क्षुद्र ग्रह, उल्कापिण्ड आदि सभी कुछ प्रक्षिप्त होते हैं तथा जिस प्रकार से इस आकाशगंगा में वसुंधरा नामक ग्रह पर प्रभाकर नामक तारे की ऊर्जा और ऊष्णता के कारण ही जीवन का अस्तित्व संभव हो सका है ठीक उसी प्रकार से मनुष्य का मस्तिष्क अगणित विचारों की गंगा (राशि) होता है। इस विचारगंगा में अनेक भावानुभावों हृदय–व्यापारों के साथ–साथ काम, क्रोध लोभ, मोह ईर्ष्या–द्वेष आदि क्षुद्र ग्रहों के अतिरिक्त दान, क्षमा, औदात्य, लोक–कल्याण रूपी तारे टिमटिमाते रहते हैं। इसमें लोकमंगल अर्थात् 'सामाजिकता' एक ऐसा सूर्यनुमा तारा है जिसके ऊर्जा एवं प्रकाश से मनुष्य का अस्तित्व उसकी अस्मिता, उसकी नैतिकताएँ, उसके आदर्श आदि की सत्ता भी सुस्थिर यह पाती है। अतः कह सकते हैं कि धरती पर जीवन के लिए जितनी सार्वकालिक एवं सार्वभौमिक उपादेयता सूर्य नामक तारे की होती है उतनी ही प्रासंगिकता मनुष्य जीवन की गतिशीलता, उसके विकास आदि में 'सामाजिकता' नामक वैचारिकी की होती है। दरअसल 'सामाजिकता' विचारगंगा का वह सूर्य है जो सर्वदा मनुष्यता को उर्जा, पोषण एवं संरक्षण प्रदान करता रहता है। जैसे आकाशगंगा में वर्तमान संख्यातीत तारों में से मनुष्य के लिए सूर्य नामक तारा ही जीवनिक महत्व का है, अवशेष अन्य तारे या तो गणना मात्र के लिए हैं या फिर वे मनुष्यों के लिए अपने पितरों–पूर्वजों की आत्मा के रूप में कल्पित करने के लिए हैं वैसे ही विचारगंगा में विद्यमान असंख्य विचारों में से 'सामाजिकता' विषयक विचार मनुष्य की सत्ता, उसके अस्मिता बोध, चारित्रिक विकास आदि दृष्टियों से विशेष महत्व के हैं, शेष विचार तो उसके ज्ञान में वृद्धि, आवश्यकताओं, महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति, चित्तवृत्तियों के निर्माण और जिज्ञासाओं के शमन के लिए ही हैं। यद्यपि सामाजिक या गैर–सामाजिक वैचारिकता की अनुपस्थिति में मनुष्य–जीवन समाप्त नहीं हो जाएगा लेकिन उसमें जड़ता, मूढ़ता और अविकसनशीलता आदि सभी कुछ आवांछित कारकों का समावेश अवश्य हो जाएगा, इसमें कोई संदेह नहीं है।

'सामाजिकता' के विवेचन–विश्लेषण के अनुक्रम में इसका इतना व्यापक महत्वांकन इसलिए किया गया है क्योंकि यह मानव–जीवन का सर्वाधिक प्रभावशाली एवं बेशकीमती एक ऐसा पक्ष है जिसमें अप्रत्यक्ष रूप से जीवन के अन्य पाक्षिक–सोपानिक घटक भी सम्मिलित होते हैं। कारण यह है कि विवेच्य आकाशगंगा के सिद्धांत की भाँति तारे रूपी सभी जीवनांग–उपांग इसी में अंतर्भुक्त होते हैं। दरअसल मनुष्य–जीवन का प्रत्येक पक्ष या सोपान मनुष्य से ही अंतर्संबंधित होता है, तथा प्रत्येक मनुष्य किसी–न–किसी समाज का सदस्य अवश्यमेव होता है, इसलिए उसके जीवन के सभी पक्ष स्वतः ही सामाजिक पक्ष में अंतर्भुक्त हो जाते हैं, दृष्टांतस्वरूप यदि किसी व्यक्ति के सामाजिक पक्ष से संदर्भित वैचारिकता निर्मित करनी हो तो उसमें उसकी सामजिक स्थिति, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक परिस्थिति आदि घटकों पर भी स्थूल दृष्टिपात करना आवश्यक होगा, अन्यथा विषय अपूर्ण एवं अप्रासंगिक रह जा जाएगा। हाँ यदि मानव–जीवन के किसी विशेष पक्ष का सूक्ष्मातिसूक्ष्म अध्ययन–अनुशीलन अथवा विवेचन–विश्लेषण करना हो तो उसे सामाजिकता के अंतर्गत न रखकर संबंधित मूल विषयातंर्गत रखना अधिक समीचीन होगा। हालाँकि यदि अत्यन्त सूक्ष्म एवं व्यापक दृष्टि से विचार किया जाए तो स्पष्टतः प्रतीत होता है कि 'सामाजिकता' एक प्रकार की 'वैचारिकता' होने के साथ–साथ ही एक प्रकार का अगोचर मापक या परीक्षण यंत्र भी होती है जिससे यह मापा या देखा जाता है कि किसी वस्तु, विषय, पदार्थ, भावानुभाव

आदि के कितने अंश में विचार के रूप में सामाजिकता कितनी मात्रात्मकता में सन्निहित है अथवा इसका कितना भाग किस प्रकृति, संरचना और प्रक्रिया द्वारा समाज से कितना सम्बद्ध है। जैसा कि पूर्व में वर्णित–विवेचित हो चुका है समाज या सामाजिकता मनुष्य–जीवन से उतना एवं उसी प्रकार से मुतअल्लिक है जितना और जिस प्रकार से सूर्य नामक तारा पृथ्वी नामक ग्रह से संबंधित है। अतः मनुष्य–जीवन के संदर्भ में 'सामाजिकता' सूर्य की समकक्ष है तो मानवीय जीवन की अस्मिता संरक्षण एवं उसका संवर्द्धन, पोषण वसुंधरा का पर्याय है। इन सबके ऊपर वैचारिकता यहाँ आकाशगंगा रूपी विचारगंगा जिसमें से 'सामाजिकता' रूपी प्रभाकर निकलकर मानव जीवन रूपी अंचला को चिरस्थायी तथा अस्तित्ववान बनाता है। वस्तुतः मानवीय सभ्यता के विकासानुक्रम में अपनी अस्मिता एवं अस्तित्व को स्थायित्व दिलाने तथा सुगमतापूर्वक अपना जीवन–निर्वाह करने के लिए मनुष्य को कालांतर में कुछ नियमों, नैतिकताओं, आदर्शों, परम्पराओं, मूल्यों क्रिया–कलापों आदि की आवश्यकता अनुभूत हुई, जिसके प्रतिफलन स्वरूप विभिन्न समाजों, संस्थाओं, समूहों, सगठनों आदि का प्रादुर्भाव हुआ इन समूहों–संगठनों में संबंधित मनुष्य ने अपनी संस्कृति, सभ्यता, धर्म दर्शन आदि का अतंर्वेशन करके इन्हें जीवंत गतिशील तथा चिरस्थायी स्वरूप प्रदान करते हुए इनमें अपनी आवश्यताओं, महत्वाकाक्षाओं चित्तवृत्तियों आदि के अनुरूप प्रथमतः नियमों–निर्देशों का प्रावधान किया तत्पश्चात् इनके अनुपालन–उल्लंघन के प्रतिक्रिया स्वरूप सम्यक् पुरस्कार और दण्ड का विधान भी सुनिश्चित किया जिससे वह स्वयं को इन व्यक्ति–समूहों के प्रति आजन्म उत्तरादायी बनाए रख सके। मनुष्य द्वारा इसी उत्तरदायित्व का भली–भाँति निर्वहन करते रहने से समाज में संस्कृतियों का संरक्षण, सभ्यताओं का विकास, धर्म की रक्षा एवं उसका प्रचार–प्रसार तथा परम्पराओं का पालन निर्बाध गति से होता रहा है। ध्यातव्य है कि आत्मसंचालन–परिचालन के उदेदश्य से नियमों–निर्देशों के आवरण में मानव द्वारा 'परिवार', परिवार के बाद विशालकाय प्रकृति में निर्मित प्रथम संगठन समाज ही था जिसमें वह एक निश्चित नियम के तहत एक निश्चित प्रक्रिया द्वारा एक निश्चित उदेदश्य से संगठित हुआ था। विवेकशील, तर्कशील तथा विशिष्ट बुद्धिमत्ता युक्त प्राणी होने के कारण मनुष्य प्राणिजगत् के समस्त जीवधारियों में से एकमात्र ऐसा जीव है जो स्वयं की उन्नति का मार्ग प्रशस्त कर सकता है। समृद्धि अथवा विकास के इसी मार्ग प्रस्त्रवण के अनुक्रम में उसने समाज को नियंत्रित करने के लिए धर्म, दर्शन, संस्कृति आदि जीवन–क्षेत्रों में असंख्य नियम–निर्देश करणीय–अकरणीय लेकर उन्हें सामाजिक प्रतिमान के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया अब कोई भी कार्य किया जाता, किसी भी ग्रंथ की रचना होती, किसी वस्तु या पदार्थ का निर्माण होता, उसे इन्हीं मानदण्डों की कसौटी पर कसा जाता, उसमें यह अनवीक्षण–परीक्षण किया जाता कि वह समाज से कितनी मात्रा और किस प्रकृति में अतंर्संबंधित है या फिर उससे समाज को कितना हित–अहित हो रहा है अथवा उसकी अधोरचना के निर्माण व विकास में सामाजिक नियमों–निर्देशों का कितना अनुपालन किया गया है। मापन की इसी प्रक्रिया, प्राप्ति और स्वरूप को विद्वानों, विवेचकों, अनुसंधानिकों, समाजशास्त्रियों आदि ने संबंधित कार्य, रचना, वस्तु, पदार्थ, विचार या व्यवहार की सामाजिकता के रूप में व्याख्यायित किया, जो कि किसी वस्तु, ग्रन्थ आदि में सामाजिक घटकों की उपस्थिति के स्वरूप और मात्रा का मापन करती है, इससे स्पष्ट रूप से भाषित होता है कि सामाजिकता रूपी वैचारिकता में मानव–जीवन के केवल सामाजिक पक्ष पर ही विचार–विमर्श नहीं किया जाता अपितु इसकी परिमिती में धर्म, दर्शन, संस्कृति, विज्ञान, भावानुभाव, सामाजिकों की मनोवृत्तियाँ या उनके देशकाल एवं वातावरण की परिस्थितियाँ आदि जीवनांग भी समाविष्ट होते हैं।

अतः सारांशिक रूप से कहा जा सकता है कि सामाजिकता और वैचारिकता के मध्य जो अंतःसंबंध सुस्थित होता है वह आकाशगंगा एवं सूर्य के संबंधों या फिर पुस्तकालय और पुस्तक विशेष के आपसी सरोकारों अथवा साहित्येतिहास तथा सर्जक विशेष के आपसी संबंधों की भाँति होता है। जिस प्रकार से मंदाकिनी के अगणित तारों में से सूर्य नामक तारा ही मानव–जीवन से विशिष्ट प्रयोजन रखता है या फिर जैसे किसी ग्रंथागार में रखी हुई संख्यातीत पुस्तकों में से किसी एक का चयन कर लिया जाए या फिर जिस प्रकार से किसी साहित्येतिहास में सम्मिलित अगणित सर्जकों में से किसी विशेष सर्जक का जो महत्व या संबंध होता है, एक–दूसरे के लिए वही उपादेयता या वास्ता वैचारिकता और सामाजिकता में भी होता है।

वैचारिकता भी एक प्रकार की कुतुबखाना साहित्येतिहास अथवा गैलेक्सी ही होती है जिसमें जीवन के विविध विषयों–पक्षों से संबंधित विचार रूपी पुस्तकें असंख्य साहित्य सेवी तथा कार्य संग्रहीत, संकलित होते हैं। इन्हीं में से एक पुस्तक, साहित्यकार व तारे का नाम है– सामाजिकता, जो मानव–जीवन के सामाजिक पक्ष, जिसमें अनेक उपांग या गौण पक्ष भी सम्मिलित होते हैं– कि रिप्रेजेंटेटिव होती है। अतः कह सकते हैं कि 'सामाजिकता' और कुछ नहीं अपितु जीवन के सामाजिक पक्ष से संबंधित एक प्रकार की वैचारिकता ही है। वैचारिकता अपने में अत्यधिक आयामिक प्रकीर्णता में जहाँ मानव–मस्तिष्क में प्रादुर्भूत होने वाले विचारों की आकाशगंगा है तो वहीं सामाजिकता कुछ संकीर्ण लेकिन मानव–जीवन के सर्वाधिक महत्वपूर्ण डायमेंशन के रूप में उस विचारगंगा का एक देदीप्यमान तारा होती है। अंतः इन दोनों में अंश और अंशी का अथवा माला तथा मोती का अंतःसंबंध व्याप्त होता है। जोकि पहनने वाले को नहीं अपितु बनाने वाले को अनुभूत होता है।

संदर्भ–सूची :–

1. पद्मावत (नागमती संदेशखण्ड), मलिक मोहम्मद जायसी, पृ0सं0–1, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण–2016।
2. पद्मावत (नागमती संदेशखण्ड), मलिक मोहम्मद जायसी, पृ0सं0–1, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण–2016।
3. भारतीय साहित्य, डॉ0 लक्ष्मीकांत पाण्डेय, डॉ0 प्रमिला अवस्थी, पृ0सं0–57, आशीष प्रकाशन, कानपुर, संस्करण–2014।
4. साहित्य का समाजशास्त्री चिंतन, संपादक निर्मला जैन, पृ0सं0–29, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय संस्करण–2009।
5. राग–विराग, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', संपादक–रामविलास शर्मा, पृ0सं0–91, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण–2018।
6. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, मुक्ता व कुसुम चतुर्वेदी, भूमिका, प्रकाशन विभाग सूचना एंव प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार संस्करण–2017।
7. साहित्य का समाजशास्त्री चिंतन, संपादक निर्मला जैन, पृ0सं0–37–38, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय संस्करण–2009।
8. साहित्य का उद्देश्य, प्रेमचंद, पृ0सं0–6, अनुराग प्रकाशन वाराणसी संस्करण–2017।
9. आज के सवाल और साहित्य, संपादक–मनोज पाण्डेय, पृ0सं0–391, विश्वभारती प्रकाशन नागपुर संस्करण–2015।
10. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, काल विभाग, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण–2011
11. चिंतामणि (भाग–3), संपादक–डॉ0 नामवर सिंह, पृ0सं0–7–8, मनीष पब्लिकेशन दिल्ली, संस्करण–2013।
12. हिन्दी की विशिष्ट आलोचनात्मक दृष्टियाँ, संकलनकर्ता – डॉ0 बिजेन्द्र सिंघल पृ0 सं0–114, कला मंदिर, नई दिल्ली– नवीनतम संस्करण।
13. साहित्यालोचन, डॉ0 श्यामसुन्दरदास, पृ0 सं0–31, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, संस्करण–2010।

★

गुरु नानक की ज्ञानात्मक दृष्टि एवं सृष्टि

आशीष कुमार (महन्त आशीष शास्त्री)*

डॉ. आशा सहारण**

शोध–सार :– प्रस्तुत अध्ययन ज्ञानदाता अर्थात् ज्ञान को देने वाली गुरु नानक वाणी की मानव को देन पर एक छोटा सा विचार मात्र है क्योंकि गुरु नानक वाणी ज्ञान की अथाह सागर है। पहले ज्ञान क्या है तथा साथ ही साथ मानव कौन है, इस पर विचार भी आवश्यक समझ कर किया गया है। भवगती श्रुति के अनुसार 'ऋते ज्ञानात् न मुक्तिः' जिस ज्ञान को मुक्ति का साधन बतलाया गया है; ज्ञानं नराणां अधिको विशेषो, ज्ञानेनहीनाः पशुभिर्समानाः– जिस ज्ञान के बिना मानव पशु के समान है, वह ज्ञान गुरु नानक वाणी के द्वारा हमें बड़े ही सरल, सहज एवं सुस्पश्ट रूप में प्राप्त होता है– यही गुरु नानक वाणी की महत्ता है और मानव को देन है जो कि संशयों का नाश करती है एवं जिसके द्वारा मानव जीवन सरल के साथ ही साथ सफल भी हो जाता है।

कुंजी शब्द :– ज्ञान, माया, संसार, वाणी, संत।

भूमिका :– आज के अति भौतिकवादी संसार में हम देखते हैं कि साधारण सांसारिक जीव धन संपदा को अधिक महत्व देता है। चाहे एक परिवार अथवा संस्था में ही देख लें ; पुत्र हो अथवा शिष्य, अपने माता–पिता अथवा गुरु से संपत्ति चाहता है परन्तु संस्कार नहीं। माया चाहता है मायापति को नहीं। भूल जाता है कि माया हमें आवागमन के चक्कर में डालने वाली है जबकि वहीं मायापति मोक्ष को देने वाले हैं; भूल जाता है कि संस्कार अथवा माता–पिता तथा गुरु द्वारा प्रदत्त ज्ञान ''हमारी'' रक्षा करता है जबकि संपत्ति की ''हमें'' रक्षा करनी पड़ती है।

ज्ञान का ज्ञान :– ज्ञान दो प्रकार का कहा गया है– एक तो स्मृतिजन्य शाब्दिक ज्ञान और दूसरा, अनुभवजन्य ज्ञान।

ज्ञानं तु द्विविधं प्रोक्तं शाब्दिकं प्रथमं स्मृतम। अनुभवाख्यं द्वितीयं तु ज्ञानं तददुर्लभं नृप।।
उमा कहूँ मैं अनुभव अपना। सत हरि भजन जगत सभ सुपना ।। –गोस्वामी श्री तुलसीदास

आशुतोष भगवान शंकर भगवती पार्वती से अपने अनुभव जन्य ज्ञान की बात करते हैं। सरल शब्दों में किसी वस्तु–विषय अथवा व्यक्ति का जैसा स्वरूप है तथावत अनुभव करना ही पूर्ण ज्ञान है। उदाहरणतया रेत के स्थान पर रेत ही दिखाई देना न कि पानी (मृगतृष्णा के संदर्भ में)। परन्तु किसी वस्तु अथवा विषय की तो बात दूर की है ; यहाँ मायिक संसार में साधारण सांसारिक जीव को तो स्वयं के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान नहीं होता कि–

जल विच मीन प्यासी, मोहि सुन सुन आवत हासी।
आत्मज्ञान बिना सभ सूना क्या मथुरा क्या काशी ।। कबीर जी
कस्त्वं कोहं कुतः आयातः का मे जननी को मे तातः।
इति परिभावय सर्वं सारं विश्वं परित्यक्वा स्वप्न विचारं।। ––आचार्य शंकर

हम हैं कौन? आये कहां से हैं? हमारी वास्तविक पहचान क्या है? हमें पैदा करने वाले वास्तविक माता–पिता कौन हैं? क्या मैं केवल यह शरीर हूँ जो भोजन का रूपांतर है?

यत प्रातः संस्कृतं चानं सायं तचच विनश्यति।
तदीय रससम्पुष्टे काये का नाम नित्यता?

***शोधार्थी, हिन्दी विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक–124021**

****(शोध निर्देशक) हिन्दी विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक–124021**

अथवा क्या मैं इन्द्रियों की अनुभूति का साधन हूँ? या मैं मन हूँ। मैं कौन हूँ? क्या मैं ऐसा कोई व्यक्ति हूँ जो उन सभी से अलग है? मैं अपने आपको शरीर मानता हूँ या मन या एक भावनात्मक प्राणी या फिर बौद्धिक प्राणी मानता हूँ? क्या मैं सचमुच ऐसा ही हूँ– इति परिभावय– इसी तरह का मे जननी, का मे तातः?

ज्ञान की महत्ता :– उपरोक्त प्रश्नों का उत्तर देने का काम तथा सम्पति अथवा माया को अधिक चाहने वाले मन को बांधने का काम ज्ञान किया करता है।

कुंभे बधा जलु रहै जल बिनु कुंभ न होइ।
गिआन का बधा मनु रहै गुर बिनु गिआनु न होइ।।[1]
(श्री गुरु नानक देव जी) आदिग्रंथ अंग 469

प्रत्येक वस्तु–पदार्थ, परिवार, वंश, संस्था, समाज, देश, राष्ट्र की अपनी–अपनी महत्ता होती है। एक क्रम होता है, एक पहचान होती है, एक अस्मिता होती हैः ज्ञान के संदर्भ में भारत देश की अपनी एक अस्मितापूर्ण पहचान– एक परंपरा आरंभ से रही है। यही अस्मिता भारत एवं भारत के संतों द्वारा प्रदत्त ज्ञान की महत्ता भी है। शायद इसीलिए भारत को विश्वगुरु कहा जाता रहा है।

भूलोक का गौरव, प्रकृति का पुण्य लीला स्थल कहां?
फैला मनोहर गिरी हिमालय और गंगा जल कहाँ?
सम्पूर्ण देशों से अधिक, किस देश का उत्कर्ष है।
उसका कि जो ऋषि भूमि है, वह कौन भारत वर्ष है। (राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त)

फिर चाहे उस भारत देश में भारत की गौरवपूर्ण ज्ञान परम्परा को नष्ट भ्रष्ट करने अथवा नीचा दिखाने का समय समय पर दुष्टों ने भरसक प्रयास किए और परमात्मा ने अलग अलग रूपों में अपने संकल्प के अनुसार इसकी रक्षा–सुरक्षा और पुनः हृष्ट–पुष्ट करने का भरसक प्रयास किया क्योंकि लीलाधारी आनंदकन्द भगवान ने श्रीकृष्ण के रूप में श्रीमद्भगवद्गीता का उपदेश देते हुए

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम।
धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।।[2] (4.8 श्रीमद्भगवद्गीता)

श्री रामचरितमानस में गोस्वामी श्री तुलसीदास जी इसी भाव को अपने शब्दों में इस प्रकार लिखते हैं–

जब जब होइ धर्म कै हानी। बाढ़हि असुर अधम अभिमानी।
करहि अनीति जाइ नहि बरनी। सीदहि बिप्र धेनु सुर धरनी।।
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहि कृपानिधि सज्जन पीरा।।[3]
(श्री रामचरितमानस 1.1.121)

फिर वह रक्षा सुरक्षा जरूरी नहीं कि केवल शस्त्र के द्वारा ही हो, उसमें शास्त्र का, साहित्य का, महापुरुषों की अपनी तपोभूत वाणी का भी उतना ही योगदान हुआ करता है। जिस प्रकार का रोग होता है उसी प्रकार का निदान भी, जैसी समस्या वैसा समाधान भी है। विदेशी आक्रांताओं रूपी दुष्ट राक्षसों के द्वारा जब जब भारतीय ज्ञान परम्परा का ह्रास हुआ अथवा प्रयास मात्र भी किया गया तो भारतीय संत महापुरुष रूपी भूदेवों के द्वारा हमारी ज्ञान परम्परा को नष्ट होने से बचाने तथा उसे और अधिक समृद्ध बनाने का प्रयास किया गया। भारतीय ज्ञान परंपरा के आधारभूत वेदों में ऋग्वेद के 10.191.2 मंत्र (ऋचा) के उपदेशानुसार–

''संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम।
देवा भागं यथा पूर्वे सन्जानाना उपास्ते।''[4]

हम सब एक साथ चलें, एक साथ बोलें, हमारे मन एक हों। प्राचीन समय में देवताओं का ऐसा आचरण रहा, इसी कारण वे सदैव वन्दनीय हैं। अब एक साथ चलने से भाव कदम से कदम, विचार से विचार मिलाकर चलने से और कुल मिलाकर हमारे मन एक हों, हमारे मनों में समाज बोध हो, सामाजिक

समरसता हो। अब ऐसे सुहृद भाव की उपेक्षा कर जहाँ एक ओर विकृत मानसिकता के लोगों द्वारा हमारी भारतीय ज्ञान परंपरा को जानबूझ कर नष्ट–भ्रष्ट करने का या फिर नीचा दिखाने का भरसक प्रयास किया गया, वहीं दूसरी ओर श्री गुरु नानकदेव जी जैसे महापुरुषों द्वारा बुरे लोगों की बुराई, विकृत मानसिकता को ही दूर करने का प्रयास किया। क्योंकि सन्त महापुरुष–गुरुजन तो सदा सर्वदा एक साथ चलने की, विचार से विचार मिलाने की, जोड़ने की, समरसता की ही बात करते हैं। जिस राह पर चलकर हम स्वर्ग की कल्पना मात्र नहीं करते अपितु यह संसार ही स्वर्ग बन जाता है।

भव में नववैभव व्याप्त करने आया।/नर को ईश्वरता प्राप्त करने आया।।
संदेश यहां मैं नहीं स्वर्ग का लाया।/इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।।
(राश्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त)

ज्ञानदाता गुरु नानक वाणी की मानव को देन :– मनुर्भव–मनुर्भव–मनुर्भव ऋग्वेद के अनुसार मानव बनो, मानव बनो, मानव बनो, ऐसा उपदेश एवं वैदिक आदेश किसी पशु पक्षी के लिए न हो करके मानव के लिए ही है। मानव को मानव बनने की शिक्षा आरम्भ से ऋशि मुनि, संत महापुरुश देते आए हैं। वह समय तथा देश, काल, वातावरण के अनुसार हुआ करती है और होनी भी चाहिए। जगद्गुरु श्री गुरुनानक देव जी महाराज ने जब देखा कि साधारण सांसारिक जीव भ्रमित है, संशयों में पड़ा हुआ है तब संशयों से बाहर निकालने के लिए सीधे साधे तरीके से प्रभु नाम की महत्ता को यमदूतों से छूटने का माध्यम बतलाया–

"श्रीराम नामा उचर मना, आगै जम दल बिखम घना।। (श्री गुरु नानक देव जी, आदि ग्रन्थ पृ0 729)
कूड राजा कूड़ परजा कूड़ सभु संसारु।। कूड़ मंडप कूड़ माड़ी कूड़ बैसणहारु।।
.....
कूड़ मिठा कूड़ माखिउ कूड़ डोबे पूरु।। नानकु वखाणै बेनती तुधु बाझु कूड़ो कूड़।।[5]
(सलोकु मः 1 आदि ग्रन्थ पृ0 468)

ये सारा जगत छल रूप है जैसे मदारी का सारा तमाशा एक छलावा है, इसमें कोई राजा है और कोई प्रजा है। इस जगत में कहीं इन राजाओं के शामियाने व महल है, ये भी छल रूप हैं और इनमें रहने वाला राजा भी छल अर्थात् कूड़ अर्थात् झूठ अर्थात् नश्वर ही है। सोना, चांदी और सोने चांदी को पहनने वाले भी भ्रम ही हैं। ये शारीरिक आकार, सुन्दर सुन्दर कपड़े, ये सभी छलावे ही हैं। ये सारा जगत है तो छल पर यही छल सभी जीवों को प्यारा लग रहा है, शहद की तरह मीठा लगता है। इस तरह यह छल सारे जीवों को डूबो रहा है। हे प्रभू! नानक तेरे आगे अरदास करता है कि तेरे बिना ये जगत छल ही है अर्थात् मायापति के बिना माया बांधने वाली है। बन्धन का कारक है और मायापति के साथ यही मायिक संसार त्याज्य नहीं है, बड़ा सुन्दर है, मायापति की सौगात है।

निष्कर्ष :– जगद्गुरु श्री गुरु नानक देव जी की वाणी जिसे धुर की वाणी कहा गया है, अलौकिक वाणी कहा गया, वह आलौकिक वाणी होते हुए भी लोक अर्थात् संसार के जीवों अर्थात् मानव के अनुकूल होकर उसे ज्ञान देने का काम करने वाली है। ज्ञानदाता गुरु नानक वाणी की यही सहजता, सरलता, सुस्पश्टता मानव को रुचिकर लगती है, इसीलिए पढ़ने तथा सुनने वाले बड़े चाव तथा भाव से इस वाणी को पढ़ते सुनते हैं। इस पर विचार करने का भाव भी मुझ पर श्री गुरु नानक देव जी की महती कृपा है।

सन्दर्भ–सूची :–

1. आदि ग्रंथ– श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी, अंग 469।
2. श्री मद्भगवद् गीता 4.8।
3. श्री रामचरितमानस 1.1.121।
4. ऋग्वेद 10.191.2।
5. आदि ग्रंथ– श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी, अंग 468

ꙮ★ꙮ

भारतीय राष्ट्र और राष्ट्रवाद

रंजना देवी*

'मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है' महान विचारक अरस्तू के इस कथन से हम समझ सकते हैं कि मनुष्य का अस्तित्व समाज के बिना सम्भव नहीं है। मनुष्य और समाज का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है, दोनों एक दूसरे के पूरक एवं एक दूसरे पर निर्भर हैं। आदिमकाल में जब मनुष्य पृथ्वी पर आया तो उसे जीवन–यापन करने के लिए एक दूसरे के सहयोग की आवश्यकता महसूस हुयी, इसके लिए उसने परिवार बनाना शुरू किया। धीरे–धीरे ये परिवार जन, गण और कबीले के रूप में विकसित होते हुए एक समाज के रूप में विस्तारित हुए। आदिम युग के ये कबीले ही मध्यकाल में आकर 'राज्य' जैसी सामाजिक और राजनीतिक इकाई के रूप में संगठित होते हैं। समाज में अपना अस्तित्व बनाये रखने के साथ–साथ मनुष्य अपनी स्वतंत्र व्यक्तिगत इकाई को बनाये रखता है। अपनी वैयक्तिकता को सामाजिकता में बदलने के लिए मनुष्य ने तरह–तरह के सामूहिक शिल्प भी विकसित किये, जैसे– सामूहिक मिथक, तीज–त्योहार, देवी–देवता, रहन–सहन और खानपान इत्यादि।

इन सब सामूहिक गतिविधियों पर एक निश्चित प्राकृतिक और भौगोलिक परिस्थिति का भी प्रभाव दिखाई देता है। उसने ऐसे सामूहिक शिल्प इसलिए विकसित किये कि इसके माध्यम से ये संगठित होकर अपनी एक साझी संस्कृति और पहचान भी कायम रख सकें। इसी सामूहिकता को हम एक राष्ट्र के रूप में देख सकते हैं जो विकसित होते हुए आधुनिक युग में एक सुदृढ़ वैचारिक रूप धारण करता है।

राष्ट्र और राष्ट्रवाद के बीच कल्पना और विचार का अन्तर्सम्बन्ध है। जहाँ राष्ट्र एक काल्पनिक समुदाय होता है वहीं राष्ट्रवाद एक वैचारिक प्रयोजन। भारतीय राष्ट्र और राष्ट्रवाद विषय पर चर्चा से पूर्व हमें राष्ट्र और राष्ट्रवाद को जानना आवश्यक है। परिभाषित रुप में राष्ट्र की बात की जाए तो यह एक 'काल्पनिक समुदाय होता है, जो अपने सदस्यों के सामूहिक विश्वास, आकांक्षाओं और कल्पनाओं के सहारे एक सूत्र में बंधा होता है। यह कुछ खास मान्यताओं पर आधारित होता है, जिन्हें लोग उस समग्र समुदाय के लिए गढ़ते हैं, जिससे वे अपनी पहचान कायम रख सकें। यह खास मान्यताएं निश्चित भू भाग, संस्कृति, एकता, धर्म एवं भाषा होती है, अर्थात् राष्ट्र एक निश्चित भू–भाग के भीतर संस्कृति, एकता एवं भाषा के माध्यम से एक सूत्र में बंधा होता है।' 'बर्गेश महोदय' लिखते हैं कि, "राष्ट्र भौगोलिक एकता के एक ही क्षेत्र में निवास करने वाली केवल एक जाति की जनसंख्या है जिसने स्वतंत्र या स्वतंत्र होने की इच्छा के रूप में खुद को एक राजनीतिक इकाई के रूप में संगठित किया है।"

इसी प्रकार 'ब्लासली' लिखते हैं कि, "राष्ट्र ऐसे लोगों का समूह है जो विशेष रूप से भाषा, रीति–रिवाजों द्वारा सभ्यता में एकरुपता है, जो उनमें एकता और विदेशियों से विविधता की भावना पैदा करती है।" राष्ट्र की मनोवैज्ञानिक परिभाषा देते हुए गार्नर भी लिखते हैं कि, " राष्ट्र सांस्कृतिक रूप से संगठित और एकरूपीय समुदाय है। यह सामाजिक समूह है जिसे अपने मनोवैज्ञानिक जीवन की एकता और व्यक्ति का ज्ञान है और जो इसके प्रति चेतन और दृढ़ है।" राष्ट्र के संदर्भ में भारतीय सहित्यशास्त्रियों ने भी ऐसी ही परिभाषाएँ गढ़ी हैं। इसमें वासुदेवशरण अग्रवाल लिखतें हैं कि– "भूमि, भूमि पर बसने वाला जन और जन की संस्कृति इन तीनों के सम्मिलन से राष्ट्र का स्वरूप बनता है।"

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि, किसी निश्चित क्षेत्र/भू–भाग में निवास करने वाली जनता या लोगों का समूह जो अपनी सांस्कृतिक पहचान, मानवीय आदर्श और नैतिक मूल्यों के माध्यम से अपनी जातीय श्रेष्ठता को प्रदर्शित कर सकें, एक राष्ट्र के अंतर्गत आते हैं।

***शोधार्थी, हिन्दी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़।**

राष्ट्र की मूल परिकल्पना को समझने के लिए राष्ट्र, राज्य तथा देश को अलग–अलग समझना आवश्यक है। अक्सर इन शब्दों का प्रयोग एक समान अर्थों में किया जाता है लेकिन ये अपनी मूल प्रकृति में एक–दूसरे से भिन्नता भी रखते हैं। 'देश' एक भौगोलिक इकाई है इस शब्द का प्रयोग हम प्रायः भूगोल विषय के अंतर्गत करते हैं जबकि 'राज्य' एक राजकीय या शासकीय घटक होता है जो राजनीति या इतिहास विषय से सम्बंधित है, वहीं 'राष्ट्र' एक जीवंत, गतिशील तथा सांस्कृतिक इकाई है, इसके लिए सिर्फ भू–भाग, जनता एवं शासन ही पर्याप्त नहीं अपितु सांस्कृतिक एकता की अनुभूति आवश्यक होती है। देश और राज्य के निर्माण के लिए चार तत्वों की आवश्यकता होती है– एक निश्चित भू–भाग, उसके अंदर निवास करने वाली जनसंख्या, उस जनसंख्या को नियंत्रित करने के लिए एक शासन तंत्र या सरकार होनी चाहिए और अंतिम तत्व है 'सम्प्रभुता' जो सरकार अपने निर्णय लेने में सक्षम हो उसे हम सम्प्रभु सरकार कहते हैं। राष्ट्र और देश में एक मूल अंतर यह है कि देश से सिर्फ भौगोलिक स्थिति का आभास होता है जबकि राष्ट्र से वहाँ के निवासियों और एक जीवंत सामाजिक संस्कृति का बोध होता है। देश के अंतर्गत राष्ट्र का बोध नहीं होता जबकि एक राष्ट्र के अंतर्गत एक देश और राज्य भी समाहित होता है।

इन परिभाषाओं को देखकर एक बात तो स्पष्ट हो गयी है कि चाहे यूरोप हो या भारत हर जगह राष्ट्र की अवधारणा लगभग एक समान ही है। राष्ट्र का उदय ही किसी न किसी जाति की स्वतंत्रता से सम्बंधित रहा है। चाहे वह फ्रांसीसी क्रान्ति या रूसी क्रांति हो या फिर 1857 का भारतीय स्वतंत्रता संग्राम। जब जनता किसी निश्चित उद्देश्य को आधार बनाकर एकजुट होकर अपने विपक्षी दल का विरोध करती है, तब लोगों में एक समन्वित राष्ट्र के लिए जनाकांक्षा और एकता की भावना का प्रसार होता है यही जनाकांक्षा ही राष्ट्र का प्रमुख तत्व माना जाता है। यह सभी राष्ट्र में एक समान तत्व के रूप में देखा गया है।

राष्ट्र की उत्पत्ति के संदर्भ में बात की जाए तो यह शब्द मूलतः 'नेशियो' से बना है, जिसका अर्थ 'जन्म या उद्गम' माना जाता है। इसका एक अर्थ 'पिछड़ा कबीला' से भी लिया जाता है। जिसका प्रयोग प्राचीनकाल में मिश्र और रोम के सभ्य लोगों के बीच किया जाता था। वे लोग खुद को जेंस और पापुलस बताते थे। तत्पश्चात मध्ययुगीन सभ्यताओं में इस शब्द का प्रयोग कबीले के सरदारों को 'राष्ट्र का कैप्टन' के लिए होने लगा। परंतु आधुनिक काल में सामान्यतः इसे एक 'स्वतंत्र राज्य की जनता' के लिए प्रयोग किया जाता है।

भारतीय राष्ट्र की उत्पत्ति के संदर्भ में विद्वानों के विभिन्न मत देखे जाते हैं। कुछ विद्वान भारत को प्राचीनकाल से एक राष्ट्र मानते हैं तथा कुछ विद्वान उसे आधुनिक काल की उपज के रूप में स्वीकार करते हैं। यह बात विचारणीय है कि क्या भारत के विस्तृत इतिहास में राष्ट्र से संबंधित कोई ऐसी अवधारणा मिलती है जिसे आधुनिक राष्ट्रवाद के विचार से जोड़कर देखा जाए तो संभवतः उत्तर में 'न' ही आएगा। भले ही भारत में प्राचीन काल से 'उत्तरम् यतसमुद्रस्य' जैसी विशाल धारणा विद्यमान थी जिसके अनुसार भारत में एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र था, एक विशाल सांस्कृतिक और आध्यात्मिक भावना थी तथा एक समान दर्शन पर आधारित सामाजिक जीवन था। निश्चित ही यहां एकता की भावना निहित थी परंतु एक राष्ट्र की आधुनिक अवधारणा प्रचलित नहीं थी। ऐसा इसलिए भी था क्योंकि "भारत, चीन और इस्लामिक लोग महान और अपेक्षाकृत एक समान सभ्यता लेकर आए लेकिन आधुनिक राष्ट्रवाद का विचार उनके लिए तब तक अजनबी था जब तक वह यूरोपीय विचारों से अवगत नहीं हुए। " फ्रेडरिक हट्ज़ के इन शब्दों को और अधिक विस्तार दिया जाए तो हम यह कह सकते हैं कि ब्रिटिश राज्य ने भारत को राजनीतिक रुप से शासन के अधीन एकीकृत किया। उसने भले ही अपने हित के लिए भारत पर शासन थोपने की नीति अपनाई परंतु इस थोपे हुए शासन की प्रतिक्रिया स्वरुप भारतीयों ने स्वयं को राजनीतिक एवं सामाजिक स्तर पर एकजुट किया। इस अखिल भारतीय एकजुटता की उपज से हमारे अंदर राष्ट्रीय भावना का जन्म हुआ जिसे हम इससे पहले भारत के विस्तृत इतिहास में कहीं भी नहीं देख सकते।

राष्ट्रवाद और राष्ट्र में समानता, वैविध्य और अन्तर्सम्बन्ध को लेकर विद्वानों ने अलग–अलग तर्क प्रस्तुत किये हैं। महात्मा गांधी 'हिंद स्वराज्य' में लिखतें हैं कि, "यह कोई जरूरी नहीं कि एक धर्म को मानने

वाले राष्ट्रवाद का निर्माण करेंगे बल्कि यह खराब बात है कि हम एक राष्ट्र को धर्म के नाम पर एकजुट करने की कोशिश करें। " देखा जाए तो दुनियाभर के तमाम देशों में धर्म के नाम पर ही राष्ट्र की अवधारणा गढ़ी जा रही है। भारतीय राष्ट्र भी इससे अछूता नही है। राष्ट्रवाद भले ही दूरदर्शितापूर्ण है किंतु वर्तमान में यह धर्म और राजनीति के बीच यांत्रिक ढंग से प्रसारित हो रहा है। किंतु यह कोई नई बात नही है। बांग्ला साहित्यकार 'रवीन्द्रनाथ टैगौर' बहुत पहले ही लिख चुके हैं कि– "राष्ट्रवाद न केवल दूरदर्शिता पूर्ण है बल्कि भविष्य सूचक रचना है। इसकी दूरदर्शिता के पर्याप्त सबूत हैं– आणविक शस्त्रों की होड़, पर्यावरण का विनाश, नियंता मुक्त प्रौद्योगिकी।" इसी को वह और अधिक व्याख्यायित करते हुए आगे लिखते हैं, "यह लोगों का राजनीतिक, आर्थिक संघ है। जब समस्त जनता किसी यांत्रिक प्रयोजन से संगठित होने की स्वीकृति देती है।"

भारतीय परिप्रेक्ष्य में जब हम राष्ट्रवाद को समझते हैं तो हमारी सामाजिक चेतना, सामाजिक विविधता, सांस्कृतिक विविधता, हमारी भाषायी और सांस्कृतिक विविधता में सभी मिलकर राष्ट्रवाद का निर्माण करते हैं। भारत के लम्बे इतिहास में देखा जाय तो राष्ट्रीयता की भावना का विकास आधुनिक काल में अंग्रेजों के शासनकाल में होता है जब अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार से एक ऐसे विशिष्ट वर्ग का निर्माण हुआ जो स्वतंत्रता के मूल अधिकार को समझता था, जिसने देश के अलावा अन्य पाश्चात्य देशों का इतिहास पढ़ा और उसके पश्चात उसमें राष्ट्रवादी भावना का विकास हुआ। इस बात की पुष्टि रवीन्द्रनाथ जी के इन शब्दों में देखी जा सकती है, "बड़ी–बड़ी कठिनाइयों के बावजूद भारत ने कुछ किया है। उसने अपने यहाँ की जातियों के बीच संतुलन का प्रयास किया है और किसी समय कुछ एकता का प्रयास किया है ऐसे प्रयास हमारे संतों ने किए हैं। जैसे– नानक, कबीर, चैतन्य और दूसरों ने भी सभी जातियों को ईश्वर के एक होने के उपदेश दिए हैं।"

वर्तमान समय में देखा जाए तो धर्म को लेकर भारतीय राष्ट्रवाद की अवधारणा गढ़ी जा रही है। गाय और गोश्त की राजनीति में धर्म को राष्ट्रवाद से जोड़ना आधुनिक राजनीति की मजबूरी है, क्योंकि उसे जनता से जुड़ना पड़ता है और भोली जनता धर्म व जाति के रुप में राष्ट्रवाद के शिकंजे में आसानी से कसी जाती है। आज की सच्चाई से रवीन्द्रनाथ टैगोर के विचार शब्दशः मेल खाते प्रतीत होते हैं कि, "आप चाहे जैसी वर्तनी में लिखें युद्ध का अर्थ हत्या, लूटपाट, बलात्कार अन्य सभी अपराधों का संयोजित विस्फोटक अवयव होता है और आज सभी अपराधों में राष्ट्रवाद सबसे अधिक घिनौना और घातक अपराध है। "अगर हम मानवता को ताक पर रखकर राष्ट्रवाद को सिर्फ व्यक्तिगत फायदे के लिए इस्तेमाल करते हैं तो यह सच में एक घातक अपराध से कम नहीं साबित होगा।

हम कह सकते हैं कि राष्ट्रवाद आधुनिकता और आजादी की लड़ाई से जुड़ी हुई विचारधारा है जिसमें, राष्ट्रीयता की भावना सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। राष्ट्रीयता की भावना किसी राष्ट्र के सदस्यों में पायी जाने वाली सामुदायिक भावना है, जो उनका संगठन सुदृढ करती है। अर्थात राष्ट्रवाद लोगों के किसी समूह की उस आस्था का नाम है, जिसके तहत वह खुद को साझा इतिहास, परम्परा, भाषा, जातीयता और संस्कृति के आधार पर एकजुट मानते हैं। परिभाषित रूप में देखा जाए तो राष्ट्रवाद की व्यापक चर्चा हुयी है किन्तु राष्ट्रवाद की सुस्पष्ट और सर्वमान्य व्याख्या या परिभाषा करना कठिन है। पाश्चात्य विद्वान 'स्नाइडर' राष्ट्रवाद के संदर्भ में लिखते हैं कि, " इतिहास के एक विशेष चरण पर राजनीतिक, आर्थिक सामाजिक व बौद्धिक कारणों का एक उत्पाद है।"

राष्ट्रवाद एक सुपरिभाषित भौगोलिक क्षेत्र में निवास करने वाले ऐसे व्यक्तियों के समूह की एक मनःस्थिति, अनुभव व भावना है, जो समान भाषा बोलते हैं, जिनके पास एक ऐसा साहित्य है जिसमें राष्ट्र की अभिलाषाएं स्पष्ट अभिव्यक्त हो चुकी हैं, जो समान परम्पराओं तथा रीति–रिवाजों से सम्बद्ध है, जो अपने वीर पुरुषों की पूजा करते हैं और कुछ स्थितियों में समान धर्म वाले हैं।

राष्ट्रवाद के प्रतिपादक 'गेटवे' ने पहली बार राष्ट्रवाद की नींव डाली, जिसमें इन्होंने यह सिद्धान्त दिया कि, "राष्ट्र केवल समान भाषा, नस्ल, धर्म, क्षेत्र से बनता है।" इसका तात्पर्य यह नहीं कि भारत के

प्राचीन इतिहास से नई पीढ़ी को राष्ट्रवाद की प्रेरणा नहीं मिली, किन्तु भारत विविध भाषा–भाषी और अनेक धर्मों के अनुयायियों वाले विशाल जनसंख्या का देश है। सामाजिक दृष्टि से हिन्दू समाज जो देश की जनसंख्या का सबसे बड़ा भाग है, विभिन्न जातियों और उपजातियों में विभाजित रहा है। स्वयं हिन्दू धर्म में किसी विशिष्ट पूजा पद्धति का नाम नहीं बल्कि उसमें कितने ही प्रकार के पूजा और दर्शन सम्मिलित हैं। भारत की आर्थिक, सामाजिक, तथा राजनीतिक संरचना विशाल आकार के कारण यहाँ पर राष्ट्रीयता का उदय अन्य देशों की तुलना में अधिक कठिनाई से हुआ।

ऐतिहासिक दृष्टि से भी भारतीय राष्ट्रवाद एक सभ्यता के अन्तर्गत भारत का एक लम्बा ऐतिहासिक स्वरूप निर्मित करती है, जिनमें सभ्यतामूलक निरंतरता और एकता भारतीय राष्ट्र की बुनियाद है। भौगोलिक स्थिति, भाषा विविधता और सतरंगी संस्कृतियों के प्रति श्रद्धा, कला, साहित्य और शास्त्र संबंधी – तालमेल प्राचीन काल से ही रहे हैं जिनसे हमारे स्वाभाविक राष्ट्रवाद का पता चलता है। निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि भारतीय राष्ट्र 'वसुधैव कुटुम्बकम' की अवधारणा पर आधारित समता और समानता की वैचारिकता के साथ राष्ट्रीय भावना से ओत–प्रोत्र है जिसमें सभी धर्मों और विचारधाराओं का समन्वय है।

सन्दर्भ–सूची :–

1. गाँधी, महात्मा, हिन्द स्वराज्य, नई दिल्ली, डायमंड पाकेट बुक्स, संस्करण–2009।
2. टैगोर, रवीन्द्रनाथ, (अनु०) सौमित्र मोहन, राष्ट्रवाद, नई दिल्ली, नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया, संस्करण–2011।
3. नंदी, आशिस (अनु०) अभय कुमार दुबे, राष्ट्रवाद बनाम देशभक्ति, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, संस्करण–2005।
4. रविकांत (सं०), आज के आइने में राष्ट्रवाद, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, संस्करण–2018।
5. रविकांत (सं०), आजादी और राष्ट्रवाद, नई दिल्ली, अनन्य प्रकाशन, संस्करण–2018।
6. हबीब, इरफान, भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन और राष्ट्रवाद, (सं०) रमेश रावत, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, संस्करण–2020।
7. हबीब, इरफ़ान, (सं०) रमेश रावत, इतिहास और विचारधारा, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, संस्करण – 2023।
8. (सं०) हबीब, इरफ़ान एस. भारतीय राष्ट्रवाद एक अनिवार्य पाठ, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, संस्करण– 2023।
9. (सं०) अभय कुमार दुबे, समाज विज्ञान कोश।
10. विकिपीडिया डॉट कॉम।

रानी लक्ष्मीबाई का नेपथ्य : झलकारीबाई

आकांक्षा अग्निहोत्री*

भारतीय सभ्यता पुरातन काल से अपनी परंपरा, संस्कृति, रीति रिवाज रूपी दीपक की आभा से सदैव प्रकाशित होती आई है; क्योंकि भारतीयों ने मूल में अपनी संस्कृति को गौरव मयी स्थान प्रदान किया है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में संस्कृति भारतीय नागरिकों के जीवन की धारा को दिशा प्रदान करने वाली नाव के समान है। भारतीय संस्कृति में नारी को चराचर जगत को चलाय मान करने वाली शक्ति रूप माना गया है। नारी शक्ति से परिपूर्ण गौरवमयी, ममतामयी, त्यागमयी,वात्सल्य एवं स्नेह से परिपूर्ण, कर्मशील, मृदुभाषी, विवेकवान,सुशील, सुहृदया, निर्दोष, संवेदनशील, नदी के समान स्वीकार की गई है जो सदैव दूसरों के कल्याण के लिए संघर्ष एवं त्याग से भयभीत नहीं होती है क्योंकि– "स्त्रियः समस्तास्तव देवि भेदाः"[1]

दुर्गा सप्तशती के द्वारा यही दोहराया गया है अर्थात स्त्री की प्रत्येक भंगिमा में देवी का कोई ना कोई भाव, कोई ना कोई सौंदर्य, कोमल हो या कठोर, रुपायित रहता है। भारतीय नारी नदी के समान मूल में अपना अस्तित्व बनाए रखते हुए निरंतर पर्वत रूपी परिस्थितियों के समझ समर्पण ना करते हुए निरंतर संघर्ष करती रहती है।हिंदी के साहित्यकार पंडित विद्यानिवास मिश्र ने इसका उल्लेख नदी, नारी और संस्कृति में करते हुए लिखा है– "गंगा सुरधुनि होने के कारण इतनी बड़ी नदी नहीं है, जितनी की भागीरथी बनकर कोटि–कोटि जनों की, लाख–लाख वर्षों में संतरण के नदी बनकर, तीर्थों का तीर्थ बनकर और एक विशाल संस्कृति की ऐसी वाहिका बनकर, जिसमें छोटी उपाधाराएं बिना किसी संकोच के बहुत गौरव के साथ मिलती हैं और गंगा बन जाती हैं। भारतीय नारी भी भारतीय परिवेश में इसलिए महत्व पाती है कि वह तीसों रिश्तों के केंद्र में होती है। सांस होती है, बहू होती है, बेटी होती है, बहन होती है, नंद होती है, भाभी होती है, जेठानी होती है, और भी न जाने क्या–क्या होती है। इन सब के साथ वह पत्नी भी होती है। इन सारे संबंधों का जो शील के साथ निर्वाह कर पाती है, उसी का भारतीय परिवार में महत्व होता है।"[2] इस प्रकार नारी प्रत्येक रूप में मानव के जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हुई निरंतर उन्नत की ओर अग्रसर करती है। नेपोलियन बोनापार्ट ने नारी की महत्ता को बताते हुए कहा था कि" मुझे एक योग्य माता दे दो, मैं तुमको एक योग्य राष्ट्र दूंगा।"[3] संस्कृति, परंपरा, रीति रिवाज का संरक्षण एवं पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरण नारियों के कारण ही है। प्रत्येक माता अपनी संतान में ऐसे संस्कार, गुण उत्पन्न करती है, डालती है जो भविष्य में कुल, वंश, समाज एवं राष्ट्र के लिए उपयोगी एवं हितकर होते हैं। क्योंकि माता ही बालक की प्रथम गुरु होती है। ऐसे अनेकों उदाहरण हैं जीजाबाई,पन्नाधाय एवम् विद्यावती। "शतपथ ब्राह्मण कहता है कि माता के रूप में स्त्री शिशु की श्रेष्ठतम आचार्य होती है। शतपथ ब्राह्मण में व्यक्त मत से सहमति प्रदर्शित करते हुए वशिष्ठ धर्म सूत्रकर कहते हैं कि बच्चे का मार्गदर्शन करने और चारित्रिक उन्नयन करने में स्त्री पुरुष से 100 गुना श्रेष्ठ है।"[4]

इस प्रकार मां श्रेष्ठतम आचार्य तो होती ही है इसके अतिरिक्त अपनी सार्थकता बालक कोश्रेष्ठ बनाने में ही समझती है।साहित्यकार विद्या निवास मिश्र लिखते हैं "जिस प्रकार नदी निरंतर बहती रहती है और ऊंचाइयों के मोह को छोड़कर बहुत निचली ढलान की ओर बढ़ती है,उसी प्रकार मां धीरे–धीरे अपने पिता,अपने पति से संतान की ओर अधिक अभिमुख होती हुई,उसी के सुख के लिए जीती है और इसमें ही नारी अपनी पूर्ण सार्थकता पाती है ।शकुंतला को दुष्यंत से जो भी मिला हो ,उससे सौ गुना भरत से मिलता है।सीता को राम जैसे पति का कितना भी प्यार क्यों न मिला हो,लेकिन उसकी सार्थकता लव कुश को पालने में और उन्हें राम की सेना के साथ लोहा लेने योग्य बनाने में ही होती है।भारतीय संस्कृति उसी तरह अतीत की ओर नहीं देखती ,वह वर्तमान और भविष्यत की ओर देखती है।"[5]

***शोधार्थी, इतिहास विभाग, सरदार पटेल यूनिवर्सिटी, बल्ल्लविद्यानगर, आनंद।**

किंतु जब समाज,राष्ट्र, कुल में विकट स्थिति उत्पन्न हो जाती है तब राष्ट्र के अस्तित्व की रक्षा, सम्मान एवं स्वाभिमान एवं राष्ट्र के गौरव के लिए शक्ति का रूप धारण कर स्वयं रण क्षेत्र में उतर पड़ती है। भारतीय इतिहास में ऐसी कई वीरांगनाएं हैं जिन्होंने अपने वंश,कुल,राष्ट्र के लिए अपना सर्वोच्च निछावर कर दिया है रानी लक्ष्मीबाई; मीराबाई, दुर्गावती, बेगम हजरत महल, चांद बीबी, ताराबाई, अहिल्याबाई होल्कर अनेक महिलाएं भारत में अवतरित हुई जिन्होंने राष्ट्र निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है। इतिहास साक्षी है पर जब भी देश के गौरव की रक्षा का प्रश्न उठा है, भारतीय नारी ने सदैव प्रत्येक प्रकार शारीरिक, आर्थिक, मानसिक, पारिवारिक, सामाजिक, सांस्कृतिक रूप में योगदान दिया है। ऐसी ही एक वीरांगना रानी लक्ष्मीबाई हैं। हिंदी की प्रसिद्ध कवित्री श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान ने निम्नांकित पंक्तियों में रानी की महान वीरता का गुणगान किया है जिसे पढ़कर बिना रोमांचित हुए कोई नहीं रह सकताः

"सिंहासन हिल उठे, राजवंशों ने भृकुटी तानी थी।
बूढ़े भारत में भी आई, फिर से नई जवानी थी।
गुमी हुई आज़ादी की कीमत सबने पहचानी थी।
दूर फिरंगी को करने की सबने मन में ठानी थी।
चमक उठी सन सत्तावन में वह तलवार पुरानी थी।
बुंदेले हर बोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी।"[6]

प्रस्तुत लेख भारतीय नारी की जीवन अवधि के संघर्ष एवं त्याग का निरूपण करता है। उसने स्वयं की स्वाधीनता एवं राष्ट्र की स्वाधीनता में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है। अपने निर्णयों एवं कृत्यों से स्वाधीनता संघर्ष में योगदान देकर अपनी महत्ता को साकार रूप में स्थापित किया है।

भारत को लंबे समय तक विदेशी शासन व सत्ता के अधीन रहकर स्वतंत्रता से वंचित रहना पड़ा है। हमारे देश भारत को अंग्रेजों की बेड़ियों से स्वतंत्रता रातों–रात या अचानक नहीं मिली है। स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए हम भारतीयों ने अपना बहुत कुछ न्यौछावर किया है। स्वतंत्रता सेनानियों ने अपने प्राण तक न्योछावर किए हैं। इसके अतिरिक्त भारतीय महिलाएं भी स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए योगदान देने में पीछे नहीं रही हैं। जिन्होंने प्रत्येक प्रकार से अपना सर्वस्व न्योछावर किया है। इस प्रकार भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति में भारतीय महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही है प्रत्यक्ष भी एवं परोक्ष भी। ऐसी नारियों में रानी लक्ष्मीबाई, रानी चेन्नम्मा, अवंती बाई, अज़ीजन बाई ऐसे अनेकों नाम है। किंतु 1857 की क्रांति कहें या प्रथम स्वतंत्रता आंदोलन में झांसी की रानी लक्ष्मीबाई को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है, किंतु भारतीय स्वतंत्रता की प्राप्ति में एक और नाम दर्ज है और वह है वीरांगना झलकारी बाई का।

वीरांगना झलकारी बाई का जन्म 22 नवंबर 1830 को झांसी के पास भोजला गांव में एक निर्धन कोली परिवार में हुआ था। झलकारी बाई के पिता का नाम सदोवर सिंह और माता का नाम जमुना देवी था। इनकी मां की मृत्यु बचपन में ही हो गई थी। इन्हें घुड़सवारी और विभिन्न प्रकार के हथियारों का प्रयोग करना पिता ने सिखाया तथा इनका पालन पोषण एक पुत्र की भांति किया, कुछ परिस्थितियों के कारण इन्हें शिक्षा नहीं प्राप्त हो सकी, किंतु इनके पास सामाजिक एवं व्यवहारिक ज्ञान की कोई कमी नहीं थी। "उनके पिता ने उन्हें लड़के की तरह पाला। उन्हें घुड़सवारी और विभिन्न प्रकार के हथियारों का प्रयोग करने में प्रशिक्षित किया, उन दिनों की सामाजिक परिस्थितियों के कारण उन्हें कोई औपचारिक शिक्षा तो प्राप्त नहीं हो पाई, लेकिन उन्होंने खुद को एक अच्छे योद्धा के रूप में विकसित किया था।"[7] वह बचपन से ही अत्यंत साहसी और दृढ़ प्रतिज्ञ बालिका थी। ऐसा कहा जाता है कि बालक भविष्य में कैसा होगा इसका बचपन इसका पता बचपन में ही चल जाता है कहावत है पूत के पांव पालने में ही पता चल जाते हैं। ऐसी एक घटना है जंगल में इनकी भेंट तेंदुए से होने पर उसे अपनी कुल्हाड़ी से मार डाला था। इसी प्रकार जब डकैतों ने उनके गांव के एक व्यवसायी पर आक्रमण किया, तब इन्होंने अपनी वीरता का प्रदर्शन करते हुए, उन्हें धूल चटाया था। क्योंकि वह स्वयं वीर थी, अतः उनका विवाह वीर पूरन सिंह से हुआ। जो लक्ष्मी बाई के तोप खाने के अधीक्षक थे। झलकारी की वीरता से प्रभावित होकर रानी लक्ष्मीबाई ने इन्हें दुर्गा सेना में

शामिल किया, जो लड़ाकू महिलाओं की टुकड़ी थी, और बाद में वे इस दल की सेनापति बन गई। इस दल में महिलाओं को बंदूक चलाना, तोप चलाना और तलवारबाजी में निपुण बनाया जाता था।

झलकारी बाई, रानी लक्ष्मी बाई की तरह दिखने के कारण, लक्ष्मीबाई के स्थान पर इन्होंने कई युद्धों में भाग तो लिया, किंतु इतिहास में उनका नाम प्रत्यक्ष नहीं लिखा गया है। हमारे इतिहास में इतिहासकारों ने वही इतिहास लिखा है जो पहले से लिखा हुआ है। नए तथ्यों वा साक्ष्य को खोज कर किसी अनछुए को लिखने का प्रयास नहीं किया। इसी श्रेणी में कुछ स्वतंत्रता सेनानी हैं, जिनका नाम आज भी गोपनीय है। इसी श्रेणी में झलकारी बाई का भी नाम आता है।

डलहौजी ने व्यपगत के सिद्धांत के अंतर्गत जब 1857 में झांसी को हड़पने के लिए योजना बनाई। उस योजना को निष्फल करने हेतु जब झांसी की रानी महल के अंदर से अपनी सेवा का क्रियान्वन कर रही थी एवं अंग्रेजों के हमले को नाकाम कर रही थी। तब ही विरोधी दूल्हे राव ने रानी को धोखा दिया एवं अंग्रेजों का साथ देते हुए महल में प्रवेश करवाया। किंतु लक्ष्मी बाई को उसके वफादारों ने उसे महल से निकाला एवं दूर भेज दिया। "सन 1857 में ब्रिटिश सरकार ने झांसी पर हमला कर, उसको घेर लिया एवं उस पर कब्जा कर लिया, लेकिन रानी ने साहस नहीं छोड़ा। उन्होंने पुरुषों की पोशाक धारण की अपने पुत्र को पीठ पर बांधा दोनों हाथों में तलवारें ली व घोड़े पर सवार हो गई व घोड़े की लगाम अपने मुंह में रखी व युद्ध करते हुए वे अंत में अपने दत्तक पुत्र व कुछ सहयोगियों के साथ वहां से भाग निकली और तात्या टोपे से जा मिली"।[8] इस प्रकार लक्ष्मीबाई के स्थान पर झलकारी बाई ने रानी के घोड़े एवं वेशभूषा धारण कर सेनापतियों के साथ अंग्रेजों को युद्ध में उलझा कर रखा। उसका वीर पति भी वीरगति को प्राप्त हो गया। किंतु झलकारी बिना डगमगाए निरंतर अंग्रेजों से लोहा ले युद्ध करती रही। यहां तक की किसी व्यक्ति के पहचाने जाने पर उस व्यक्ति की मृत्यु कर दी ताकि वह यह भेद अंग्रेजों को ना बताएं एवं झलकारी बाई युद्ध लड़ती रही एवं वीरगति को प्राप्त हुई।

इस प्रकार वीरांगना झलकारी बाई शहीद होकर इतिहास में अपना नाम छोड़कर तो गई किंतु इतिहास के पन्नों से उसका नाम उजागर करने में इतिहासकारों ने किसी चपलता का परिचय नहीं दिया है। "उन्होंने ब्रिटिश सेना के विरुद्ध अद्भुत वीरता से लड़ते हुए ब्रिटिश सेना के कई हमले विफल किये, लेकिन युद्ध के दौरान एक तोप के गोले से झलकारी बाई बच नहीं पाई और अंततः रणक्षेत्र में ही वे शहीद हो गईं। उन्होंने जीवन की अंतिम सांस लेते हुए कहा 'जय भवानी।"[9] इस प्रकार रानी लक्ष्मी बाई के स्थान पर झलकारी बाई ने युद्ध करते हुए अपने प्राण मातृभूमि की रक्षा एवं सम्मान के लिए निछावर कर दिया। झलकारी बाई की वीरता को देखकर जनरल ह्यूग रोज ने कहा था कि "यदि भारत की एक प्रतिशत महिलाएं भी उसके जैसी हो जाएं तो ब्रिटिशों को जल्दी ही भारत छोड़ना होगा।"[10] हमारे इतिहास में इतिहासकारों ने भले ही ऐसी वीरांगनाओं पर ध्यान ना दिया हो किंतु आज भी ऐसी वीरांगनाओं के नाम भारतीय लोकगीतों एवं लोक कथाओं में सुनने को मिलते हैं। झलकारी बाई का नाम भी बुंदेलखंड की लोक गाथा एवम् लोकगीतों में सुनने को मिलता है। यदि हमें आज भी भारत के इतिहास को समझना है तो लोकगीत एवं लोग गाथाओं को सुनना एवम् समझना पड़ेगा क्योंकि उसमें हमारे इतिहास के साक्ष्य, तथ्य, प्रमाण आज भी विद्यमान है। वह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में निरंतर उसी रूप में स्थानांतरित भी हो रहे हैं। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने झलकारी की बहादुरी को पंक्तिबद्ध किया है–

"जाकर रण में ललकारी थी, वह तो झांसी की झलकारी थी।
गोरों से लड़ना सिखा गई, इतिहास में झलक रही, वह भारत की ही नारी थी।"[11]

इस प्रकार भारतीय इतिहास में स्वतंत्रता प्राप्ति में योगदान करने वाली ऐसी अनेक विभूतियां हैं जिन्होंने राष्ट्र के लिए अपने प्राण तक न्योछावर किए हैं और इतिहास में उनके नाम को उजागर नहीं किया गया है क्योंकि बहुधा इतिहास में उनके ही नाम को स्मरण रखा गया है, गुणगान किया गया है जो राज सत्ता या किसी उच्च कुल के हैं। किंतु अब आधुनिक समय में अनेकों ऐसे शोध एवं शोध पत्र प्रकाशित हो रहे हैं जिन्होंने हमारे भारतीय इतिहास को भारतीय के समक्ष लाने का प्रयत्न किया है ताकि भारतीय अपने

गौरवमयी इतिहास को जान सके, ज्ञान प्राप्त कर सके एवं गर्व महसूस कर सकें। इसी से दिशा प्राप्त करते हुए झलकारी बाई के सम्मान में 2001 को एक डाक टिकट जारी किया गया। उनकी स्मृति में एक प्रतिमा की भी आगरा में स्थापना की गई है एवं लखनऊ में उनके नाम से एक धर्मार्थ चिकित्सालय भी शुरू किया गया है। भोपाल में 2017 को भारत के राष्ट्रपति रामनाथ कोविंद ने उनकी प्रतिमा का भी अनावरण किया है।

निष्कर्ष :– स्पष्ट है की जब भी कोई– बड़ा कद बनता है तो उसके पीछे उसके सहयोगियों का बहुत बड़ा संघर्ष एवम् त्याग होता या रहता है। हमें ऐसे संघर्ष एवम् त्याग करने वालों के योगदान को कभी भूलना नहीं चाहिए; और इतिहास एवम् इतिहास–दृष्टि की जो तमाम भ्रांत अवधारणाएं हैं, उनसे ऊपर उठकर तटस्थ दृष्टि से, हर एक दृष्टि एवम् विचार का मूल्यांकन करना चहिए। यहाँ मैं झलकारी बाई के लिए यही कहूंगी –

दिशा दीप्त हो उठी प्राप्त कर पुण्य–प्रकाश तुम्हारा,
लिखा जा चुका अनल–अक्षरों में इतिहास तुम्हारा।

(संचयिता, रामधारी सिंह 'दिनकर' से साभार)

संदर्भ –सूची :–

1. भारतीय नारी की अस्मिता :पंडित विद्या निवास मिश्र, प्रभात प्रकाशन,नई दिल्ली,संस्करण–1993।
2. नदी, नारी और संस्कृतिः पंडित विद्या निवास मिश्र, प्रभात प्रकाशन,नई दिल्ली,संस्करण–1993।
3. देश भक्त नारी रत्न : डॉ सोहनराज तातेड, पारीक बुक डिट्रीब्यूटर जयपुर,प्रथम संस्करण–2019 पृष्ठ–3।
4. धर्मशास्त्र और स्त्री विमर्शःचंद्रकला पाडिया,महिला अध्ययन एवम् विकास केंद्र,काशी हिंदू विश्वविद्यालय वाराणसी,प्रथम संस्करण –2007 पृष्ठ–72।
5. नदी ,नारी और संस्कृति : पं. विद्या निवास मिश्र,प्रभात प्रकाशन ,नई दिल्ली,संस्करण–1993।
6. 1857 की क्रांति और उसके प्रमुख क्रांतिकारीः डॉ भरत मिश्र,राधा पब्लिकेशन,नई दिल्ली,संस्करण–2, 2001,पृष्ठ–61।
7. 75 महिला स्वतंत्रता सेनानी : ममता चंद्रशेखर, ज्ञानगंगा, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2023, पृष्ठ–107।
8. देश भक्त नारी रत्न : डॉ सोहनराज तातेड, पारीक बुक डिट्रीब्यूटर जयपुर,प्रथम संस्करण–2019,पृष्ठ–11।
9. वही, पृष्ठ– 108।
10. वही, पृष्ठ–109।
11. वही, पृष्ठ–109।

भारतीय संस्कृति के संरक्षण एवं निर्माण में शिक्षा का महत्त्व
(राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के विशेष संदर्भ में)

साक्षी दीक्षित*
डॉ. रचना यादव**

शोध-संक्षेपिका–

हिमालयं समारभ्य यावत् इंदु सरोवरम्।
तं देवनिर्मितं देशं हिंदुस्थानं प्रचक्षते।।

हिमालय पर्वत से शुरू होकर भारतीय महासागर तक फैला हुआ ईश्वर निर्मित देश है हिंदुस्तान, यही वह देश है। जहाँ ईश्वर समय–समय पर जन्म लेते हैं और सामाजिक सभ्यता की स्थापना करते हैं।

संस्कृति और शिक्षा का घनिष्ठ संबंध एक अत्यंत परंपरागत अवधारणा है। जहाँ शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य भविष्य में आने वाली पीढ़ियों को उनकी सांस्कृतिक विरासत व धरोहर को सौंपना है। संस्कृति का उद्भव व विकास मानव जीवन के विकास के साथ शनैः–शनैः हुआ है। अतः प्रत्येक समाज में उनकी सांस्कृतिक विरासत एक पीढ़ी द्वारा भावी पीढ़ियों को विभिन्न माध्यमों द्वारा हस्तानांतरित कर दी जाती है। उन विभिन्न माध्यमों में एक अत्यंत महत्वपूर्ण माध्यम शिक्षा है। संस्कृति के हस्तानांतरण की यह प्रक्रिया एक बालक के प्रारंभिक जीवन से ही उसके परिवार व संबंधियों द्वारा प्रारंभ कर दी जाती है तथा जीवन के अंत तक वह विभिन्न माध्यमों जैसे विद्यालय, समाज आदि के द्वारा विभिन्न परंपरागत मूल्यों, रीति–रिवाजों, परंपराओं आदि से परिचित होकर अपने जीवन में उन मूल्यों का प्रयोग कर के जीवन निर्वाह करता है। अतः एक सुसंस्कृत समाज में उसे किस प्रकार का व्यवहार करना है? क्या उचित व क्या अनुचित है? यह सब वह प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से सीखता है। प्रस्तुत शोध–पत्र संस्कृति के संरक्षण व निर्माण में शिक्षा के महत्त्व के अवलोकन पर आधारित है। प्रस्तुत शोध–पत्र का उददेश्य भारतीय सांस्कृतिक धरोहर के संबंध में समझ विकसित करना है तथा यह जानने का प्रयास करना है कि किस प्रकार नई शिक्षा नीति के माध्यम से भारतीय संस्कृति को संरक्षित करने का प्रयास करती है। प्रस्तुत शोध पत्र में वर्णनात्मक एवं विवेचनात्मक शोध पद्धति का प्रयोग किया गया है। इसमें तथ्यों का संकलन मुख्यतः द्वितियक श्रोतों पर आधारित है, जिसके अंतर्गत पुस्तक, शोध–लेख, इंटरनेट–वेबसाइट्स एवं सरकारी दस्तावेज व प्रतिवेदन आदि का प्रयोग किया गया है।

मूल शब्द– भारतीय संस्कृति, संस्कृति का संरक्षण, शिक्षा, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020.

प्रस्तावना– भारत विविधताओँ का देश है। ये विविधताएँ सदियों से अक्षुण्ण चली आ रही है। इसका मुख्य कारण है यहाँ की असंख्य परंपराएं, रीति–रिवाज, जिन्हें देशभर में फैले हुए जन समुदाय ने निरंतर पोषित किया है और विविध रूप दिया है, ऐसी परंपराओं एवं रीति–रिवाजों की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति है। यहाँ की भाषा, साहित्य, भोजन संबंधी आदतों, परिधान एवं वेशभूषाओं, मेलों तथा पर्वों, उत्सवों, शिल्प, संगीत, नृत्य, नाट्य व वास्तुकला व मूर्ति कला की शैलियों से दृष्टिगोचर होती है। भारत में ये विविधताएँ दैनिक जीवन में भी महत्वपूर्ण रूप से प्रतिबिंबित होती हैं। ये विविधताएँ क्षेत्र विशेष के आधार पर पाई जाती हैं। भारत आकार की दृष्टि से एक अति विशाल देश है, अतः इसे इसके आकार व विविधता के आधार पर ही

*** रिसर्च स्कॉलर, समाजशास्त्र और राजनीति विज्ञान विभाग, दयालबाग शिक्षण संस्थान आगरा–282005, उत्तर प्रदेश।**

****असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र और राजनीति विज्ञान विभाग, दयालबाग शिक्षण संस्थान आगरा, 282005, उत्तर प्रदेश।**

उपमहाद्वीप की संज्ञा भी दी जाती है। अतः भारत अपनी प्राकृतिक विविधता व सांस्कृतिक विरासत के लिए विश्व में एक अति महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इस विविधता को संपूर्ण रूप से भारतीय संस्कृति कहकर पुकारा जाता है। भारत विशाल भू–राजनीतिक विस्तार के साथ ही विरासतों की एक बड़ी मात्रा रखता है। भारत के इस विशाल प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक भंडार को वैश्विक स्तर पर इसकी अनूठी सांस्कृतिक पहचान के लिए महत्वपूर्ण अंग के रूप में चिह्नित किया जाता रहा है।

वर्तमान भारत में लगभग 40 विश्व धरोहर स्थल स्थित हैं, जिनमें से 32 सांस्कृतिक स्थल, 7 प्राकृतिक स्थल और 1 मिश्रित स्थल के रूप में सम्मिलित है। इसके अतिरिक्त भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग की देख–रेख में शामिल लगभग 3691 स्मारकों को राष्ट्रीय महत्त्व के स्मारक घोषित किया गया है (संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार)। ये आंकड़े निश्चित ही इस तथ्य की पुष्टि करने में सहायक हैं कि भारत सभ्यताओं व संस्कृतियों का प्राचीन समय से ही एक महत्त्वपूर्ण केंद्र रहा है।

भारत में शैक्षिक विकास का अवलोकन करने पर पता चलता है कि भारत में शिक्षा का एक लंबा और शानदार इतिहास रहा है। प्राचीनकाल से वर्तमान तक इसके विभिन्न उदाहरण इतिहास में वर्णित है। प्राचीन काल से ही भारतीय शिक्षा प्रणाली की यह विशेषता रही है कि इसका उद्देश्य केवल ज्ञान अर्जन तक ही सीमित न होकर इस दुनिया में जीवन के कठिन से कठिन दौर के लिए तैयारी के साथ स्वयं की अनुभूति एवं मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करना। भारतीय शिक्षा प्रणाली ने चरक, सुश्रुत, आर्यभट्ट, भास्कराचार्य, चाणक्य, पतंजलि, पाणिनि जैसे कितने ही विद्वानों को जन्म दिया है। इन विद्वानों के द्वारा विविध क्षेत्रों में विश्व ज्ञान में महत्वपूर्ण योगदान दिया गया है।

वहीं दूसरी ओर भारत की भूमि पर विकसित बौद्ध धर्म ने दुनिया पर, विशेष रूप से दक्षिण–पूर्व एशिया एवं चीन को प्रभावित किया है। इसी संदर्भ में संयुक्त राज्य अमेरिका में चीन के पूर्व राजदूत हूँ–शिह ने माना कि भारत ने सांस्कृतिक रूप से, बिना किसी सैनिक को उसकी सीमा पार भेजे ही चीन पर 20 शताब्दियों तक प्रभुत्व स्थापित किया था। भारत में शिक्षा पहले आक्रमण से लेकर अंग्रेजों के आने तक संस्कृतियों के मिश्रण से ही समृद्ध हुई। भारत के द्वारा इनमें से कई प्रभावों को आत्मसात कर लिया गया और उन्हें अपनी संस्कृति में मिलाकर एक अनूठी संस्कृति का निर्माण किया गया।

संस्कृति :– वुडवर्थ के अनुसार, संस्कृति एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित की जाने वाली प्रक्रिया है जिसमें कानून, नैतिकताएं, ज्ञान, विश्वास तथा संचार की कला को सम्मिलित किया जा सकता है। (पाठक, 2012)

संस्कृति एक व्यापक शब्द है। संस्कृति के प्रति विभिन्न लोगों का भिन्न–भिन्न दृष्टिकोण है। संस्कृति एक जटिल संपूर्ण है, जिसमें ज्ञान, विश्वास, कलायें, नीति, विधि, रीति–रिवाज और समाज के सदस्य होकर मनुष्य द्वारा अर्जित अन्य योग्यताएं और आदतें शामिल हैं । संस्कृति मनुष्य की अमूल्य निधि है। संस्कृति एक व्यवस्था है, जिसमें हम जीवन के प्रतिमानों, व्यवहार के तौर तरीकों, अनेक भौतिक व अभौतिक प्रतीकों, परंपराओं और विचारों, सामाजिक मूल्यों, मानवीय क्रिया–विधि और आविष्कारों को शामिल करते हैं।

भारतीय संस्कृति– भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक है। यह समावेशी प्रकृति की है। भारतीय संस्कृति के संदर्भ में पंडित मदन मोहन मालवीय के शब्दों के अनुसार भारतीय सभ्यता और संस्कृति की विशालता और उसकी महत्ता तो संपूर्ण मानव जाति के मध्य संबंध स्थापित करने अर्थात वसुधैव कुटुंबकम की पवित्र भावना में निहित है।

भारतीय संस्कृति की महत्वपूर्ण विशेषताएं–

- भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक है।
- यह वसुधैव–कुटुंबकम की भावना की प्रबल समर्थक है।
- भारतीय संस्कृति में सहिष्णुता और लचीलापन है जो इसे स्थायित्व प्रदान करता है।

- भारतीय संस्कृति ग्रहणशीलता व समावेशिता की भावना से परिपूर्ण है।
- भारतीय संस्कृति पश्चिमी व पूर्वी संस्कृति का एक बेहतरीन शिक्षण है।
- भारतीय संस्कृति में आध्यात्मिकता और भौतिकता का अद्भुत समन्वय विद्यमान है।
- भारतीय संस्कृति पर्यावरणीय संरक्षण और प्राकृतिक विविधता को संरक्षित करने की भावना से ओत–प्रोत है।
- यह शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व व विश्व–कल्याण की भावना की पक्षधर है।
- यद्यपि भारत भौगोलिक व सामाजिक सांस्कृतिक रूप से विविधताओं का देश है, परन्तु फिर भी विविधता में एकता की भावना महत्वपूर्ण रूप से विद्यमान है।
- संस्कृति एक दीर्घकालिक संरचना है, जिसमें त्वरित बदलाव संभव नहीं होता है।

शिक्षा– शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा ज्ञान, कौशल, अभिवृत्तियों का अर्जन किया जाता है, तथा व्यवहार में वांछित परिवर्तन किया जाता है। शिक्षा प्राप्त करने पर एक बालक पहले से अधिक ज्ञानवान, कार्यकुशल व प्रतिभावान बनता है। इन सभी प्रतीकों के परिलक्षित होने पर ही एक व्यक्ति शिक्षित कहलाने के योग्य बनता है। शिक्षा का अर्थ व्यक्ति को संपूर्ण बनाने से लिया जाता है। शिक्षा का लक्ष्य व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक, व्यक्तिगत व सामाजिक विकास करना है। इस संदर्भ में गाँधी जी का मानना है– शिक्षा वह है जो बालक के शरीर, मन और आत्मा का विकास करे। गाँधीजी शिक्षा को मनुष्य के व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास का साधन मानते थे। अतः शिक्षा के द्वारा बालक व बालिकाओं में निहित समस्त गुणों का विकास होता है। शिक्षा नागरिकों के निर्माण में सहायक होती है। पाश्चात्य विचारक अरस्तु के अनुसार शिक्षा की परिभाषा, ''शिक्षा व्यक्ति की शक्ति का और विशेष रूप से मानसिक शक्ति का विकास करती है, जिससे वह परम सत्य शिव और सुंदर के चिंतन का आनंद उठा सके।' (पाठक, 2012)

संस्कृति संरक्षण और शिक्षा– भारतीय संदर्भ में जब शिक्षा की बात की जाती है तो स्वतः ही गुरुकुल प्रणाली की छवि मन में प्रकट हो उठती है। भारत न सिर्फ इसकी गुरुकुल आधारित शिक्षा प्रणाली बल्कि उच्च शिक्षा के संस्थानों तक्षशिला, नालंदा व विक्रमशिला जैसे विश्वविद्यालयों के लिए भी विश्व प्रसिद्ध रहा है। इन संस्थाओं के द्वारा भारतीय संस्कृति को लिपिबद्ध करके संरक्षित करने का कार्य किया जाता था। अतः शिक्षा के माध्यम से ही एक राष्ट्र अपने मूल्य व परम्पराओं को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तानांतरित कर संरक्षित करता है।

अतः शिक्षा के अभाव में सभ्य और उत्तम जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती। यह सोचना ही भयावह लगता है कि शिक्षा के अभाव में क्या होगा? शिक्षा के द्वारा ही प्राचीनतम विचारों का क्रमबद्ध संकलन संभव हुआ है। शिक्षा के अभाव में किसी समाज में समाजीकरण, आधुनिकीकरण व वैज्ञानिक अभिवृत्ति की प्रक्रिया सुचारु नहीं रह सकती। भारतीय संस्कृति जिसे सबसे समृद्ध व अनोखी संस्कृति का दर्जा प्राप्त है, शिक्षा के अभाव में न तो स्थापित हो पाती और न ही इसका विकास संभव हो पाता। जीवों के विकास की निरंतर चलने वाली प्रक्रिया में मानव जीवन की उत्पत्ति निश्चित ही विशेष है।

मानव को विभिन्न कोटियों में अनोखा होने का गौरव इसलिए भी प्राप्त है कि यह शारीरिक व मानसिक रूप से अति सक्षम व विकसित है। संपूर्ण विश्व में ही जीवों का विकास नदियों के किनारे से हुआ, भारत भी इसका उदाहरण है। नदियों किनारे विकसित हुई सभ्यताओं ने मानव के समक्ष विभिन्न चुनौतियों को रखा था, जिसे स्वीकार करके एक परिणाम तक पहुंचाना मनुष्य का उत्तरदायित्व था। जिसे मनुष्य के द्वारा निभाया भी गया और इसी क्रम में परिवार, समूह, समाज का निर्माण भी किया गया।

भारतीय संस्कृति ने विभिन्न बाह्रय परिवर्तनों को भी स्वयं में समाहित कर एक विविध अनोखी संस्कृति का निर्माण किया है। विभिन्न धार्मिक ग्रंथो ने भारतीय संस्कृति में मुख्य रूप से कुछ बातों पर बल दिया, जो कि सभी धर्मों का व भारतीय संस्कृति का मूल हैं। यह निम्न है– परोपकार करना तथा दूसरों को कष्ट न देना।

शिक्षा की संस्कृति के निर्माण व संरक्षण में भूमिका–

1. शिक्षा संस्कृति का संरक्षण करती है।
2. शिक्षा संस्कृति का हस्तांतरण करती है।
3. शिक्षा संस्कृति का विकास करती है।
4. शिक्षा संस्कृति का परिमार्जन करती है।
5. शिक्षा व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास में सहायक है।
6. कर्तव्यों व अधिकारों के लिए चेतना का विकास करती है।
7. सामुदायिक भावना का विकास।
8. राष्ट्रीय भावना, देश हित की भावना का विकास।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 एवं संस्कृति संरक्षण :– राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, 21वीं शताब्दी की पहली शिक्षा नीति है जिसका लक्ष्य भारत के विकास के लिए अनिवार्य आवश्यकताओं को पूरा करना है। यह नीति भारत की परंपरा और सांस्कृतिक मूल्यों के आधार को बरकरार रखते हुए, 21वीं सदी की शिक्षा के लिए आकांक्षात्मक लक्ष्यों के संयोजन में शिक्षा व्यवस्था, उसके नियमन और गवर्नेंस सहित, सभी पक्षों के सुधार और पुनर्गठन का प्रस्ताव रखती है। नई शिक्षा नीति का निर्माण विभिन्न शिक्षाविदों के अनुभवों तथा विद्वानों के सुझाव के पश्चात् के. कस्तूरीरंगन की अध्यक्षता वाली समिति की सिफारिशों के आधार पर वर्तमान सरकार के द्वारा व्यापक बदलावों हेतु अपनायी गयी है। समता, गुणवत्ता तथा उत्तरदायित्व के आधार पर तैयार यह नई शिक्षा नीति सतत विकास के अनुरूप है। इसका लक्ष्य 21वीं शताब्दी की आवश्यकताओं के अनुकूल विद्यालयी शिक्षा को समग्र लचीला बनाना है, जिससे भारत एक ज्ञान आधारित जीवंत समाज की स्थापना के साथ वैश्विक परिदृश्य में विश्वगुरु बनने की दिशा में अग्रसर हो सके। यह स्थिति देश की भावी पीढ़ियों में निहित विलक्षण प्रतिभा एवं क्षमताओं को विकसित करने से निश्चित ही संभव हो सकती है। शिक्षा आयोग 1964 में कहा गया था कि भारत का भाग्य उसकी कक्षाओं में निर्मित हो रहा है। अतः उपर्युक्त कथन के आधार पर कहा जा सकता है कि नई शिक्षा नीति 2020 के माध्यम से शिक्षा द्वारा संस्कृति संरक्षण का प्रयास किया जा रहा है। इस प्रकार शिक्षा को प्रत्येक आम व्यक्ति तक पहुँचाया जा रहा है। नई शिक्षा नीति की प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें कला, संस्कृति, और भाषा के माध्यम से मनुष्य की सृजनात्मक क्षमता की जागृति पर बल दिया गया है। भाषा अभिव्यक्ति का ही साधन नहीं है बल्कि किसी राष्ट्र के स्वाभिमान तथा प्राचीन संस्कृति के संवाहक की भूमिका भी निभाती है। नई शिक्षा नीति में इस बात पर जोर दिया गया है कि नवीन विचार अपनी मातृभाषा में ही आते है। इस प्रकार नई शिक्षा नीति 2020 भारतीय संस्कृति के ना सिर्फ संरक्षण में वरन संवर्धन में अग्रणी भूमिका निभा सकती है।

शिक्षा के वर्तमान लक्ष्य और एक भारत श्रेष्ठ भारत– यह सर्वमान्य है कि संस्कृति और शिक्षा के परस्पर संबंध को एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता, क्योंकि संस्कृति जीवन का ही एक रूप है और शिक्षा इसे समझने का साधन है। शिक्षा का लक्ष्य मूल रूप से एक व्यक्ति को व्यवहारिक जीवन हेतु तैयार करना है। शिक्षा का उद्देश्य पाठ्य–चर्या, आत्मज्ञान को विद्यालय के बाहरी जीवन से जोड़ना और देश की प्रजातांत्रिक संरचना में रहकर विविधता संबंधी सरोकारों को महत्त्व देते हुए देश की एकता का परिपोषण करना है। भारत के वर्तमान प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी के द्वारा एक भारत, श्रेष्ठ भारत जैसी पहलों की शुरुआत की गई है। यह 31 अक्टूबर 2015 को सरदार वल्लभ भाई पटेल की 140वीं जयंती के अवसर पर घोषित किया गया था।

एक भारत श्रेष्ठ भारत पहल के लक्ष्य–

- हमारे राष्ट्र की विविधता में एकता को उजागर करना और हमारे देश के लोगों के मध्य प्राचीन समय से विद्यमान भावनात्मक बंधनों को और मजबूत करना।
- राज्यों के मध्य एक वर्षीय योजनाबद्ध गठबंधन के माध्यम से सभी राज्यों तथा संघ राज्यक्षेत्रों के बीच एक गहरे तथा संरक्षित गठबंधन के द्वारा राष्ट्रीय अखंडता की भावना को बढ़ावा देना।

- राज्यों की समृद्ध सांस्कृतिक धरोहर, रूढ़ियों व परंपराओं को व्यवस्थित रुप से प्रदर्शित करना जिसमें लोग भारत की विविधता व सांस्कृतिक विरासत से परिचित होकर गर्व महसूस कर सकें।
- एक ऐसा वातावरण तैयार करना जो सर्वोत्तम परिस्थितियों और अनुभवों के आदान प्रदान से राज्यों के बीच जानकारी को बढ़ावा देता है।

भारतीय संस्कृति एवं विरासत से संबंधित संवैधानिक और विधायी प्रावधान :–

राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांत– अनुच्छेद 49, संसद द्वारा अधिनियमित विधि के अंतर्गत या इसके द्वारा घोषित राष्ट्रीय महत्त्व के प्रत्येक स्मारक या स्थल या ऐतिहासिक रूचि की वस्तु की रक्षा करने का दायित्व राज्य को सौंपता है। (भारत का संविधान)

मूल कर्तव्य – संविधान के अनुच्छेद 51A में कहा गया है कि भारतीय संस्कृति की समृद्ध विरासत को महत्त्व देना और उसे संरक्षित करना भारत के प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य होगा। (भारत का संविधान)

प्राचीन संस्मारक तथा पुरातत्विक स्थल और अवशेष अधिनियम, 1958, यह भारत की संसद का एक अधिनियम है जो प्राचीन और ऐतिहासिक स्मारकों एवं पुरातात्विक स्थलों व राष्ट्रीय महत्त्व के अवशेषों के संरक्षण, पुरातत्विक खुदाई के विनियमन और मूर्तियों, नक्काशी एवं अन्य ऐसी वस्तुओं के संरक्षण के लिए उपबंध करता है।

मूल अधिकार– भारतीय संविधान के अनुच्छेद 29 के तहत भारत के क्षेत्र या उसके किसी भी हिस्से में रहने वाले नागरिकों के किसी भी वर्ग की अपनी अलग भाषा, लिपि या संस्कृति है तथा उसे उसके संरक्षण का अधिकार है।(भारत का संविधान)

भारतीय संस्कृति के संरक्षण हेतु महत्वपूर्ण सुझाव –

1. अपनी सांस्कृतिक परम्पराओं व विरासत के बारे में जानना तथा उस पर गर्व करना, साथ ही अपने व्यवहार में उतारना।
2. सामाजिक–सांस्कृतिक रूप से राष्ट्रीय महत्त्व के पर्वों का आयोजन।
3. समाज के सभी सदस्यों के साथ सहिष्णुता के साथ रहना।
4. प्राचीन भाषाओं व संस्कृतियों का राज्य द्वारा संरक्षण करना।
5. शिक्षा ऐसी हो जो भारतीय भाषा, कला व संस्कृति का प्रचार करे।
6. बालकों में सांस्कृतिक जागरूकता व रचनात्मक लेखन क्षमता का विकास करे।
7. मातृभाषा, स्थानीय भाषा में शिक्षण हो।
8. शास्त्रीय, आदिवासी, लुप्तप्राय भाषाआँ, कला, संस्कृति का संरक्षण किया जाये।
9. संस्कृत भाषा को मुख्य धारा में लाने का प्रयास किया जायेगा।
10. संग्रहालय एवं पुरातत्व का संरक्षण हो।
11. बच्चों में भाषा, संस्कृति, कला और दर्शन के प्रति रुझान बढ़ाने पर बल दिया जायेगा।
12. गणित, खगोलशास्त्र, दर्शनशास्त्र, नाटक योग आदि को मुख्यधारा में जोड़ा जाये।
13. पारंपरिक ज्ञान को पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया जाये।
14. पर्यावरण संरक्षण व संवर्धन हेतु बालकों को संवेदनशील बनाया जाये ।
15. भारतीय भाषाआँ में उच्चतर गुणवत्ता वाली सामग्री का विकास करने की संकल्पना हो।

उपसंहार– आज की भारतीय संस्कृति शिक्षा की देन है। जिसके आलोक में अतीत व भविष्य दर्शन को संभव किया जा सकता है। शिक्षा का क्रियान्वयन हमेशा संस्कृति के संरक्षण को सुगम बनाने की दिशा में किया जाना चाहिए। शिक्षा प्रणाली का उपयोग इस प्रकार किया जाना चाहिए कि छात्रों की रचनात्मकता और नवाचार को प्रोत्साहन मिल सके। जैसा कि आइंस्टीन के द्वारा कहा गया था, कि आप अपने विद्यालयों में जो अद्भुत चीजें सीखते हैं वह कई पीढ़ियों का काम है। यह सब कुछ आपके हाथों में आपकी विरासत के

रूप में दिया गया है, ताकि आप इसे प्राप्त कर सकें, इसे बचा सकें, बढ़ा सकें और एक दिन ईमानदारी के साथ इसे अपनी भावी पीढ़ियों को सौंप सकें। इस प्रकार हम नश्वर होकर भी स्थायी चीजों, परंपराओं, सांस्कृतिक विरासत में अमरता प्राप्त करते हैं जो कि हम आम तौर पर बनाते हैं। अगले दशक में भारत दुनिया का सबसे युवा जनसंख्या वाला देश होगा और इन युवाओं को उच्चतर गुणवत्तापूर्ण शैक्षिक अवसर उपलब्ध कराने पर ही भारत का भविष्य निर्भर करेगा। नई शिक्षा नीति को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक सार्वभौमिक पहुंच प्रदान करना वैश्विक मंच पर सामाजिक न्याय और समानता, वैज्ञानिक उन्नति, राष्ट्रीय एकीकरण और सांस्कृतिक संरक्षण के सम्बन्ध में भारत कि सतत प्रगति और आर्थिक विकास की कुंजी है। सार्वभौमिक शिक्षा वह उचित माध्यम है, जिससे देश कि समृद्ध प्रतिभा और संसाधनों का सर्वोत्तम विकास और संवर्द्धन व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्व की भलाई के लिए किया जा सके।

विद्यां ददाति विनयं विनयाद् याति पात्रताम्।
पात्रत्वात् धनमाप्नोति धनात् धर्म ततः सुखम्।।

(विद्या हमें विनम्रता प्रदान करती है। विनम्रता से योग्यता आती है व योग्यता से हमें धन प्राप्त होता है और इस धन से हम धर्म के कार्य करते है और सुखी रहते है।)

संदर्भ–सूची :–

1. अशोक कुमार. भारतीय संस्कृति के संरक्षण में शिक्षा की भूमिका. International Journal of Hindi Research, Volume 6, Issue 4, 2020, Pages 04-06 https://www.hindijournal.com/archives/2020/vol6/issue4/6-4 accessed on 31/03/23
2. पाठक, पी. डी. (2012), शिक्षा मनोविज्ञान, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।
3. https://www.researchgate.net/publication/339816271_Role_of_Education_in_Transmitting_Culture_in_Society accessed on 31/03/23
4. https://www.ugtabharat.com/12297/ accessed on 31/03/23
5. https://ncert.nic.in/pdf/publication/otherpublications/BharatSaanskritikVividhtaMeEkta.pdf accessed on 31/03/2023
6. http://shabdbraham.com/ShabdB/archive/v4i9/sbd-v4-i9-sn17.pdf accessed on 31/03/2023
7. http://www.srjis.com/pages/pdfFiles/162815562614.%20ashok%20varma%201.pdf accessed on 31/03/2023
8. https://indiaculture.gov.in/scheme-safeguarding-intangible-cultural-heritage-and-diverse-cultural-traditions-india accessed on 27/03/2023.
9. https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/Draft_NEP_2019_EN_Revised.pdf accessed on 27/03/2023.
10. https://indiaculture.nic.in/sites/default/files/Schemes/GENL%20NATIONAL%20CONSERVATION%20POLICY.pdf accessed on 27/03/2023
11. https://www.niti.gov.in/sites/default/files/2020-06/Improving-HeritageManagement-in-India.pdf accessed on 27/03/2023.
12. https://www.india.gov.in/topics/art-culture accessed on 27/03/2023.
13. https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_final_HINDI_0.pdf accessed on 27/03/23.

ꕤ★ꕤ

हिंदी गद्य की विकास-यात्रा

प्रशान्त कुमार*

डॉ. निशात बानो**

सारांश :– खड़ी बोली के रूप में प्रचलित वर्तमान भाषा का स्वरुप अपने मूल नाम कौरवी या देहलवी से जाना जाता था। यह बोली मूलतः पश्चिमी उत्तर–प्रदेश, दिल्ली के आसपास के क्षेत्र की है। पुरानी हिंदी के बाद यही भाषा पूरे क्षेत्र की जन बोली के रूप में चलन में रही। इस देश में बाहरी क्षेत्रों से आए आक्रमणकारी सामान्यता इसी क्षेत्र में सीमित रहे हैं और यही कारण है कि समय के साथ इस बोली को सीखना उनके लिए आवश्यक होता गया। समय के साथ–साथ जब यह बोली विस्तार पाने लगी तो इस पर फारसी का भी प्रभाव पड़ने लगा। इसी बोली की अलग–अलग शैलियां हिंदी, रेख्ता, दक्खिनी हिंदी, उर्दू तथा हिंदुस्तानी आदि नामों से जानी गईं। कौरवी ढंग पर आधारित इसी भाषा को 19वीं शताब्दी में पहली बार खड़ी बोली के नाम से जाना गया। गार्सा द तासी तथा डॉक्टर चंद्रबली पांडे का मत है कि खड़ी बोली का संबंध खरी या शुद्ध से है। दोनों ही विद्वानों का मानना है कि यह नाम देने के पीछे मुख्य कारण यह रहा होगा कि इसे अरबी–फारसी से प्रभावित रेख्ता या उर्दू से अलग किया जा सके। कुछ विद्वान इसका संबंध कठोरता के प्रतीक के रूप में भी देखते हैं, तो कुछ विद्वान इसे मानक या स्टैंडर्ड भाषा के रूप में स्वीकार करने के पक्षधर हैं। सामान्य रूप से यही कहा जा सकता है कि खड़ी बोली के नामकरण का संबंध इसके खरेपन से ही है।

मुख्य शब्द :– ब्रजभाषा पद्य, गोरखपंथी, आदिकालीन गद्य का स्वरुप, 19वीं सदी में गद्य प्रचार, ईस्ट इंडिया कंपनी की भाषा नीति, फ़ोर्ट विलियम कॉलेज, ब्रह्म समाज, आर्य समाज, भारतेंदु हरिश्चन्द्र।

19वीं शताब्दी से पूर्व हिंदी गद्य की परंपरा – हिंदी गद्य साहित्य की परंपरा से पूर्व हिंदी साहित्य ब्रजभाषा पद्य में ही था। यही कारण है कि गद्य की शुरुआत भी ब्रजभाषा से ही होती है। हिंदी गद्य के विकास के शुरुआती दौर में कई गोरखपंथी भी हैं। इन सभी का संबंध ब्रह्मज्ञान तथा हठयोग से रहा है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने हिंदी साहित्य के इतिहास में लिखा है 'कि एक पुस्तक गद्य में भी है, जिसका लिखने वाला 'कहिबा' आदि प्रयोगों के कारण राजपूताने का निवासी जान पड़ता है। इसके गद्य को हम संवत 1423 के आस–पास के ब्रजभाषा गद्य का नमूना मान सकते हैं। इसका एक अंश उद्धृत है "श्री गुरु परमानंद तिनको दंडवत है। हैं कैसे परमानंद आनंद स्वरूप है सरीर जिन्हि को, जिन्हि के नित्य तें सरीर चेतन्निअरु आनंदमयहोतु है। मैं जु गोरिषु सो मछंदर नाथ को दंडवत कर हौं।"[1]

इसके बाद ब्रजभाषा में ही गोसाईं विट्ठलनाथ हैं। यह गद्य की प्रारंभिक अवस्था थी, इस कारण यह अव्यवस्थित भी है। ब्रजभाषा में लिखित 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' तथा 'दो सौ बाबन वैष्णवन की वार्ता' आम बोलचाल की भाषा में लिखी गई है। मुस्लिम शासन होने के कारण उस समय लोक प्रचलित अरबी–फारसी शब्दों का प्रयोग भी इनमें दिखाई पड़ता है। प्राचीन समय में गद्य साहित्य के न होने का "एक प्रधान कारण मुद्रण यंत्रों का अभाव भी है। लोगों को विवश होकर बहुत कुछ साहित्य कंठस्थ रखना पड़ता था। गद्य की अपेक्षा तुक, लय आदि के कारण पद्य का कंठस्थ करना सरल होता है। यही कारण है कि 19वीं शताब्दी के पूर्व गद्य साहित्य का समुचित विकास नहीं हो सका।"[2]

जो बात कही जाए उसे 'गद्य' कहा जाता है। कही जाने वाली बात के रूप में खड़ी बोली गद्य की पहचान अत्यंत प्राचीन और व्यापक भाषा के रुप में है। लेकिन ब्रजभाषा के सामने यह खड़ी नहीं हो पा रही

*** शोधार्थी, हिंदी विभाग, म. ज्यो..फु. रूहेलखंड वि.वि. बरेलीए उ.प्र.।**

**** शोध पर्यवेक्षक, हिंदी विभाग– राजकीय महिला पी.जी. महाविद्यालय, रामपुर, उ.प्र.।**

थी। अपभ्रंश के शुरुआती दौर में गद्य रचनाएं बहुत कम देखने को मिलती हैं। इसके स्थान पर परवर्ती अपभ्रंश में इनकी संख्या कुछ बढ़ती हुई दिखाई देती है। आदिकालीन गद्य के स्वरूप विकास की सूचना देने वाली प्रमुख कृतियां हैं – 1. कुबलय माला (10वीं शती), 2. राउबेल (11वीं शती), 3.उक्तिव्यक्ति प्रकरण (12वीं शती) 4.वर्ण रत्नाकर (14वीं शती) 5.कीर्ति लता (14वीं शती)। प्राचीन अपभ्रंश की एक प्रसिद्ध रचना 'कुवलयमाला कथा' में कुछ गद्य का भाग है। इसके अलावा बाद के अपभ्रंश में ज्योतिश्वर ठाकुर कृत 'वर्ण रत्नाकर' और विद्यापति की 'कीर्तिलता' में पूर्वी प्रयोग ही अधिक है। 'कुबलयमाला' में अलग–अलग प्रांतों के दुकानदारों द्वारा अपने ग्राहक को बुलाना, बातचीत की भाषा (गद्य) में ही लिखा गया है।

इस भाषा का अन्य प्रांतों में प्रचार होने का मुख्य कारण है कि व्यापारी तथा धर्म यात्री आदि घूमने फिरने वाले लोग हुआ करते थे तथा अलग–अलग स्थानों पर रुकने के कारण वहां के लोग भी इस भाषा से परिचित होते थे। राजनीतिक उथल–पुथल के कारण भी अंतर प्रांतीय आवागमन लगा रहता था। भाषा के प्रचार के लिए यह सब कारण काफी महत्वपूर्ण रहे। इस तरह खड़ी बोली के शब्द अपभ्रंश के साथ प्रयुक्त होने लगे। मुसलमान शासकों के संपर्क का प्रभाव यहाँ की आम बोलचाल की भाषा पर खूब पड़ा। मुसलमानी शासकों तथा शासितों की संपर्क भाषा होने के कारण इसके अनेक शब्द धीरे–धीरे लोक व्यवहार में आने शुरू हो गए। हिंदी खड़ी बोली के प्रचार–प्रसार में सबसे अधिक योगदान देने वालों में धर्म प्रचारक ही रहे हैं। शितिकंठ मिश्र ने अपनी पुस्तक 'खड़ी बोली का आंदोलन' में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा दिखाई गयी संवत 1731 की एक हस्तलिखित पुस्तक 'गोरखशत' का उल्लेख किया है, जिसे प्राचीनता की दृष्टि से अति महत्वपूर्ण माना जा सकता है। इसकी कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं– "गोरखनाथ जो सो योगिहून का जो इष्ट कहत हैं। का करिकै, गुरु कह भक्तिपूर्वक नमस्कार करकै।.... श्री गोरखनाथ योगिहून की हित कामना करि योग शतक कहत है।"[3]

आमजन में यह बोली खूब प्रचलित हुई। मुसलमान शासकों, साधु–संतों के साथ यह बोली उत्तर की ओर बढ़ी और इसने खूब विस्तार पाया। मुगल साम्राज्य के पतन के समय उसकी राजधानी दिल्ली, आगरा आदि शहरों की दशा बिगड़ गई तथा तमाम लोग, जिनमें कवि, लेखक तथा व्यापारी आदि थे; ने जीविकोपार्जन के लिए पूर्वी प्रदेश की ओर प्रस्थान किया। यह लोग लखनऊ काशी आदि से आगे बढ़कर बंगाल तक गए। इन सब लोगों के साथ–साथ बड़े शहरों के बाजारों की बोली तथा पत्र व्यवहार आदि की भाषा का रूप खड़ी बोली ने ले लिया।

गिलक्रिस्ट की भाषा नीति के पहले अंग्रेज विद्वानों ने भी हिंदुस्तानी को भारत के शिष्ट वर्ग की बोली के रूप में बताया है। लेकिन 18वीं शताब्दी के अंत तक गद्य में खड़ी बोली की कोई एक निश्चित परंपरा नहीं थी। बस कहीं–कहीं कोई छोटी–मोटी रचनाएं ही देखने को मिलती हैं। उस समय के अधिकांश लेखक मुसलमान थे। लेकिन उन्होंने हमेशा अपनी भाषा में हिंदीपन का ही प्रयोग किया है। इसका उदाहरण उस समय की लिखी पुस्तकों सबरस, नौरस, दीपक–पतंग, नेह–दर्पन एवं चितलगन द्वारा ज्ञात होता है।

खड़ी बोली की उत्पत्ति सामन्यतः दिल्ली के आसपास के क्षेत्रों में हिंदू और मुसलमानों के आपसी मेलजोल से बाजार भाषा के रूप में भी मानी जाती है। लेकिन गुरुमुखी लिपि में लिखित जो साहित्य प्रकाश में आया है, उससे यह स्पष्ट होता है कि प्रथम मुसलमानों का संपर्क हरियाणा और पंजाब के लोगों से हुआ। "इसलिए खड़ी बोली का एक 'ब्रजी' और 'पंजाबी' प्रभावित रूप पहले ही अस्तित्व में आ चुका था। गुरुमुखी लिपि में लिखित होने के कारण इसे या तो पंजाबी भाषा का साहित्य समझ लिया गया या इस पर ध्यान ही नहीं दिया गया।"[4] इस तरह कुछ कृतियों का अस्तित्व भले ही निराधार हो लेकिन गुरुमुखी गद्य की एक लंबी परंपरा से यह निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना से पूर्व भी खड़ी बोली गद्य अपने विकास क्रम में परिमार्जित हो रहा था तथा उसकी अपनी एक अलग संरचना विकसित हो रही थी।

19वीं शताब्दी में गद्य प्रचार के कारण :– 18वीं शताब्दी के पूर्व तक अंग्रेजी शासन जीते गए प्रांतों को संगठित करने तथा उनमें सुचारू रूप से शासन करने के बारे में ही सोचता रहा। इस कारण उसके संपर्क

तथा उसकी सभ्यता का प्रभाव हमारे जीवन पर लक्षित नहीं हो सका। इसे अगर ऐसे कहा जाए कि "उन्होंने इस समय तक हमारे रीति–रिवाज, धर्म तथा परंपराओं आदि में हस्तक्षेप नहीं किया। लेकिन सन 1813 ईस्वी में जब कंपनी का नया चार्टर बदला तो चार्ल्स ग्रांट और विलबरफोर्स आदि के प्रयत्नों के फलस्वरुप भारत में समाज सुधार शिक्षा, ईसाई धर्म प्रचार को भी प्रोत्साहन मिला।"[5]

हमारी सभ्यता संस्कृति तथा हमारे जन जीवन पर मिशनरियों द्वारा स्थापित आरंभिक स्कूलों, उनके द्वारा छापी गई पुस्तकों आदि के कारण एक प्रतिक्रिया हुई, जो स्वभाविक थी। इन सबके परिणाम स्वरूप जो एक नई प्रतिक्रिया हुई थी, उसके लिए तथा अन्य सामाजिक विषयों के लिए पद्यमयी भाषा उचित नहीं प्रतीत हुई तथा इन सब के लिए गद्य की आवश्यकता महसूस की जाने लगी। 19वीं शताब्दी में खड़ी बोली जनता की भाषा के रूप में स्थापित हो चुकी थी, जिस कारण उस समय में लिखा साहित्य आम आदमी के भी हिस्से में आने लगा। इसमें सबसे महत्वपूर्ण भूमिका मुद्रण यंत्रों ने निभाई, जिनकी वजह से पुस्तकें सस्ते मूल्य पर उपलब्ध हो सकीं।

मुगल साम्राज्य के पतन के बाद दिल्ली आगरा तथा ब्रज आदि पश्चिमी क्षेत्रों से उठकर व्यापारिक तथा सांस्कृतिक केंद्र ब्रिटिश हुकूमत के समय कोलकाता पहुंच गए। वहां के व्यापारी, अधिकांश अंग्रेज अधिकारी, मुसलमान तथा हिंदूवादी बोलचाल की भाषा के रूप में खड़ी बोली का इस्तेमाल करने लगे थे। कोलकाता उस दौर में खड़ी बोली गद्य के विकास के लिए महत्वपूर्ण केंद्र रहा। "19वीं शताब्दी के आरंभ में खड़ी बोली को गद्य भाषा के रूप में स्वीकार करने का एक ठोस आधार यह भी था कि सन 1803 ईस्वी के पूर्व इसमें इतनी गद्य रचना हो चुकी थी कि जिसके बल पर यह कहा जा सके कि खड़ी बोली में विविध भावों की अभिव्यंजना सरलता एवं सफलतापूर्वक संभव है।"[6]

खड़ी बोली गद्य के विकास में अंग्रेजों के योगदान बहुत अधिक है। यह सच है कि अंग्रेजी हुकूमत अंग्रेजी भाषा का ही आधिकारिक तौर पर प्रसार करना चाहती थी लेकिन उसके शासित अर्थात आमजन इससे बिल्कुल अनभिज्ञ थे। संस्कृत का ज्ञान उच्च वर्ग तक ही सीमित था। अरबी– फारसी का प्रयोग मुगल काल में कचहरी में होता था। नया शासक वर्ग भी इससे परिचित था, लेकिन आम जनता में इसका अभी अधिक प्रचलन न था। कंपनी भाषा के इस मसले को सुलझा नहीं पा रही थी तथा भाषा के मामले को लेकर उनमें दो पक्ष बन गए, एक वह जो अंग्रेजी के प्रचार–प्रसार को समर्थन दे रहा था तो दूसरी ओर वह जो यहां की भाषाओं के उत्थान के लिए प्रयासरत था। "सन 1816 ईस्वी में अंग्रेजी के समर्थक डेविड हेयर ने राजा राममोहन राय की सहायता से कोलकाता में एक अंग्रेजी स्कूल की स्थापना की। 1830 ईस्वी में एलेग्जेंडर ने कोलकाता में ही एक कॉलेज के नीव डाली। 1832 ईस्वी के आसपास कंपनी के अंग्रेज कर्मचारियों ने खुलकर अंग्रेजी का प्रचार करना प्रारंभ किया।"[7] 1834 ईस्वी में लार्ड मैकाले ने भारत आकर अंग्रेजी प्रसार को एक नई दिशा दी। लॉर्ड हार्डिंग ने भी अंग्रेजी प्रचार–प्रसार के लिए खूब कार्य किया।

ईस्ट इंडिया कंपनी की भाषा नीति :– फोर्ट विलियम कॉलेज का हिंदी खड़ी बोली के विकास में बहुत बड़ा योगदान है। इसकी स्थापना सन 1800 ईस्वी में लार्ड वेलेजली ने की। लार्ड वेलेजली ने जिस समय इस कॉलेज की स्थापना की उस समय कंपनी केवल एक व्यापारिक संस्था मात्र नहीं थी बल्कि वह यहां की सरकार भी थी। कंपनी के अधिकारियों–कर्मचारियों के लिए शिक्षा तथा लोक भाषा के ज्ञान की भी आवश्यकता थी। इस कॉलेज की स्थापना का प्रारंभिक उद्देश्य राजनीतिक ही था। कंपनी ने जान गिलक्रिस्ट की अध्यक्षता में ओरिएंटल सेमिनरी की स्थापना की, जिसका उद्देश्य कंपनी के अधिकारियों–कर्मचारियों की उचित शिक्षा–दीक्षा से था। बाद में यह संस्था ही फोर्ट विलियम कॉलेज के रूप में बदल गई। गिलक्रिस्ट को हिंदुस्तानी विभाग का अध्यक्ष नियुक्त किया गया।

ब्रह्म समाज तथा आर्य समाज ने भी हिंदी गद्य के प्रचार प्रसार में बड़ा योगदान देते हुए प्रभावशाली ढंग से हिंदी के गद्य के लिए आंदोलन चलाया। स्वामी दयानंद सरस्वती ने हिंदी गद्य में 'सत्यार्थ प्रकाश' की रचना की। श्रद्धा राम फुलौरी ने सन 1863 के आसपास अपने लेखों तथा व्याख्यानों के माध्यम से लोगों को प्रभावित किया तथा 'सप्तामृत प्रवाह' नामक ग्रंथ की रचना की। उस समय हिंदी के विकास में

पत्र–पत्रिकाओं आदि का योगदान भी बहुत महत्वपूर्ण है। इनके माध्यम से ही आंदोलन आर्थिक, सांस्कृतिक तथा सुधारवादी चेतना आम लोगों के पास तक पहुंची। मुद्रण यंत्रों के कारण प्रकाशन कार्य के सरल हो जाने से अनेक सामाजिक कार्यकर्ताओं ने पत्र–पत्रिकाओं का प्रकाशन किया। पंडित युगल किशोर ने सन 1826 ईसवी में कोलकाता से हिंदी का सबसे पहला पत्र 'उदंत मार्तंड' प्रकाशित किया था। हिंदी प्रांत से सन 1845 ईस्वी में बनारस से गोविंद रघुनाथ ठनते के संपादन में राजा शिवप्रसाद का 'बनारस अखबार' प्रकाशित हुआ। इसके साथ ही तत्कालीन समय में हिंदी गद्य के प्रचार–प्रसार को बल देने वाले ऐसे अन्य कई समाचार पत्र–पत्रिकाएं प्रकाशित होते रहे।

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने हिंदी क्षेत्र में हिंदी प्रचार को सामूहिक क्रांति के रूप में दिशा दी। उन्होंने हरिश्चंद्र मैगजीन, कविवचन सुधा, बाला बोधिनी पत्रों के प्रकाशन के साथ ही स्वयं की मौलिक रचनाओं तथा दूसरी भाषाओं – अंग्रेजी, बांग्ला, संस्कृत, आदि के नाटक, उपन्यास, निबंध आदि अनुदित करवाकर प्रकाशित करवाए। भारतेंदु के आने से हिंदी गद्य को काफी बल तथा इसके प्रयोग को बढ़ावा मिला। भारतेंदु की भाषा उस समय परिष्कृत गद्य का सबसे शुद्ध उदाहरण है। "इसी समय प्रताप नारायण मिश्र ने कानपुर से सन 1883 ईस्वी में 'ब्राह्मण' निकाला। लाला श्रीनिवास दास ने दिल्ली से संवत 1931 में 'सदादर्श' साप्ताहिक पत्र निकाला। तोताराम ने (1933) 'भारतबंधु' कन्हैया लाल ने (संवत 1934) 'मित्रविलास' देवकी नंदन तिवारी ने (संवत 1940) 'प्रयाग समाचार' राधाचरण गोस्वामी ने (संवत 1941) 'भारतेंदु' चौधरी प्रेमघन ने (संवत 1938) 'आनंद कादंबिनी' और अंबिकादत्त व्यास ने (संवत 1941) 'पीयूष प्रवाह' तथा बालकृष्ण भट्ट ने 'हिंदी प्रदीप' निकाला।"[8]

इस समय में अनेक बांग्ला साहित्य के उपन्यासों का अनुवाद हिंदी के बड़े साहित्यकारों द्वारा हुआ। किशोरी लाल गोस्वामी ने मौलिक एवं अनुदित उपन्यासों के अनुसार अनेक उपन्यास लिखे। देवकीनंदन खत्री ने तिलिस्मी उपन्यासों की परंपरा की शुरुआत की। इस प्रकार उपन्यास साहित्य ने भी हिंदी गद्य को एक बड़ी मजबूती प्रदान की। निबंध साहित्य का जन्म भी पत्र–पत्रिकाओं के प्रचलन के साथ प्रारंभ हुआ। यथार्थवादी जीवन पर चर्चा तथा बौद्धिक तर्क लेखों से निबंधों की शुरुआत हुई। कुछ समय गंभीर निबंधों के लिए बालकृष्ण भट्ट का योगदान उल्लेखनीय है। उन्होंने विवेचनात्मक शैली में विचार प्रधान अनेक लेख लिखे।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि 19वीं सदी के अंत– तक खड़ी बोली गद्य कहानी, उपन्यास, निबंध, नाटक आदि के रूप में पूरी तरह स्थापित हो चुका था।

सन्दर्भ–सूची :–

1. शुक्ल, रामचंद्र – हिंदी साहित्य का इतिहास, कमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. सं.–276।
2. मिश्र, शितिकंठ – खड़ी बोली का आन्दोलन, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी संवत– 2013, पृ. सं.–58।
3. नाहटा, अगरचंद – हिंदी भाषा की उत्त्पति, स्थान व् समय, ब्रजभारती प्रकाशन, संवत –2004, पृ. सं.–7।
4. तिवारी, डॉ. रामचंद्र – हिंदी का गद्य साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी– 2008, पृ. सं–14।
5. मिश्र, शितिकंठ – खड़ी बोली का आन्दोलन, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी संवत– 2013, पृ. सं.–66।
6. वही, पृ. सं.–67।
7. तिवारी, डॉ. रामचंद्र – हिंदी का गद्य साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी– 2008, पृ. सं.–18।
8. वही, पृ. सं.–98।

21वीं सदी की हिन्दी बाल कविताओं में वैज्ञानिक एवं तकनीकी मूल्यबोध

रेखा*

ज्ञान शब्द के अनेक अर्थ होते हैं– कौशल, निपुणता, जानकारी, विशेषज्ञाता, अनुशासन, तार्किकता, विवेक, बोध आदि। ज्ञान शब्द में 'वि' उपसर्ग जोड़ने से विज्ञान और विज्ञान शब्द में 'इक' प्रत्यय जोड़ने से वैज्ञानिक शब्द का निर्माण होता है। विज्ञान शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के सिटिया (SCIENTIA) से हुई है, जिसका अर्थ है ज्ञान या जानना। इस प्रकार विज्ञान का अर्थ ऐसे ज्ञान से है, जो यथार्थ हो, जिसका परीक्षण और प्रयोग किया जा सके। इसके सिद्धान्त और नियम सार्वदेशिक और सार्वकालिक होते हैं।

विज्ञान वह व्यवस्थित ज्ञान या विद्या है जो किसी विचार, अध्ययन, अवलोकन और प्रयोग से मिलती है ये किसी अध्ययन के विषय की प्रकृति या सिद्धान्तों को जानने के लिए किये जाते हैं। इस प्रकार भौतिक जगत में जो कुछ घटित हो रहा है उसका क्रमबद्ध या व्यवस्थित ज्ञान ही विज्ञान कहलाता है। सरल शब्दों में किसी भी वस्तु के बारे में जानकारी ग्रहण कर व्यवस्थित तरीके से अवलोकन और विश्लेषण करना विज्ञान है। विज्ञान से जो कुछ जानकारी, निष्कर्ष तथा ज्ञान प्रस्तुत करता है वह प्रत्यक्ष प्रमाणों और परीक्षणों पर आधारित है। विज्ञान भौतिक जगत का ज्ञान अनुमान, कल्पना, दर्शन से नहीं करता, अनुभवजन्यता, सार्वभौमिकता, तार्किकता संशोधन, अवलोकन, प्रमाणिकता, वस्तुनिष्ठता, सामान्यीकरण इत्यादि के माध्यम से करता है– ''जो क्रमबद्ध काम करता है, वह वैज्ञानिक कहलाता है/क्रम से बंधा ज्ञान जो आता/वही ज्ञान विज्ञान कहलाता है।''[1]

विज्ञान का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है। सामान्यतः विज्ञान दो प्रकार की वस्तुओं में दिखाई देता है पहला– सजीव वस्तुऐं, जिसमें पेड़ पौधे, जीव–जन्तु आते हैं। इसे जीव विज्ञान भी कहा जाता है। दूसरा– निर्जीव वस्तुऐं, जिनमें पहाड़, जल, हवा, ऊर्जा के विभिन्न स्वरूप भूगर्भ और खगोल इत्यादि आते हैं, इसे भौतिक विज्ञान कहते हैं। ''जीवन जिसमें होता बच्चों/वे सजीव कहलाते हैं/और नहीं हो, जीवन जिसमें/निर्जीवों में, आते हैं।''[2] स्टीजन हॉकिन्स के अनुसार आधुनिक विज्ञान के जनक गैलिलियों माने जाते हैं। तकनीकी और विज्ञान एक दूसरे के पूरक हैं अर्थात् अन्योन्याश्रित हैं। विज्ञान से तकनीकी समृद्ध होती है और तकनीकी से विज्ञान। तकनीकी शब्द का उद्भव ग्रीक भाषा के 'टेकनिकोस' ;ज्मबीदपावेद्ध शब्द से हुआ है जिसका अर्थ बढ़ई या निर्माता से है, यह शब्द संस्कृत शब्द 'तक्ष' का सजातीय भी है, जिसका अभिप्राय बुनने तथा निर्माण करने से होता है। सामान्यतः तकनीकी शब्द का अर्थ– कुशलता, कुछ करने या बनाने की प्रणाली। तकनीकी में व्यवहारिक उपयोगिता होना नितांत आवश्यक है। व्यवहारिक उपयोगिता से अभिप्राय प्रयोगात्मक कार्य करने के तरीके से है, जिसमें वैज्ञानिक ज्ञान या सिद्धान्तों का अनुप्रयोग किया जाता है जिससे कार्यप्रणाली में सरलता व सुगमता आती है।

शिक्षा के क्षेत्र में व्यवस्थित रूप से तकनीकी का प्रयोग सर्वप्रथम शैक्षिक खिलौने के रूप में किया गया था, जो अमेरिका के ओहियो विश्वविद्यालय में 'सिडनी प्रेसी' नामक व्यक्ति की यांत्रिक शिक्षण मशीन से माना जाता है। 1930 से 1940 के मध्य लम्सडैन ग्लेजर आदि ने विशिष्ट प्रकार की पुस्तकें, कार्ड व बोर्डों का प्रयोग सीखने में बोधगम्यता व सुग्राह्यता लाने के लिए किया। शिक्षा में तकनीकी के क्षेत्र में हुए विकास व प्रगति के फलस्वरूप नवीन संचार साधनों, उपकरणों, प्रविधियों एवं मशीनों का प्रयोग हो रहा है। इसके अंतर्गत सभी प्रकार के दृश्य–श्रव्य सामग्री के उपकरण (टेलीविजन, कंप्यूटर, प्रोजेक्टर, शिक्षा मशीन, मोबाइल, वैब, रेडियो, फिल्म इत्यादि) आते हैं, जो शिक्षण कार्य के संपादन में सहायक तथा उपयोगी है– ''वैज्ञानिक युग आया है/आओ सीखें कंप्यूटर/कोई भी है काम न ऐसा/जिसे न करता कंप्यूटर।''[3]

***शोधार्थी, हिन्दी विभाग, एम. बी. रा. स्ना. महाविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड।**

समाज और राष्ट्र के उत्थान के लिए यह आवश्यक है कि समाज में दार्शनिक, वैज्ञानिक, चिन्तन, प्रबुद्ध वर्ग और आम जनता के बीच विचारों के आदान–प्रदान का माध्यम हो। सामाजिक चेतना के परिप्रेक्ष्य में वैज्ञानिकों को उत्तरदायित्त्व अधिक बढ़ जाता है। उनसे अपेक्षा की जाती है कि वे ज्ञान अर्जित कर आम व्यक्ति तक पहुँचाएँ, जिससे उन्हें अंधविश्वासों और रूढ़िगत मान्यताओं से मुक्ति मिल सके। विज्ञान के क्षेत्र में ज्ञान के साथ संचार भी महत्त्वपूर्ण है। जिसकी भाषा सरल व सहज होनी आवश्यक है। महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने कहा है– ''ज्ञान, विज्ञान, धर्म एवं राजनीति की भाषा सदैव लोकभाषा ही होनी चाहिए।''[4] इसी विचारधारा को लेकर 'भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र (विज्ञान और तकनीकी का केन्द्र) द्वारा 1968 में हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद् की स्थापना की गई। इस परिषद् का मुख्य उद्देश्य हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य की रचनाओं का प्रसार करना था।

विज्ञान वार्ताएँ, अनुवाद कार्य, विज्ञान संगोष्टियाँ, विज्ञान संबंधी लेखन, प्रतियोगिताओं के साथ–साथ कृषि विज्ञान खगोल, भौतिकी, शरीर विज्ञान, पदार्थ विज्ञान, ध्रुव रिएक्टर, रेडियो, रसायन, सुरक्षा, भावी दिशाएँ, लेज़र जैसी उपयोगी तथा आधुनिक विषयों की जानकारी लगातार साहित्य के माध्यम से आमजन तक पहुँचा रही है, जिसका उद्देश्य समाज का तार्किक और प्रमाणिक ज्ञान का विस्तार करना है।

सूचना शब्द का अर्थ जानकारी देने से है अर्थात् आवश्यक ज्ञान से है, जो मानव समाज के विकास के मार्ग खोलता है। सूचना शब्द अंग्रेजी के इनफोर्मेशन ;प्दवितउंजपवदद्ध शब्द से बना है जिसका अर्थ किसी को कोई जरूरी बात बनाना, कहना, समाचार सुनाना आदि सूचना कहलाती है। सूचना अनेक प्रकार की (अंतर्राष्ट्रीय सूचना, राष्ट्रीय सूचना, कॉर्पोरेट सूचना, डिपार्टमेण्टल सूचना, व्यक्तिगत सूचना) होती है। वर्तमान समय में हिन्दी बाल साहित्य की एक विधा, सूचनात्मक साहित्य भी है। इसमें रचनाकार कविता द्वारा बच्चों को अनेक प्रकार की सूचनाओं से अवगत कराता है। ''राजकीय पशु लक्ष्यदीप की, मैं हूँ तितली रानी/सभी राज्यपशुओं से मेरी, बिलकुल अलग कहानी/मैं पानी के भीतर अपना, सीमा क्षेत्र बनाती/इसमें यदि कोई आ जाए, लड़कर उसे भगाती।''[5] इस कविता के माध्यम से कवि बच्चों को 'तितली मछली' का बोध करा रहा है। तितली को सभी बच्चों ने देखा होता है, परन्तु तितली मछली के विषय में बहुत कम जानते हैं। किसी भी विषय से संबंधित ज्ञान को उसकी उत्पत्ति एवं कार्यों के आधार पर तथ्यात्मक ढंग से प्रस्तुत करना सूचनात्मक ज्ञान कहलाता है। सूचना सौरमंडल, जीवजंतु भौगोलिक स्थितियों से लेकर किसी अविष्कार आदि से संबंधित हो सकती है– ''पानी और कोयले से हम, बिजली खूब बनाते/और रोशनी करके घर को, चम–चम–चम चमकाते/डीजल या पेट्रोल डाल हम वाहन खूब चलाते/कारों से लेकर बाइक तक सड़कों पर दौड़ाते।''[6] प्रस्तुत कविता में कवि ऊर्जा के स्रोतों की सूचना बच्चों को दे रहा है, हम जो बिजली प्रयोग में लाते हैं वह पानी, कोयले, जैव ईधन व प्राकृतिक तत्त्वों (जत्रोफा फल, इथेनॉल, मेथनॉल, बायोगैस) से बनती है– ''सूरज और हवा से दोनों, बिजली खूब बनाते/कारों से लेकर एसी तक, सबको खूब चलाते।''[7] सूर्य ऊर्जा का सबसे बड़ा प्राकृतिक स्रोत है, जो हमें मुफ्त में मिला है और यह प्रदूषण रहित होता है। विज्ञान की सबसे उत्तम और मानव जीवन की सबसे प्राथमिक आवश्यकता बिजली है। सूर्य के बाद बिजली ही ऊर्जा का शक्तिशाली स्त्रोत है, जिसका प्रयोग अनेक कार्यों हेतु किया जाता है। बिजली भाप या पानी से निर्मित की जाती है। इसके बिना आधुनिक जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती है। हम बिजली के चमत्कारों को अपने चारों ओर आसानी से देख सकते हैं। घर में रोशनी, अनेक प्रकार की मशीनें,पंखे, माइक्रोवेब इत्यादि इसी से चलते हैं, जिससे मानव जीवन आरामदायक बना है। सर्दियों में गर्म और गर्म में ठंडा हमें बिजली ही रखती है– ''बिजली रानी, बिजली रानी/अपने जन्म की कहो कहानी/तुम्हें बनाता है पानी/ऐसा कहती मेरी नानी।''[8]

आदिकाल से ही बाल साहित्य का आधार कल्पना रहा है परन्तु वर्तमान समय में लिखित सूचनात्मक साहित्य का आधार यथार्थ है। साहित्यकार पुरानी परिपाटी के अतिरिक्त यथार्थ से प्रेरित बाल उपयोगी कविताएँ भी लिख रहे हैं, जिससे बच्चों को मनोरंजन के साथ नई–नई ज्ञान की बातें सीखने को मिल रही हैं– ''जब भी सड़क पार करते हैं/ट्रैफिक नियम मानने होंगे/लाल रंग रुकने को कहता/पीला कहता हो तैयार/हरा रंग बढ़ने को कहता/नियमों पर यदि अमल होंगे/दुर्घटनाएँ घट जाएँगी।''[9] इस

कविता के माध्यम से कवयित्री बच्चों को यातायात के नियमों का बोध करा ही हैं, जिससे बच्चों को बाल्यावस्था से ही सड़क के नियमों का बोध हो पाएगा। सूचनात्मक कविताएँ मानसिक विकास के साथ बच्चों का भावात्मक विकास भी करती हैं– ''तेज दाँत नखवाला न प्राणी/घर में जाता पाला/स्वामिभक्त, लेकिन मनुष्य से/श्वान बड़ा होता है/मर–मिट जाता पर घर का विश्वास नहीं खोता है।''[10] इस कविता के माध्यम से कवि ने बच्चों को जीवों और मनुष्य के स्वभाव की सूचना (जानकारी) देने का प्रयास किया है। सूचना एवं तकनीकी के दौर में आज प्रमाणिक ज्ञान को ही स्वीकार किया जाता है, अतः मनोरंजक हास्य युक्त यथार्थपरक सूचनात्मक कविताएँ बच्चों की जिज्ञासाओं को शांत करता है– ''बच्चों के विज्ञान भवन ने, सभी जनों को खूब लुभाया/उत्तल, अवतल दर्पण, रखकर, हँसने वाला कक्ष बनाया/भैया ने जब हवा भरी तो, गेंद सरीखे फूले गाल/और हमारी नाटी मम्मी, बनी देखने में फुटबॉल।''[11] प्रस्तुत बाल कविता के माध्यम से कवि बच्चों को दर्पणों की सामान्य जानकारी देने का प्रयास कर रहा है जिससे बच्चों को दर्पणों की जानकारी (बोध) प्राप्त होगी, कि जो हम दर्पण देखते हैं वह समतल दर्पण होता है, गाड़ियों में उत्तल दर्पण लगे होते हैं और दाँत वाले डॉक्टरों के पास अवतल दर्पण होते हैं।

विज्ञान की उन्नति आधुनिकता को प्रदर्शित करती है आधुनिकता जो प्राचीन से नवीनता का मार्ग है। विज्ञान के सन्दर्भ में आधुनिकता का अर्थ– मशीन युग अथवा मशीनी क्रान्ति से है। मशीनयुग का हमारे जीवन के प्रत्येक पक्ष पर प्रभाव पड़ा है। वैज्ञानिक उपकरणों द्वारा आजकल हम कोई भी काम जल्दी और आसानी से कर सकते हैं। कपड़े, बर्तन धोने, खाना बनाने, पोछा मारने इत्यादि जिससे कुछ क्षणों में कम मेहनत के साथ कार्य हो जाते हैं जो विज्ञान की ही देन हैं– ''धीरे–धीरे कर मानव ने/कठिनाई से छुट्टी पाई/विज्ञान ने उन्नति की राह पकड़ी और/सुविधाओं से होड़ लगाई/''[12] प्रस्तुत कविता में कवयित्री वैज्ञानिक अविष्कारों से उत्पन्न नवीन साधनों का ज्ञान बच्चों करा रही हैं, जिससे बच्चों को उनके उपयोग से होने वाली सुविधाओं का बोध हो रहा है। वर्तमान समय में विज्ञान की प्रगति दिनोंदिन बढ़ती जा रही है, कृषि, चिकित्सा के क्षेत्र में भी विज्ञान महती भूमिका निभा रहा है। बीमारियों के लिए आज विभिन्न प्रकार के उपचारों और कृषि के लिए अनेक अत्याधुनिक उपकरणों व बीजों का प्रयोग होने लगा है, जिससे उत्पादन अधिक मात्रा में हो रहा है। हरित क्रान्ति (1965–1968) इसी का उदाहरण है इस कृषि में उच्च उपज देने वाले बीजों का प्रयोग कर सीमित पैमाने पर भी उच्च मात्रा में फसलें उगाई जाती हैं। भारत में 'हरित क्रान्ति के जन्मदाता 'एम०एस० स्वामीनाथन' माने जाते हैं और विश्व में नॉर्मन बोरलॉग। ''खेतों में हल, चलने से/वायु संरचरण होता है/इससे माइकोब्स बढ़ते हैं/सब आवश्यक होता है/अलग–अलग, विधियों से बच्चों/पौध लगाई जाती है/मेन्योर और फर्टिलाइजर मिलाये जाते हैं/खरपतवारों को नष्ट कर/भिन्न रीतियों से फसलें उगाई जाती हैं/बीजों का अच्छा भण्डारण उनकी रक्षा करता है/उन्नत नई किस्म अपनाओ/ज्यादा अन्न उपजता है।''[13] प्रस्तुत कविता में कवयित्री बच्चों को वैज्ञानिक कृषि का बोध करा रही है, जिससे बच्चे विभिन्न प्रकार की फसलों, कीटनाशकों, उर्वरकों और कृषि संबंधी उपकरणों से अवगत हो सकेंगे। विज्ञान के विकास के साथ अनेक दुष्परिणामों को भी जन्म दिया है इसलिए– ''सावधान रहकर कीटनाशक/उर्वरक का प्रयोग तुम करो/हो पर्यावरण हितैषी प्रविधि जो/उसे तुम अंगीकार करो।''[14] प्रस्तुत कविता में कवि वैज्ञानिक कृषि के कुप्रभावों से बचने की सलाह दे रहा है, ताकि बच्चे कविता को पढ़कर वैज्ञानिक कृषि के दुष्प्रभावों से अवगत हो सकें।

विज्ञान दर्शन का नहीं बल्कि प्रदर्शन अर्थात् प्रयोग का विषय है। प्रयोग जिज्ञासाओं को शान्त करने की प्रमाणिक प्रस्तुति है। वर्तमान समय में रोबोटिक्स, टेक्नोलॉजी, आर्टिफीसियल इंटेलिजेंस आदि के क्षेत्र में तेजी से प्रयोग हो रहे हैं, जिससे मनुष्य अतिआधुनिक होता जा रहा है। मनुष्य के सारे कार्य रोबोट कर रहे हैं– ''मित्र हमारा है रोबोट/जिसका अपने हाथ रिमोट/हाथ पैर सिर मानव जैसे/मानव निर्मित अजब मशीन/बिना थके अच्छे ढंग से यह/कठिन कार्य में रहता लीन/कार इलेक्ट्रॉनिक, दवा की भी/हर किसी फैक्ट्री में यह करता काम।''[15] प्रस्तुत कविता के माध्यम से रोबोट का महत्त्व बताया जा रहा है कि रोबोट क्या–क्या कर सकता है, और यह हमारे लिये कितना उपयोगी सिद्ध होता है। इसी प्रकार की कविता परशुराम शुक्ल जी ने भी लिखी है– ''मेरा रोबो बड़ा निराला, नहीं किसी से डरता/घर के सारे काम हमारे,

बिना थके वह करता/बड़े सबेरे साफ–सफाई करके, सूप बनाता/कपड़े धोकर फिर फैलाता, सब्जी–भाजी लाता/लेकिन बस्ता लेकर अपना/पढ़ने कभी न जाता।''[16] प्रस्तुत कविता में कवि ने बच्चों को रोबोट के लाभ का ज्ञान कराया है। रोबोट जो कार्य करता है उसे हम मनुष्यों ने ही बनाया है उसे जितने कार्य करने की कमाण्ड दी जाती है वह उतने ही कार्य करता है और वह पढ़ता–लिखता नहीं है रोबोट निर्जीव वस्तु है, मारने–पीटने–गिरने से उसे दर्द की अनुभूति नहीं होती है।

प्राचीन समय में मनुष्य कुछ मीलों की दूरी तय करने में अत्यधिक समय लगता था परन्तु वर्तमान समय में विज्ञान की प्रगति के कारण मनुष्य पूरे विश्व के चक्कर न्यूनतम समय (लगभग पचास (50) घण्टे) में लगा सकता है। आज यातायात के अनेक साधन (बस, ट्रेन, हवाईजहाज, मोटरसाइकिल, स्कूटर, ऑटो, रिक्शा, जलीय जहाज, इलेक्ट्रॉनिक वाहन इत्यादि) उपलब्ध है– ''अब उन्नति के कारण मानव/वायुयान में उड़ता है/रेल, बसें, ट्रामे धरती पर/जल में यान तैराता है।''[17] प्रस्तुत कविता के माध्यम से कवयित्री बच्चों को यातायात के वाहनों का बोध करा रही हैं। यातायात के साधन हम सभी के लिए उपयोगी होते हैं, इनके द्वारा हम आसानी से कहीं भी जा सकते हैं। यातायात के साधनों ने मानव को सुलभता प्रदान की है। वहीं कुछ हानियाँ भी दी हैं। इनके द्वारा प्रतिदिन अनेकों लोग दुर्घटनाओं से मर रहे हैं, साथ ही मानव जीवन को आलसी बना दिया है जिसके कारण लोग थोड़ी दूर जाने के लिए परिवहन का प्रयोग करते हैं जिससे मनुष्य ने पैदल चलना छोड़ दिया है। यातायात के अत्यधिक प्रयोग से पर्यावरण प्रदूषित भी हो रहा है। इसलिए– ''दुर्घटना से बचना है तो/गड्ढे भरकर तुरंत–तुरंत/दोनों किनारे पेड़ लगाओ/छाया पाओ सुखद सुखद/कचड़े दान में कचड़ा फेंको/स्वच्छ रखो तुम सड़क सड़क।''[18] प्रस्तुत बाल कविता में कवयित्री बच्चों को यातायात के नियमों व स्वच्छ पर्यावरण अपनाने का संदेश दे रही है।

प्राचीन काल में मानव जंगलों में रहता था उसके पास रहने के लिए घर, पहनने के लिए कपड़े, खाने के लिए कुछ भी उपलब्ध नहीं होता था। धीरे–धीरे उसने आग जलाना सीखा, पहिये का अविष्कार किया और जानवरों को मारने हेतु पत्थरों के हथियार बनाने लगा– ''जब मानव धरती पर आया/उसको सौ कठिनाई थी/रहने को आवास नहीं था/पशुओं को खा भूख मिटाता/कभी खुद उनका भोजन बन जाता था।''[19] इस प्रकार अनेक कठिनाइयों को पार कर, आविष्कार करता हुआ मानव विकास करता चला गया। आज वैज्ञानिक अविष्कारों ने देश के लगभग सभी क्षेत्रों में विकास किया है। चाहे वह घर का छोटा कार्य हो या बड़े कॉर्पोरेट प्रोजेक्ट्स। ''बुद्धि और कौशल से उसने/ज्ञान विवेक बढ़ाया/और नया विज्ञान रचा कर/चमत्कार दिखलया/ईश्वर से डरने वाला अब/बना तर्क का ज्ञाता।''[20] प्रस्तुत कविता के माध्यम से रचानाकार बच्चों को विज्ञान के महत्त्व का बोध करा रहा है। विज्ञान के द्वारा आज मानव ने उन्नति कर नये युग का निर्माण कर लिया है, जिसे हम आधुनिकतावाद कहते हैं। इसमें ज्ञान को तर्क की कसौटी पर परखा जाता है– ''आओ पंख पसार गगन में/नई उड़ान भरें/चन्दा सूरज से मिलकर/कुछ बातें नई करें/ज्ञान विज्ञान का आया युग/कुछ अच्छा नव निर्माण करें/''[21] इंटरनेट जिसने दुनियाभर के कम्प्यूटरों को एक जाल में बाँधा है, जिसे ग्लोबल वाइड एरिया नेटवर्क भी कहा जाता है। यह नेटवर्क से कनेक्टेड कम्प्यूटरों के बीच कम्युनिकेशन की सुविधा प्रदान करता है, जिससे मीलों दूर बैठे लोगों के बीच वार्तालाप हो जाती है। यह कनेक्टिविटी, संचार और सूचना को प्रसारित करने हेतु बनाया गया है। इंटरनेट हमारे दैनिक जीवन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इंटरनेट आने के कारण टेलीफोन, रेडियो, टेलीविजन, चिट्ठी पत्र और समाचार पत्रादि अधिकांश पारंपरिक कम्युनिकेशन मीडिया को नई सेवाओं जैसे– इंटरनेट टेलीफोन, ईमेल सेवा, इंटरनेट टेलीविजन, डिजिटल समाचार पत्र, ऑनलाइन वीडियो स्ट्रीमिंग वेबसाइड और ऑनलाइन संगीत इत्यादि में परिवर्तित हो गया है। किताबें, समाचार पत्र और अन्य प्रिंट प्रकाशन वेबसाइट टेक्नोलॉजी के अनुकूल हो रहे हैं। ऑनलाइन खरीददारी को भी इंटरनेट के माध्यम से नया सा आकार मिला है, जिसमें रिटेल से लेकर बिजनेस, बिजनेस से लेकर थोक कारोबार कर रहे हैं। 'इंटरनेट ज्ञान का भंडार/नियत समय पर नियत काम लो/केवल नाटक, गेम, मनोरंजन नहीं/विज्ञान भी उसमें देखा करो/खेल हो या त्योहार/ये देता खबरें बार–बार/याद रखो काम की बातें/ये है मेरी बात का सार।''[22] प्रस्तुत कविता के माध्यम से रचनाकार इंटरनेट का महत्त्व बताकर उसका सद्प्रयोग करने की सलाह दे रहा है क्योंकि

आजकल बच्चे इसका सद्प्रयोग कम दुष्प्रयोग अधिक कर रहे हैं। बच्चे माता–पिता से पढ़ने का बहाना बनाकर मोबाइल लेते हैं, परंतु पढ़ाई–लिखाई न कर गेम अधिक खेलते हैं– ''मोबाइल बहुत काम की चीज/इसका सब सद्प्रयोग करें/पढ़ाई में ध्यान लगाएँ/इसका न दुरुपयोग करें/सिग्नल न आएँ तो/किताबों से ही दोस्ती बनाए।''[23] प्रस्तुत कविता में रचनाकार बच्चों को मोबाइल फोन के सद्प्रयोग की सलाह दे रहा है, साथ ही वह बच्चों को संदेश दे रहा है कि ज्ञान का सबसे उचित स्त्रोत पुस्तकें होती हैं, इसलिए पुस्तकों से अध्ययन करें। आधुनिक युग में टेलीविजन ज्ञान विज्ञान व मनोरंजन का एक उत्तम स्त्रोत है जिसको सभी उम्र के लोग देखना पसंद करते हैं ''वैज्ञानिक वेयर्ड नाम था/जिसने टेलीविजन बनाया/घर बैठे उसने हमको/रंग–बिरंगा विश्व दिखाया/खेल–कूद बच्चों की फिल्में/ताजे समाचार पहुँचाता/सारे जग को टी०वी० भाता।''[24] प्रस्तुत कविता के माध्यम से कवि बच्चों को तार्किक जानकारी दे रहा है जिससे बच्चों को टेलीविजन के अविष्कारक का ज्ञान हो रहा है।

टेलीविजन आज संचार के सशक्त माध्यमों में से एक है। संचार शब्द की उत्पत्ति 'चर' धातु से हुई है जिसका अर्थ है चलना या एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाना। जनसंचार में दो या दो से अधिक व्यक्ति नहीं बल्कि हजारों–लाखों लोगों को शामिल किया जाता है। वर्तमान समय में टेलीविजन शिक्षा का भी सशक्त माध्यम है। इसका उदाहरण हम कोरोना काल में देख सकते हैं, जब स्कूल–कॉलेज बंद हो गये, लॉकडाउन लग गया था। तब भारत सरकार ने दूरदर्शन पर शैक्षणिक कार्यक्रम चलाये थे, जिसके माध्यम से बच्चों को घर बैठे शिक्षा उपलब्ध कराई गई थी। ''नहीं 'फाइबर' का यह खोखा/है टी०वी० वरदान अनोखा/दृश्य–श्रृव्य का यह कमाल है/अन्दर फैला विकट जाल है/रखता है पूरी दुनिया का/पल प्रतिफल का लेखा–जोखा/धरा, गगन, सागर लहराये/रंग–बिरंगे दृश्य दिखाये/मन बहलाये, खुशियाँ बाँटे/ज्ञान प्राप्ति का साधन चोखा/''[25] प्रस्तुत कविता में कवि बच्चों को टेलीविजन से ज्ञान प्राप्ति का बोध करा रहा है। टेलीविजन दृश्य–श्रृव्य माध्यम है जिसमें बच्चों की सभी ज्ञानेन्द्रियाँ सक्रिय रहती हैं। टेलीविजन सामाजिक परिवर्तन का भी माध्यम है, जिससे सामाजिक कुरीतियों और रूढ़िवादी मान्यताओं के प्रति लोगों के सोच में परिवर्तन आ रहा है। अनेक धारावाहिकों क्राइम पैट्रोल, सावधान इण्डिया, ना आना इस देश मेरी लाडो, अनुपमा इत्यादि समाज की बुराइयों को जनता के सामने प्रत्यक्ष रूप से रख रहे हैं। इसके अतिरिक्त नेशनल जियोग्राफिक चैनल, डिस्कवरी, ज्ञान दर्पण आदि के माध्यम से विज्ञान संबंधी जानकारियाँ प्रेषित की जाती हैं। टेलीविजन के माध्यम से छोटे बच्चों से लेकर युवाओं तक को अपनी प्रतिभा दिखाने का अवसर मिल रहा है चाहे वह गाना गाना हो या डांस, एक्टिंग, कुकिंग के क्षेत्र में हो, जैसे– मास्टर सेफ इंडिया, डांस इंडिया डांस, इण्डियन आइडल या सारेगामापा इत्यादि।

विज्ञान की बढ़ती उपलब्धियों ने मानव जीवन का कोई ऐसा परिवेश नहीं छोड़ा है जहाँ उसने अपने चमत्कार न दिखाये हों। विज्ञान ने इस पृथ्वी लोक से परे चन्द्रमा, मंगल आदि ग्रहों की खोज कर ली है– ''मानव ने अपना विकास कर/बड़े बैग से उड़ने वाले/रॉकेट युक्त विमान बनाये/जो इस धरती के लोगों को/चन्द्रलोक की सैर कराये।''[26] प्रस्तुत कविता के माध्यम से कवि बच्चों को वैज्ञानिक अविष्कारों का बोध करा रहा है जिससे बच्चों में कल्पना विकसित होगी। बालसाहित्य में धरती, आकाश, सूरज, चन्द्रमाँ, सितारे सभी विषयों को कलात्मकता के साथ प्रस्तुत किया जाता है। आसमान में उड़ने वाले हवाई जहाज, हेलीकॉप्टर बच्चों के लिए ही नहीं बड़ों के लिए भी कौतूहल के विषय रहे हैं। बाल्यावस्था से ही इस प्रकार का साहित्य बच्चों की मनोदशा में विज्ञान के प्रति पंख लगा देता है, जो बच्चों के लिए उज्ज्वल भविष्य का मार्ग प्रशस्त करता है। वैज्ञानिक जो आज हमारे लिए प्रेरणा स्त्रोत हैं, उनके बचपन में हुए कारनामे ही उनके अविष्कारों की भावभूमि रहे हैं जैसे– पानी उबलने से, भाप का इंजन, सेब का पेड़ से गिरना गुरुत्त्वाकर्षण, पक्षियों के उड़ने से हेलीकॉप्टर का अविष्कार। ''न्यूटन के गति और ग्राहम बेल के फोन की/एडिसन ने बल्ब खोजा वही प्रकाशराज है/बेवेज ने कम्प्यूटर खोजा तकनीकी सम्राट है/देखि रेडियो मारकोनी का मन उमंग से भरा सभी का/हरगोविंद खुराना तोफा लाये अपने कृत्रिम जीन का/विज्ञान प्रगति का है, सपना ज्ञान हो विज्ञान का/सब पढ़े सब बढ़े नाम हो भारत देश का।''[27] प्रस्तुत कविता के

माध्यम से कवि ने बच्चों को सार्वभौमिक, तार्किक ज्ञान से परिचित कराने का प्रयास किया है इसे पढ़ते हुए बच्चों को अविष्कार और अविष्कारकर्ता का बोध हो सकेगा।

विज्ञान के अविष्कार पूर्णतः प्रकृति पर निर्भर है अर्थात् विज्ञान में जो भी नव निर्माण किये हैं, वह सभी प्रकृति में विद्यमान संसाधनों से ही संभव हो पाये हैं। मशीनों को चलाने वाला ईंधन पेट्रोलियम, डीजल, गैस, कोयला, बिजली इत्यादि प्रकृति से प्राप्त होते हैं। इन सभी साधनों का अपने बुद्धि बल से प्रयोग कर मानव ने विज्ञान संबंधी अविष्कारों को पोषित किया है– ''जब कोई मशीन चलती/उसको ईंधन चलाता है।''[28] प्रकृति अनेक प्रकार के संसाधनों से आच्छादित है, जो हमें प्राण वायु के साथ अनेक प्रकार की मूलभूत आवश्यक वस्तुएँ प्रदान करती है (खाने के लिए भोज्य पदार्थ, पीने हेतु पानी, भवन निर्माण हेतु लकड़ी, पत्थर मिट्टी आदि) इन सब का प्रयोग कब, कैसे, कितना करना है यह ज्ञान भी विज्ञान कहलाता है– ''दुनिया में जीवित रहने को/सबको भोजन लगता है/गेहूँ ज्वार बाजरा मक्का/इनसे ही रोटी बनती है/इनसे ही सब मिष्ठान्न बने/आलू गोभी मटर टमाटर/सब खेतों में उगा करें/मिनरल और विटामिन देकर/ये जीवन में रंग भरे/बच्चों का इन सब का ज्ञान/हमें विज्ञान बतलाये।''[29] प्रस्तुत कविता के माध्यम से कवयित्री बच्चों को प्रकृति से मिलने वाली वस्तुओं का ज्ञान करा रही है जिससे बच्चे पहचान पायेंगे कि हम जो भी सामग्री को प्रयोग या उपभोग करते हैं। वह हमें प्रकृति द्वारा निःशुल्क प्राप्त होती है। वायुमण्डल में अनेक प्रकार की गैसें विद्यमान हैं जैसे– ऑक्सीजन नाइट्रोजन, कार्बनडाई ऑक्साइड, नियॉन, मिथेन, हीलियम, ऑर्गन इत्यादि। बाल साहित्यकारों ने कविताओं के माध्यम से इनके कार्य बच्चों को बताने का प्रयास किया है– ''पौधे वायुमंडल में से CO_2 का पान करें/साथ में ऑक्सीजन प्रदान करें/क्लोरोफिल जल, सूर्यकिरण मिल/भोजन का निर्माण करें।''[30] प्रस्तुत कविता में रचनाकार बच्चों को वायुमण्डलीय गैसों के घटकों का बोध करा रही है। जिससे बच्चे गैसों व उनके कार्यों से अवगत हो सकेंगे।

सन्दर्भ–सूची :–

1. कविता में विज्ञान कक्षा से ३, इंदु पाराशर, द्वितीय संस्करण, 2009, मध्यप्रदेश विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी परिषद माचला द्वारा प्रकाशित, पृ– २६।
2. वहीं।
3. बच्चों का संसार, विष्णु शास्त्री 'सरल', प्रथम संस्करण 2012, अविचल प्रकाशन, हल्द्वानी, पृ– ५२।
4. दैनिक जागरण सम्पादकीय पेज, २६ अक्टूबर 221
5. हमारे प्राकृतिक प्रतीक, परशुराम शुक्ल, प्रथम संस्करण 2012 मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स, पृ– २८।
6. विजय पर्व, परशुराम शुक्ल, प्रथम संस्करण 2016, हिंदुस्तान प्रकाशन दिल्ली, पृ– ६७।
7. वही, पृ– ६८।
8. दादी दो बेसन के लड्डू, नीलम राकेश, प्रथम संस्करण 2018, दिशा इंटरनेशनल पब्लिशिंग हाउस ग्रेटर नोएडा, पृ– २०।
9. कविता में विज्ञान कक्षा से ३, पृष्ठ संख्या २६।
10. बने फूल से हम बच्चे, अश्वनी कुमार पाठक, प्रथम संस्करण 2013, प्रकाशक मेधा कम्प्यूटर्स एंड ऑफसेट प्रिंटर्स भीलवाड़ा राजस्थान, पृ– ५।
11. चारो खाने चित, परशुराम शुक्ल, प्रथम संस्करण 2009 गीतांजलि प्रकाशन दिल्ली, पृ– ३८।
12. कविता में विज्ञान कक्षा से ३, पृ– ३०।
13. वही, पृ– २।
14. बचपन एक समंदर, कृष्ण शलभ, प्रथम संस्करण 2009, प्रकाशन नीरजा स्मृति बाल साहित्य न्यास उत्तरप्रदेश, पृ– ६६७।
15. Hindi poem www@-org.
16. प्रतिनिधि बाल कविताएं, परशुराम शुक्ल, प्रथम संस्करण 2015, राजश्री प्रकाशन अटल पथ भोपाल, पृ– २६।
17. कविता में विज्ञान, कक्षा ४, इंदु पाराशर, पृ– ७।
18. ताकि बच्चे रहे हरियाली, सुधा गुप्ता 'अमृता', प्रथम संस्करण 2008 प्रकाशक मध्यप्रदेश हिंदी साहित्य सम्मेलन, पृ– २०।
19. कविता में विज्ञान कक्षा ४, इंदु पाराशर, पृ– २८।
20. विजयपर्व, परशुराम शुक्ल, प्रथम संस्करण 2016, हिंदुस्तान प्रकाशन दिल्ली, पृ– ६।
21. नई उड़ान, अश्विनी कुमार पाठक, प्रथम संस्करण 2017, पाथेय प्रकाशन, जबलपुर, पृ– ३७।
22. बालप्रहरी, मई–जुलाई २०६, संपादक उदय किरौला, प्रकाशन उत्तरायन कम्प्यूटर्स अल्मोड़ा, पृ– ७।
23. बालहंस सितंबर २००४, संपादक आनंद प्रकाश जोशी, राजस्थान पत्रिका प्रकाशन, पृ– २३।
24. प्रतिनिधि बाल कविताए, पृ– २६।
25. नई उड़ान, पृ– ५५।
26. प्रतिनिधि बाल कविताएं, पृ– ६६।
27. अमर उजाला, विवेक कुमार सिंह द्वारा रचित कविता, अमर उजाला प्रकाशन 27 नवम्बर 2021, पृ– ७।
28. कविता में विज्ञान, कक्षा से ३, पृ– २८।
29. वही, पृ– ८।
30. कविता में विज्ञान, कक्षा 7, इंदु पाराशर, द्वितीय संस्करण 16 फरवरी 2009 मध्यप्रदेश विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी परिषद माचला द्वारा प्रकाशित, पृ– 18।

भाषा के परिप्रेक्ष्य मे हिन्दी का वैश्विक परिदृश्य

मुमताज परवीन*

शोध सारांश :– वैश्वीकरण का शाब्दिक अर्थ स्थानीय या क्षेत्रीय वस्तुओं के विश्व स्तर पर रूपांतरण की एक प्रक्रिया है। बाजारीकरण की व्यवस्था मे हिन्दी भाषा इसका माध्यम बनकर उभरी हैं वर्तमान बाजार में हिन्दी परिवर्तन के साथ ताल से ताल मिलाकर चल रही है। विश्व स्तर पर एक–दूसरों से संपर्क स्थापित करना हो चाहे वह व्यक्ति, समूह, सरकार, कंपनी आदि के बीच हो। बेलिज तथा स्मिथ के अनुसार–"वैश्वीकरण एक ऐतिहासिक प्रक्रिया हैं जो मानवीय सामाजिक संगठन के स्थानीय सोपान के रूपांतर मे मौलिक दबाव हैं जो दूर दराज के समुदायों को जोड़ता हैं तथा शक्ति संबंधों की पहुँच को क्षेत्रों तथा उपमहाद्वीपों के आरपार फैला देता हैं।"[1] मानक हिन्दी कोशानुसार– "किसी विशिष्ट जनसमूह द्वारा अपने भाव, विचार आदि प्रकट करने के लिए प्रयोग में लाये जाने वाले शब्द भाषा कहलाते हैं।"[2] आवश्यकतानुसार प्रयोजनमूलक प्रयोग के कारण भारत ही नहीं वरन विदेशों में भी हिन्दी का प्रसार हो रहा है। [3] प्रचुर मात्रा में कृतिम रूप लेने के उपरांत आज भी हिन्दी की गरिमा, संस्कृति एवम् महत्त्व बरकरार हैं। भाषा व्यक्ति के व्यक्तित्व की अस्मिता होती है जिस व्यक्ति की भाषा जितनी पुष्ट होगी उस व्यक्ति की अभिव्यक्ति उतनी ही प्रभावशाली होगी। राजनीति के स्वार्थ ने काफी हद तक भारतियों के ह्रदय में बेईमानी का बीज आरोपित करने में सफल रहा परन्तु अब बुध्दिजीवियों का विवेक ही धरोहर को अनुगामी की ओर अग्रसर करेगा।

अतः जानकारी, विचार, भावनाओं को अभिव्यक्त करने का माध्यम भाषा हैं। भाषा प्रत्येक निश्चित क्षेत्र के संस्कृति की परिचायिका होती है। हिन्दी भाषा की घटती दर का कारण भी प्रत्येक भारतवासी हैं जो पश्चिमी सभ्यता के अनुकरण का भी एक वजह बनकर उभरी हैं। भारत के विभिन्न प्रान्तों में हिन्दी की उपभाषाएं बोली जाती हैं। ब्रज, अवधी एवम खड़ी बोली साहित्यिक भाषा बनकर उभरी, ये सभी उपभाषाएँ हिन्दी भाषा के अंतर्गत आती हैं। हिन्दी के ही माध्यम से ये अल्पसंख्यक भाषाएँ अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान बना रहें हैं। प्रयोजनमूलक हिन्दी ने वैश्विक स्तर पर क्रांति लाई है क्योंकि यह व्यक्ति के कार्य–उद्देश्य और आवश्यकता को देखते हुए हिन्दी भाषा में अन्य शब्दों का प्रयोग कर रहें है जिससे व्यक्ति अपनी मेधा के अनुसार कार्य का क्रियान्वयन बड़ी ही सहजता से कर पा रहा हैं। हिन्दी का प्रचार–प्रसार इस रूप में भी देखने को मिलती हैं। अमेरिका ने हिन्दी शिक्षा के लिए बड़ा बजट स्वीकृत किया है यहाँ सबसे ज्यादा संख्या में हिन्दी का अध्ययन कर रहे है एवम् हिन्दी में सौरभ,हिन्दीजगत जैसे कई हिन्दी पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही है। वही विदेशों में हिन्दी साहित्य के भिन्न–भिन्न विधाओं का पठन–पाठन भी हिन्दी को प्रसारित करने में सहायक सिध्द हुआ है।

कुंजी शब्द :– परिचय, विशेषता, बीजारोपण, राष्ट्रीय फलक, एक दृष्टि, दशा, निष्कर्ष।

प्रस्तावना :– हिन्दी साहित्य के वैश्विक प्रचार में बोलियों का महत्वपूर्ण योगदान हैं। हिन्दी की पांच उपभाषाएं और सत्रह बोलियाँ हैं और हिन्दी भाषा का साहित्य ज्ञानकोश का विपुल भंडार हैं। आधुनिक गद्यकाल में साहित्य लेखन की भाषा हिन्दी है। हिन्दी के विकास क्रम से ज्ञात होता हैं कि हिन्दी का मूलाधार संस्कृत हैं। संस्कृत में दो शाखाएं बनी। एक वैदिक संस्कृत दूसरी लौकिक संस्कृत। संस्कृत से पाली, पाली से प्राकृत, प्राकृत से अपभ्रंश, और अपभ्रंश से हिन्दी का जन्म हुआ। इस प्रकार भारत में मोटे तौर पर भारोपीय और दक्षिण दो परिवार हुए। आर्य भाषा भारोपीय परिवार की भाषा हैं तमिल, तेलगू, कन्नड़ और मलयालम द्रविड़ परिवार में आते हैं। आधुनिक आर्य भाषाओँ का समय १००० ई के उपरांत प्रारंभ हुआ

***शोधार्थी हिन्दी विभाग, इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय खैरागढ़ (छ.ग.) पिनकोड–491881**

इन भाषाओँ के अंतर्गत सिन्धी, पंजाबी,लहंदा, पश्चिमी हिन्दी (ब्रज, बुन्देली,हरियाणवी, अवधी, कन्नौजी),पूर्वी हिन्दी (बघेली, अवधी, छत्तीसगढ़ी) राजस्थानी, बिहारी,पहाड़ी,गुजरती,मराठी, उड़िया,बंगला, असमी इत्यादि को शामिल किया गया। [4]

हिन्दी में शब्द ग्रहण करने की अद्भुत क्षमता होने के कारण हिन्दी राष्ट्रीय ही नही बल्कि अंतर्राष्ट्रीय भाषा कहलाने के योग्य हैं भले ही इसे इस उपाधि से नवाजा न गया हो। हिन्दी भाषा को सरकारी कामकाज की भाषा होने के कारण राजभाषा, राष्ट्र के विस्तृत भू–भाग में अपनाये जाने के कारण राष्ट्रभाषा, दो व्यक्तियों के बीच अच्छी तरह समझी जाने के कारण संपर्क भाषा परिनिष्ठित रूप निश्चित होने के कारण मानक भाषा, विपुल साहित्य लेखन के कारण साहित्यिक भाषा इत्यादि नामों से पुकारा जाता हैं भारतीय प्रवासियों के साथ उनके संस्कार भी शामिल थे जो भारतीय संस्कृति के परिचायक हैं इसलिए हिन्दी भाषा को सांस्कृतिक भाषा भी कहा गया। वैश्विक रूप से देखे तो हिन्दी दुनिया की सबसे आसान भाषा हैं। विश्व की सबसे ज्यादा बोली जाने वाली भाषा मे हिन्दी का दूसरा स्थान हैं। यह बेहद सरल, सहज एवम सुगम भाषा हैं। विश्व स्तर पर देखे तो ७० करोड़ लोग हिन्दी भाषी हैं।

मूल शोध :– राष्ट्रीय स्तर पर दृष्टिपात करें तो हिन्दी को राज भाषा का दर्जा सन १६४६ ईसवी में प्राप्त हुआ। १६४६ ईसवी में सर्वप्रथम श्री राजगोपालाचारी [5] ने राष्ट्रीय भाषा के समान ही राज भाषा शब्द का प्रयोग हिन्दी के लिए किये और स्वतंत्रता पश्चात् संवैधानिक, कार्यालय के कार्य प्रयोग हेतु किया गया। वहीं सम्पूर्ण भारत का प्रतिनिधित्व करती राष्ट्र भाषा के रूप में ३४४(१) व ३५१ के आठवीं अनुसूची के अंतर्गत उल्लेख किया गया है जो भारत के हिन्दी भाषी क्षेत्र के साथ–साथ अंतरराष्ट्रीय स्तर पर विचारों का आदान–प्रदान एवम् पत्राचार के लिए जो हिन्दी के जानकर हैं उनके द्वारा हिन्दी भाषा का प्रयोग किया जाता हैं। लन्दन, अमेरिका इंग्लैंड आदि देशों में हिन्दी सीखने के लिए समिति, पठन–पाठन के लिए संस्थाएं संचालित की जा रही हैं। विदेशों में हिन्दी की दशा देखकर यह भान होता है कि किसी अनुभवी का कथन सत्य ही है कि–" जो वतन से बेवतन हो जाता है इज्जत उसे ही मिलती है"। हिन्दी अपने मूल संस्कृति की संवाहिका एवम् प्रगतिशील भाषा बनी हुई हैं। बरगद वृक्ष के समान लटधारी होने पर भी यदा–कदा हिन्दी अनदेखा की शिकार हो जाती है। विश्व स्तर पर स्थान बनाने के लिए समस्त हिन्दीभाषी ही नहीं अपितु समस्त भारतवासियों को प्रयास करना होगा कि हिन्दी भाषा को वैश्विक भाषाओँ की सूची में स्थान प्राप्त हो सके।

विदेशों में प्रवासी भारतियों के कारण ही हिन्दी भाषा अस्तित्व में आई और वर्तमान में भारतीय और विदेशी दोनों ही मूलों की पीढ़ी हिन्दी मे सृजनात्मक लेखन कर रही हैं। ब्रिटेन और अमेरिका में बड़ी मात्रा में प्रवासी भारतीय रहते हैं, चूंकि इतिहास गवाह हैं कि प्रवास भी विवशता और लालच से हुआ सर्वप्रथम पुर्तगाली वास्कोडिगामा भारत में व्यापार करने की नियत से जलमार्ग के रास्ते भारत में प्रवेश किया और इस तरह डच, फ्रांसिसी एवम अंग्रेजों का भारत आगमन हुआ जिनका मूल उद्देश्य ही व्यापार करना, धनहरण एवम धर्मान्तरण करना था। उन्नीसवी शताब्दी मे यूरोपियन जातियों ने भारत मे उपनिवेश स्थापित किये और इसी उपनिवेशी जाल में फंसाकर गिरमिटिया मजदूरों को मॉरिशस, फिजी, सूरीनाम, त्रिनिडाड,गयाना, साऊथ अफ्रीका आदि देशों में भेड़ बकरियों की तरह जहाजो मे भरकर भेजा गया यही वे लोग हैं जिन्होंने अपने साथ रामचरितमानस, हनुमानचालीसा, गीता, महाभारत आदि धार्मिक ग्रंथों को ले गये थे, (ये ग्रंथ हैं जो भक्तिकाल एवम् आदिकाल साहित्य की अमूल्य निधि है) जिसको पढ़कर वे मातृभूमि को याद करते, भजन लोकगीत गुनगुनाकर दिनभर की थकान मिटाते। भाषाई वर्ग के क्रिया–कलाप, वेशभूषा,रहन,सहन के कारण शब्दरूप एवम वाक्य संरचना में बहुत अंतर दिखाई देता हैं यही अंतर गिरमिटिया मजदूरों के प्रवासी हिन्दी में देखने को मिलता हैं चूंकि स्वतंत्रता के पश्चात् प्रवासी भारतीयों के हिन्दी में परिष्कृत रूप देखने को मिलता हैं जो क्रिया और विशेषण को भलीभांति भेद कर पाते हैं।

यह रही स्वतंत्रता से पहले की बात जो अशिक्षित मजदूरों ने अपनी संस्कार से भारतीय अलख जगाये रखा। स्वतंत्रता के बाद शिक्षित वर्गों का इंग्लैंड, फरांस, अमेरिका, चीन गयाना आदि देशों में स्वेच्छा से प्रवास हुआ जिन्होंने हिन्दी भाषा के प्रचार के साथ–साथ साहित्य सृजन भी किये।

लोथार लुत्से (जर्मन भाषाविद) ने हिन्दी के कई कवियों की कविताओं का अनुवाद जर्मन भाषा में किया वही पी .ए. वारान्निकोव (रूस) ने रामायण का रूसी भाषा में अनुवाद किया एवम मास्को विश्वविद्यालय में हिन्दी पढ़ाते समय हिन्दी समाचार पत्रों के लिए समय समय पर लेख भी लिखते रहें। अनूदित काव्य (स्रोत भाषा) हिन्दी में होने की वजह से हिन्दी भाषा का प्रसार विदेशों में हो रहा। विदेशी अनुवादको द्वारा अनूदित साहित्य में स्रोत और लक्ष्य दोनों भाषाओँ का प्रचार होता हैं। सूरीनाम में हिन्दी भाषियों की बहुलता हैं क्योंकि प्रवासी भारतियों द्वारा भजन–कीर्तन लोकगीतों के माध्यम से हिन्दी भाषा पुष्पित होती रही। तुलसीदास व् कबीरदास की भाषा का प्रचार मौखिक रूप से हुआ रामचरितमानस की रचना के समय अवध के आमजन की भाषा अवधी थी इसलिए भी इस ग्रंथ को अशिक्षितों के मुंह से सुनना आश्चर्य नही। वर्तमान में "सूरीनाम हिन्दी परिषद्"[6] की समितियों द्वारा हिन्दी भाषा को संरक्षण प्राप्त हुआ हैं।

मॉरिशस में बहुसंख्यक जनता हिन्दीभाषी है। यहाँ भोजपुरी को विशेष रूप से जाना गया क्योंकि अधिकांश लोग उत्तरप्रदेश, बिहार से पलायन [7] किये थे जो हिन्दी भाषा के संवाहक थे। मॉरिशस के हिन्दीभाषी लेखक अभिमन्यु अऩंत का कहानी एवम उपन्यासों के द्वारा मॉरिशस को हिन्दी साहित्य के उच्च शिखर तक लेजाने में अमूल्य साहित्यिक योगदान हैं। अनंत जी का 'लाल पसीना 'भारत में धारावाहिक रूप में प्रकाशित हुआ। अनंत जी को भारत में हिन्दी साहित्यकार के रूप में प्रतिष्ठा न मिलना महज प्रवासी लेखक होना हैं। इन्होंने शोषण, दमन और अत्याचारों के विरुद्ध आवाज उठाया।

उसी प्रकार फिजी में ४७ः भारतीय निवास करते हैं जो सुल्तानपुर, लखनऊ, गोंडा आदि जिलों से हैं। यहाँ के भारतियों की व्यावहारिक भाषा हिन्दी हैं जिसमें भोजपुरी व खड़ी बोली के शब्दों की बहुलता हैं। इंग्लैंड में स्वेच्छा से नौकरी, शिक्षा आदि के लिए गये प्रवासी भारतियों को गोरों के हेय दृष्टि का सामना करना पड़ा फिर भी उन्होंने भारतीय संस्कृति को जिन्दा रखा प्रवासी लेखकों में सत्येन्द्र श्रीवास्तव, कीर्ति चौधरी, कृष्ण कुमार, मोहन राना आदि और भी लेखकों ने गद्य एवम् पद्य की रचना की। [8,9]

इस प्रकार यह रही साहित्यिक पृष्ठभूमि, हिन्दी के बाजारीकरण को लेकर देखे तो आजकल विज्ञापनों को अधिक आकर्षक बनाने के लिए हिन्दी के भिन्न–भिन्न तुकांत शब्दों का प्रयोग किया जा रहा हैं जो विज्ञापन को आकर्षक सौन्दर्य प्रदान करने के साथ–साथ हिन्दी भाषा के प्रचार–प्रसार करने में भी सहायक सिद्ध हो रही हैं।

संचार और सूचना का माध्यम हिन्दी भाषा होने के कारण रेडियो, टेलीविजन के माध्यम से निरक्षर भी समाचार एवम सूचना सुनकर लाभान्वित हो रहे हैं। हिन्दी के वैश्वीकरण में इलेक्ट्रानिक साधन भी हिन्दी संचार के सशक्त माध्यम हैं। कंप्यूटर के द्वारा विश्व स्तर पर हिन्दी भाषा को पहचान मिल रही हैं। हिन्दी भाषी कई कवियों ने फिल्मों के लिए गीत भी लिखे जैसे उपेन्द्रनाथ 'अश्क ', अमृतलाल नागर, कमलेश्वर, रामधारी सिंह दिनकर, गोपाल सिंह नेपाली आदि कई कवियों ने गीत के माध्यम से हिन्दी भाषा की सेवा की जो विदेशों में भी लोकप्रिय हुए। इससे भाषा ही नही लेखन कला का भी प्रचार हो रहा। हिन्दी भाषा का अच्छा प्रचार–प्रसार हो रहा हैं टीवी के अधिकांश चैनलों में हिन्दी भाषा का प्रयोग किया जा रहा हैं।

निष्कर्ष :– फिल्मों के माध्यम से हिन्दी को वैश्विक स्तर पर सम्मान प्राप्त हो रहा हैं। भारतीय फिल्मकार भारत ही नही यूरोप, अमेरिका और खाड़ी के देशों के दर्शकों को ध्यान में रखते हुए फिल्मों का निर्माण कर रहे हैं। हिन्दी साहित्य का इतिहास देखे तो जो साहित्यकार हुए उन्होंने पत्रकारिता का कार्य भी की और जो पत्रकार हुए उन्होंने साहित्य सृजन का कार्य भी किये। हिन्दी भाषा नही चेतना हैं जो साहित्य की अभिव्यक्ति के साथ–साथ समाज को वर्तमान स्थिति का आईना दिखाने में सक्षम हैं। मोबाइल, व्हाट्सऐप, ट्विटर, ब्लॉग, फेसबुक आदि कई साधनों में हिन्दी के प्रयोग ने दुनिया को मानव के मुट्ठी में कर दिया हैं

इस तरह हम कह सकते है कि भारत ही नही वरन अन्य देशों की भी हिन्दी भाषा प्रिय भाषा बन चुकी हैं चाहे वह कार्य की दृष्टि से हो या मनोरंजन की। साहचर्य प्रवृत्ति के कारण हिन्दी में शब्द बुनने की क्षमता है। विदेशों में बसे दो करोड़ से अधिक भारतीयों की संपर्क भाषा हिन्दी हैं। हिन्दी भाषा की यह विकास यात्रा तब तक जारी रहेगी जब तक कि ये विश्व की सबसे ज्यादा बोली जाने वाली भाषा में प्रथम स्थान न प्राप्त कर ले।

सन्दर्भ–सूची :–

1. संपा.शर्मा रामविलास, भाषा और समाज, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, पांचवां सं.–२००२, पृ.सं.–२४०।
2. कमल किशोर गोयनका : हिन्दी का प्रवासी साहित्य (आलेख), समकालीन भारतीय साहित्य (द्वैमासिक पत्रिका), अंक–२०१, जनवरी–फरवरी, सन–२०१६, साहित्य अकादमी ,फिरोजशाह मार्ग, नई दिल्ली पृ.सं.–२४।
3. वही, पृ.सं.–२५।
4. संपा. डॉ नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर बुक्स,दरिया गंज, नई दिल्ली, ६२वां संस्करण २०१८, पृ.सं.–६, १०, ११।
5. संपा.शुक्ला डॉ(श्रीमती)जयश्री, चतुर्वेदी डॉ(श्रीमती)राजेश, हिन्दी संघर्ष और आयाम, विकास प्रकाशन, कानपुर प्र.सं. २०१२, पृ.सं.–१३।
6. वही, पृ.सं.–२०।
7. वही, पृ.सं.–२३।
8. वही, पृ.सं.–२४।
9. वही, पृ.सं.–१७५।
10. संपा.तिवारी भोलानाथ, भाषा विज्ञान, किताब महल प्राईवेट लिमिटेड, इलाहाबाद, प्र.सं.१९५५।
11. संपा.त्रिपाठी डॉ रामछबीला, शुक्ल डॉ(श्रीमती)उषा, प्रयोजनमूलक हिंदी, कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल।
12. संपा.शुक्ल आचार्य रामचंद्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण २००५।
13. संपा.रामगोपाल, स्वतंत्रता पूर्व हिन्दी के संघर्ष का इतिहास, हिन्दी साहित्य सम्मलेन, प्रयाग, प्र.सं.–१९३६।
14. विश्व की हिन्दी पत्र–पत्रिकाएँ, डॉ कामता कमलेश, इंटरनेट।
15. वैश्वीकरण और हिन्दी की चुनौतियाँ (लेख), अमित कुमार विश्वास, इंटरनेट।
16. संचार माध्यम मे हिन्दी (आलेख), राजभाषा भारती से प्रसारित, इंटरनेट।
17. संपा.डॉ मंजूरानी, हिन्दी का वैश्विक परिदृश्य, मानसरोवर प्रकाशन नोएडा, दिल्ली, सं.– २०१७।

मैत्रेयी पुष्पा की औपन्यासिक-सृजनात्मकता

कु. मीना*

आधुनिक गद्य जगत में अपनी पैठ बनाने वाली मैत्रेयी जी का नाम बड़े आदरपूर्वक लिया जाता है। उन्होंने कथा जगत में अपना परचम लहराया है यूँ तो आधुनिक साहित्य में विविध महिला लेखिका उभरकर आई है। जिन्होंने अपनी कलम से पाठक जगत को सचेत किया है किन्तु पुष्पा जी का लेखन अपने आप में अतुलनीय है। उनकी तुलना किसी से भी करना उनकी योग्यता को कमतर आँकना होगा। मैत्रेयी जी ने अपनी एक से बढ़कर एक लेखन कुशलता से सभी को चकित कर दिया है। उनकी रचनाएँ सभी के मन को उद्वेलित करने वाली है। उनके द्वारा रचित उपन्यासों तथा कहानियों ने पाठक वर्ग में एक विशेष प्रकार की रूचि उत्पन्न की है इनके उपन्यासों की बड़ी श्रृंखला नजर आती है। कुछ उपन्यास इनके ग्रामीण जीवन से सम्बन्धित हैं जबकि कुछ उपन्यास शहरी जीवन को रेखांकित करते है, 'कस्तूरी कुण्डल बसै', 'गुड़िया भीतर गुडिया', 'बेतवा बहती रही', 'इदन्नमम', 'चाक', 'झूलानट', 'अल्मा कबूतरी', 'अगनपाखी', 'विजन', 'कही ईसुरी फाग', 'त्रियाहठ', 'गुनाह बेगुनाह' इत्यादि लम्बे–चौड़े उपन्यास है जिनकी अपने आप में एक विशेष विशेषताएँ है।

किसी भी उपन्यास लेखन की बात हो या फिर कहानी लेखन की दोनों के तत्वों के स्तर पर एक ही समानता होती है। उपन्यास लेखन में मूलतः छः तत्वों के आधार पर पूरा उपन्यास गठित होता है इन छः धुरियों के अंतर्गत उपन्यासों की धुरी घूमती रहती है, औपन्यासिक सृजनात्मकता के लिए एक विशेष योग्यता होती है। उपन्यास दो शब्दों से मिलकर बना है उप से आशय 'समीप' होता है। न्यास का अर्थ 'गठित' होना है जो सम्पूर्ण अच्छी तरह से गठित हुआ हो उसे उपन्यास कहा जाता है। यह एक प्रकार की लम्बी–चौड़ी आख्यायिका होती है। जिसमें जीवन से सम्बन्धित घटनाओं का विवरण क्रमबद्ध तरीके से ही सम्बन्धित होता है तथा मानवजनित घटनाओं का क्रमवार प्रस्तुतीकरण होता है। पहले पहल महाकाव्यों की प्रचलनता अत्यधिक मात्रा में थी जिसमे समग्र जीवन घटनाक्रम होता था। यह मानवीय मूल्यों की धरोहर के रूप में संग्रहित होती थी जिसका समाज में अत्याधिक प्रचलन था। इसका नायक भी महान घटनाक्रम को चुनौती देता था साथ ही साथ मानवीय मूल्यों को संरक्षित करने का कार्य महाकाव्य के अंतर्गत किया जाता था। साथ ही साथ ही आदर्श मूल्यों की प्रतिष्ठा भी इसी के माध्यम से किया जाता था। वर्तमान में जो संपूर्ण कार्य महाकाव्य के होते थे उसकी जगह वह समस्त कार्य उपन्यासों के माध्यम से किया जाता है। यही कारण है कि महाकाव्यों का प्रचलन अब कम मात्रा में होता है जो विषयवस्तु महाकाव्य की होती थी उसका स्थानापन्न उपन्यासों ने ले लिया है। चूँकि मैत्रेयी जी के उपन्यास यथार्थ धरातल को रेखांकित करते है, जिसमें किसी भी प्रकार की बनावटीपन देखने को नजर नहीं आता। उनके उपन्यासों की श्रृंखला यथार्थ जगत की गहराईयों को परत दर परत खोलती हुई नजर आती है। मैत्रेयी जी एक प्रतिभाशाली संपन्न लेखिका है जिसके कारण ही वह उपन्यास जगत को टक्कर दे पाई है। उपन्यासों में प्रायः विषयवस्तु एक विस्तृत आकार ग्रहण करती है जिसके लिए विशेष बुद्धिमता की आवश्यकता होती है जिसकी प्रखरता उनके संपूर्ण उपन्यास लेखन में देखी जा सकती है। उनके उपन्यासों को हम तत्वों के आधार पर व्यवस्थित करने का प्रयास करेगें। प्रायः उपन्यास लेखन मे जिन तत्वों के आधार पर संरचित किया जाता है उनके नामोल्लेख इस प्रकार से है– कथावस्तु, पात्र–योजना, देशकाल वातावरण, संवाद योजना, उद्‌देश्य, भाषाशैली। इन्हीं सब बिन्दुओं के अंतर्गत उपन्यासों की संपूर्ण रचनात्मकता घूमती है। मैत्रेयी जी की औपन्यासिक कलात्मकता का सृजन इस प्रकार से निहित है उनकी समस्त विशेषताएँ इस तरह है–

कथावस्तु :– मैत्रेयी जी के उपन्यासों की श्रृंखला काफी बड़ी है सभी उपन्यास अपने आप में महत्वपूर्ण स्थान रखते है, प्रत्येक उपन्यास की संक्षिप्तात्मक कथा विवरण इस तरह से है–

कस्तूरी कुण्डल बसै :– यह एक प्रकार का आत्मकथात्मक उपन्यास है। चूँकि इसकी अभिव्यक्ति आत्मकथात्मक शैली में हुई है। जिस कारण इसे आत्मकथात्मक उपन्यास की श्रेणी में रखा जाता है। इस रचना में लेखिका ने

***शोधार्थी, पीएच0डी0 (हिन्दी), एम0बी0 रा0स्ना0 महाविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल।**

अपनी और स्वयं अपनी माता के बीच होने वाले भावों तथा घटनाओं का रेखांकित किया है या यों कहे कि अपनी माताजी के संपूर्ण व्यक्तित्व की झांकी हमें इस पुस्तक में देखने की मिल जाती है। अपने तथा अपनी माताजी के विरोधी विचारधाराओं का प्रस्फुटन हमें देखने को मिलता है। साथ ही साथ अपने बचपन मे होने वाले जीवन संघर्षो को भी दिखाया गया है विभिन्न बाधाओं को पार कर अपने एक साहित्यकार के रूप में प्रतिष्ठा उनके आत्मबल को रेखांकित करती है।

गुड़िया भीतर गुड़िया :– यह द्वितीय आत्मकथात्मक पुस्तक है यह भी आत्मकथात्मक शैली में प्रस्तुत हुई है तथा उपन्यास लेखन के माध्यम से रचित हुई है। जिस कारण इसे भी आत्मकथात्मक उपन्यास कहा जाता है। इस पुस्तक में लेखिका ने विवाहोत्तर जीवन में होने वाली विसंगतियों को रेखांकित किया है। उन्होंने विवाह के पश्चात किन–किन असुविधाओं को महसूस किया। इस सभी का विवरण इस पुस्तक में देखने को मिलता है। साथ ही साथ उनके साहित्यिक यात्रा के दौरान होने वाले उतार–चढ़ाव की अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। एक स्त्री के लिए घर–परिवार, अपना लेखन कार्य तथा अपने जीवन के बारे मे सोचना इन सभी के साथ समायोजन करते चलना आसान कार्य नहीं होता है अपने इन सभी द्वंद्वों तथा संघर्षों का चित्रण इस रचना में मिलता है।

अल्मा कबूतरी :– इस औपन्यासिक कृत्ति में लेखिका ने कबूतरा जनजाति की व्यथा–कथा कहीं है। इसमें दो स्त्रियाँ 'अल्मा' तथा 'कदमबाई' मुख्य किरदार के रूप मे उभरकर आती है। यह मुख्यतः कज्जा तथा कबूतरा समुदाय का आपसी वैचारिक मतभेद का संघर्ष है दोनों ही समुदायों की आपस मे टक्कर रहती है। कज्जा लोग इन जनजाति समुदाय को अपने से घुलने–मिलने नहीं देते जिस कारण इनका संपूर्ण सामाजिक विकास भी नहीं हो पाता। कदमबाई अकेले ही अपने पुत्र को पालती पोषती है। उसके पति की हत्या के बाद उसके जीवन में केवल उसका ही पुत्र था जिसके सहारे वह अपना जीवन यापन कर रही थी उसका संरक्षण वह स्वयं ही करती है।

चाक :– इसी के नाम के अनुरूप कथानक का चयन किया गया है 'चाक' यानि चक्र 'समय' को रेखांकित करता है। इस कथा में सारंग की स्थिति एक पेण्डुलम की तरह हो गई है जिसका कोई छोर नहीं है साथ ही साथ यह कहानी अतरपुर गॉव की कहानी को रेखांकित करती है ग्रामीण जीवन के प्रति लगाव अनूठा प्रयोग इसमें देखने को मिल जाता है तथा एक स्त्री के संघर्ष को रेखांकित करता है।

झूलानट :– यह उपन्यास ग्रामीण जनसमुदाय की सौंधी सुगंध अपने में समेटे हुए है। बालकिशन और शीलो जिनका रिश्ता देवर–भावी का था किन्तु बाद में पति–पत्नी जैसा वैवाहिक जीवन जीते है। पारिवारिक जीवन के संघर्षों को यह रचना चित्रित करती है शीलो का पति उसे छोड़कर चला जाता है। बालकिशन उसे संभालता है वह न अपने पति की हो पाती है और न ही बालकिशन की, आपसी अंतर्विरोधों का सिलसिला ऐसे ही चलता रहता है।

इदन्नमम :– यह उपन्यास मंदाकिनी के जीवन संघर्ष को उजागर करती है उसकी दाद़ी उसका पालन पोषण करती है विभिन्न बाधाओं को पार कर रही अपनी मंजिल के मुकाम पर पहुँचती है। उसकी माता का विवाह अन्यत्र जगह हो जाता है किन्तु उसकी दादी उसे अपने साथ ही रखती है उन्हें पता है कि अगर उसे किसी पराए घर में या फिर उसके नए पिता के रखा जाएगा तो उसका भविष्य खराब हो जाएगा और कहीं न कहीं वह सुरक्षित भी नहीं रह पाएगी उसकी सुरक्षा को केन्द्र में रखकर वह उसे अपने सम्मुख रखती है। बचपन से ही मंदा काफी होशियार तथा प्रगतिशील विचारों वाली रहती है यह उपन्यास मंदाकिनी के संघर्षो को उद्‌घाटित करता है।

विजन :– आधुनिकताबोध से सराबोर यह उपन्यास वर्तमान में उपस्थित भ्रष्टाचारी वर्ग को उजागर करता है। विजन का मतलब ही दृष्टि होता है। इसमें आँख के डॉक्टरों का वर्णन किया गया हैं जिन्होंने निजी अस्पताल खोलकर मरीजों का खूब शोषण किया है। मरीज अच्छी सुविधाओं के लिए निजी अस्पताल में आते है किन्तु ये डॉक्टर अच्छी सुविधाओं के बहाने इनसे पैसे ऐठते है। यह केवल इनका एक जरिया है जिससे ज्यादा से ज्यादा मरीजों से पैसे ऐठ सकें नेहा और आभा इसी व्यवस्था के बीच पिसती रहती है।

अगनपाखी :– इस उपन्यास में भुवनमोहिनी का चित्रण किया गया है जिसकी जबरदस्ती शादी विक्षिप्त युवक से कर दी जाती है। उसके जेठ अजयसिंह ऐसा षडयंत्र रचते है कि उसके पति की मृत्यु हो जाती है तथा साथ ही भुवन को भी उसके साथ मृत घोषित कर दिया जाता है अंत में वह चन्दर की सहायता से बच निकलती है और अपने हक के लिए आगे आती है।

गुनाह–बेगुनाह :– इस रचना में तमाम उन स्त्रियों को चित्रित किया गया है जिन्होंने मजबूरी में आकर कोई गुनाह किया है। ईला नामक युवती एक महिला पुलिसकर्मी है जहॉ वह अपने सामने सच बोलती महिलाओं के लिए कुछ नहीं कर पाती। साथ ही साथ स्वयं अपने समकक्षों के द्वारा उन्हीं स्त्रियों का शोषण करती हुई देखती है लेकिन वह उन महिलाओं के लिए कुछ नहीं कर पाती।

फरिश्ते निकले :– इस उपन्यास में बेला बहू के जीवन संघर्ष को दिखाया गया है। बचपन से ही उनके साथ अत्याचार होता है। नाबालिग उम्र में ही उसका विवाह कर दिया जाता है एक अधेड़ उम्र के व्यक्ति के साथ उसकी शादी होती है। वह व्यक्ति केवल उसे अपने हवस का शिकार बनाता है। अपने जीवन के संपूर्ण बाधाओं से दूर वह एक छोटी सी संस्था खोलती है जिसमें उन बच्चों को शिक्षा दिलवाई जाती है जो अनाथ है या फिर किसी न किसी प्रकार से अपने परिवार से अलग हुए है उसके साथ कुछ व्यक्ति मिलकर इस कार्य की पूर्ति करते है।

कही ईसुरी फाग :– इस उपन्यास में 'ईसुरी' और 'रजऊ' के प्रेम को व्याख्यायित किया गया है साथ ही साथ लोकसंस्कृति का भी संरक्षण किया गया है। ईसुरी का काम एक स्थान से दूसरे स्थान जाकर फागे गाना होता है उसी दौरान रजऊ से प्रेमालाप होता है, दोनों के प्रेम को कोई एक निश्चित मोड़ नहीं मिल पाता। दूसरी कहानी ऋतु और माधव की चलती है। वह एक शोध छात्रा है। उसका शोध कार्य लोकसम्मत होने के कारण उसे पी0एच0डी0 डिग्री नहीं मिल पाती है। यह कथावस्तु मुख्यतः इन्ही चारों पात्रों की ओर घूमती रहती है।

पात्र योजना :– किसी भी लेखक का मंतव्य रचना को जीवंतता प्रदान करना होता है। जिसके लिए वह पात्र नियोजन करता है। कथावस्तु के सापेक्ष पात्रों की श्रृंखला नियोजित की जाती है। मैत्रेयी जी ने उपन्यासों की पृष्ठभूमि को जिस रूप में गठित किया है उसी के सापेक्ष पात्रों का नामकरण भी किया है। झूलानट उपन्यास में शीलो नाम ग्रामीणपन के नाम को रेखांकित करता है। बालकिशन नाम भी तत्सम की जगह तद्भवीकरण किया गया है। ऐसे ही 'कस्तूरी कुण्डल बसै' में खेरापतिन नाम भी ग्रामीणपन को अंकित करता है। चाहे 'कही ईसुरी फाग' का ईसुरी तथा रज्जो हो, इदन्नमम की मंदा हो, लेखिका का सर्वाधिक लगाव ग्रामीण परिवेश से रहा है जिस कारण उन्होंने कथावस्तु के पात्र योजना की है। साथ ही साथ जहॉ पर शहरी परिवेश को चित्रित किया है वहॉ पर उसी तरह के पात्र नियोजन हुए है। विजन में नेहा, आभा नाम शहरी नाम को चित्रित करते है वैसे तो इस प्रकार के नाम गॉवों में भी रखे जाते है किन्तु ऐसे नाम अधिकांश शहरों में रहने वालों के नामों को इंगित करते है। मैत्रेयी जी अधिकांशतः पात्रों का नियोजन इसी प्रकार किया है जिससे वह सफल भी हुई है। पात्रों के माध्यम से पाठक को अपनी पाठ योजना से बॉंधे रखना होता है तथा पाठकों को ऐसा अनुभूत होता है कि वह उनके ही स्थान का व्यक्ति हो।

संवाद योजना :– यह भी उपन्यास तत्व में सम्मिलित एक महत्पूर्ण तत्व है जहॉ एक ओर पात्रो की संख्या को गठित किया जाता है। वहीं पर पात्रों के माध्यम से संवादों की रूपरेखा तैयार की जाती है। संवादों के माध्यम से रचनाकार कहीं न कहीं अपने विचारों की ही अभिव्याक्ति करता है साथ ही रचना को जीवंत बनाने के लिए ऐसा नियोजन किया जाता है। मैत्रेयी जी के उपन्यासों में निहित संवाद पात्रों के अनुरूप हुआ है। जहॉ वह ग्रामीण बोली को भी प्राथमिकता देती नजर आती है। उनके पात्र अपने क्षेत्रीय बोली में संवाद करते है साथ ही साथ एक धाराप्रवाह भी संवादों में अनवरत रूप में बना रहता है। आपस में महिलाएँ अपनी बोली में बात करती है, 'चल लुच्ची! अरी हम जाटिनी हैं, जेब में विछिया धरे फिरती हैं, मन आया ता के पहर लिये। तेरी–मेरी खातिर क्या? कौन सी पल्लौ (प्रलय) हो गई?'

इन संवादों में क्षेत्रीय बोली स्पष्ट नजर आती है ऐसे ही संवादो का प्रयोग और उपन्यासों में भी देखने को मिलते है। जैसे देखा जा सकता है– 'रोई होगी मोड़ी। आएदिन की आफत है ससुरी खसम तो धरापे की नाई खटिया में धरे और मोंड़ी हो गई धोबीघाट। जो है सो करिहाई पर चढ़ा चला आ रहा है। खसम जू कॉंख

तक नहीं रहें, बचाएँगे क्या?' यहाँ पर देखते है बिल्कुल सरल, सहज तरीके ये संवादों की अभिव्यक्ति हुई है। जिसमें किसी भी प्रकार का बनावटीपन नजर नहीं आता। बुंदेली क्षेत्र से सम्बन्धित होने के कारण इन शब्दों तथा संवादों का प्रभाव देखने को मिल जाता है।

''तुमारी मतारी को पता नहीं ? सकुन से क्या–क्या कुकरम कराए! हैड तुमारी ठठरी बँधे चलो भागो तो यहाँ से। तोरी मतारी मौसी आँधरी नहीं हैं, और न बहरी।''

साथ ही साथ लेखिका ने आधुनिकता का दामन भी नहीं छोड़ा है अग्रेंजीयत का प्रभाव भी देखने को मिल जाता है। अपने क्षेत्रीय भाषा में पकड़ के साथ–साथ अंग्रेजी संवादों को भी रेखांकित किया है जो उनकी प्रतिभा को दर्शित करती है। पाठ्यवस्तु के अनुकूल ऐसा नियोजन किया गया है। विजन उपन्यास में चूँकि अस्पताल का चित्रण किया गया है। डॉक्टरों के आपस में जैसे संवाद प्रयुक्त होते है, उसको भी दिखाने का प्रयत्न किया गया है। ''नो डाउट यू आर आ कॉम्पिटेट सर्जन, यट यू शुड बी केयरफुल।'' (इससे शक नही कि तुम सक्षम सर्जन हो,तो भी तुमको सावधान रहना चाहिए)

''टू डे ज मॉडर्न वाइफ सूट्स ऑनली मैट्रोपॉलिटन सिटीज नॉट लाइक बरेली शाहजहाँपुर कस्बा (आज की पत्नियाँ केवल महानगरों के काबिल हैं। बरेली शाहजहाँपुर जैसे छोटे कस्बों को सूट नहीं करती।'' मुकुल एक डॉक्टर है। तो वह उसी प्रकार के संवादों को अपनी पत्नी डॉ0 आभा से कहता है।

उद्देश्य :– कोई भी रचनाकार जो भी लिखता है उसमें उसका कोई न कोई मूल प्रयोजन, उद्देश्य अवश्य होता है। लेखिका मैत्रेयी जी ने उपन्यासों में विशेष उपलब्धि हासिल की है। उनका लेखन यथार्थ भूमि को परत दर परत खोलता जाता है। समाज से सम्बन्धित विविध आयामों का खुलापन हमें उनके कथा साहित्य में देखने को मिल जाता है। अपने कथा साहित्य की प्रस्तुती उन्होंने खुलेपन दृष्टि से किया है जिससे कुछ भी छुपा हुआ नहीं है। उनका उद्देश्य ही वर्तमान समाज की परिस्थितियों का चित्रण करना है। फिर चाहे वह अगनपाखी उपन्यास के माध्यम से किया हो या 'विजन' उपन्यास के माध्यम से लगभग सभी उपन्यास आधुनिक जीवन की कसौटी पर खरे उतरते है।

संकलनत्रयी :– इसके अंतर्गत तीन चीजें प्रमुख आती है। जिससे देश, काल, वातावरण की भूमिका स्पष्ट नजर आती है। एक साहित्यकार जो भी रचना करता है उसका प्रभाव तथा उस समय की परिस्थितियों का प्रभाव रचना पर अवश्य पड़ता है, क्योंकि एक लेखक भी उसी समाज तथा परिस्थितियों का व्यक्ति होता है इसलिए उससे प्रभावशील होना स्वाभाविक बात है। मैत्रेयी जी समकालीन सहित्यकार है। वर्तमानिक विद्रूपताओं का अंकन प्रायः उनकी रचनाओं में देखने को मिल जाता है। समाज से सम्बन्धित कुछ ऐसा पहलू नहीं है जो उनकी नजरों से दूर हो। सामाजिक यथाथिति का चित्रण प्रायः उनके उपन्यासों में दृष्टिगोचर होता है। 'कस्तुरी कुण्डल बसै' में उन्होंने जब देश आजाद नहीं हुआ था उस समय की तात्कालिक परिस्थितियों का भी चित्रण किया गया है। किस तरह सामान्य जनता पर अत्याचार हुआ करते थे उस समय की परिस्थितियों का वर्णन किया है।

'अंग्रेजों का हुक्म ! कुर्कियों का जलजला। गाँवों मे हाहाकार मच गया । माना कि हाहाकर नया नहीं, मगर चोटे नए सिरे से पड़ती है। यातना देने के नए–नए ढग गोरों ने खोज निकाले है।' उस समय की परिस्थितियों का चित्रांकन यहाँ पर स्पष्ट तरीके से नजर आता है। साथ ही साथ देश आजादी के पश्चात समाज का स्वरूप स्पष्ट नजर आता है। 'गुनाह बेगुनाह' उपन्यास में आज की विसंगतियों को रेखांकित किया गया है जहॉ सच और झूठ के बीच मनुष्य की स्थिति ऐसी बनी हुई है जिसमें वह किसी भी निर्णय पर अडिग नहीं हो पा रहा है। मनुष्य के गुनहगार बनने के पीछे परिथितियों का चित्रण इस रचना में देखने को मिल जाता है।

भाषाशैली :– किसी भी भाषा को लिखने का ढंग या तरीके को शैली कहा जाता है। जिसे अंग्रेजी में 'स्टाइल' कहा जाता है। कोई भी भाषा हो चाहे हिन्दी, अंग्रेजी, मराठी कोई भी भाषा हो सबको लिखने का एक तरीका होता है वहीं उसकी शैली कहलाती है। ऐसे ही हिन्दी गद्य लेखन के लिए रचनाकार अलग–अलग शैलियों का प्रयोग करते है। मैत्रेयी जी एक गद्य–लेखिका है। गद्य–लेखन के लगभग सभी शैलियों का प्रयोग इनके उपन्यास लेखन में दृष्टिगोचार होता है। प्रायः शैलेयों का प्रयोग इस प्रकार से है–

वर्णनात्मक शैली :– इस शैली में प्रायः वृतांतों का वर्णन किया जाता है। इसका प्रयोग निश्चित ही कथा लेखन के लिए किया जाता है। मैत्रेयी जी ने अधिकांशतः अपने उपन्यासों में इस शैली का नितांत प्रयोग किया है। 'कस्तूरी कुण्डल बसै' में भी आजादी से पहले के दृश्यों का वर्णन किया है। जमींदार वर्ग अपने ही लोगों पर जुल्म ढ़ाते थे, उन सब वृन्तांतो का वर्णन हमें देखने को मिलता है। 'जमींदार कहने के लिए अपना है क्योंकि रगंरूप से अपना जैसा है मगर मातहत तो गोरों का है। किसी कुर्की–नीलामी से लगान की भरपाई न हो तो किसानों को पिटवाने में जुटकर अपनी जमींदारी बरकरार रखता है।' इस वर्णन में ऐसा लगता है मानो उस समय का दृश्य आँखों के सम्मुख उतर चुका हो। अंग्रेज जमींदारों के माध्यम से ही भारतीयों की बुरी दशा करवाते थे ताकि संपूर्ण आधिपत्य उनके हाथ में ही रहें। जमींदार वर्ग भी अपने लाभ के लिए उनके हाथों की कठपुतली बना रहता था।

आत्मकथात्मक शैली :– इनके दो उपन्यास जिनकी अभिव्यक्ति आत्मकथात्मक शैली में हुई है एक 'कस्तुरी कुण्डल बसै' दूसरी 'गुड़िया भीतर गुड़िया' दोनों रचनाओं में मैत्रेयी जी ने अपने आत्म प्रकाशन को उजागर किया है। जहॉ उनके बचपन से लेकर शादी के उपरांत होने वाले संपूर्ण परिवर्तनों के बारे में पता चलता है। आत्मकथात्मक शैली का एक उदाहरण इस तरह से देख सकते है– 'छोटी अवस्था से सफर शुरू करने वाली लड़की के लिए कौन–सा रास्ता दुर्गम है? शहर के बीहड़ उसे लगातार भटका रहे है, रास्ता भुलाकर भरमाते हुए तबाह कर रहे है। वह अब मर्दों से सौ कोस दूर भागती है, मगर हर कदम पर पुरूष मिलता है, पीछा करता है।' उपर्युक्त वाक्यांश में साफ स्पष्ट होता है उन्होंने अपने साथ हुए हादसों कों खुलेपन के साथ अभिव्यक्त किया है। अपने मन में उठने वाले भावों की अभिव्यक्ति को उन्होंने समाज के सामने प्रस्तुती दी है।

पुष्पा जी की भाषा सरल, सहज धाराप्रवाहमान है जिसमें पाठक पहले से लेकर अंत तक रूचि के साथ जुड़ा रहता है। इसी के साथ–साथ अन्य शैलियाँ भी उपन्यासों में सृजित मिलती है। जिनमें व्यास शैली, समास शैली, लोकगीत शैली जो प्रमुखतः इनकी 'कही ईसुरी फाग' पुस्तक में देखने को मिलती है। जहाँ ईसुरी के माध्यम से इस शैली को बढ़ावा मिला है। अधिकांशतः ग्रामीण भाषा से सम्बन्धित कहावतों तथा मुहावरों का भी प्रयोग हुआ है जो पुस्तक पठन को और भी रूचिकर बनाये है। उपर्युक्त सभी तत्त्वों के आधार पर उनकी उपन्यास सृजनात्मकता संपूर्ण हुई है जो उपन्यास कलात्मकता विशेषताओं को पूर्ण करती है।

उपसंहार :– वर्तमान जगत की प्रतिष्ठित महिला लेखिकाओं में मैत्रेयी जी का नाम बड़े आदरपूर्वक लिया जाता है यथार्थ जगत के वास्तविक पहलुओं को उन्होंने अपने उपन्यासों में उजागर किया है उनके द्वारा रचित उपन्यासों की कथावस्तु वर्तमान जगत की वास्तविकता को हमारे सम्मुख सजीवता प्रदान करती है ऐसा लगता है मानो पुस्तक में घटित समस्त घटनाऐं हमारे आस–पास के वातावरण में ही इर्द–गिर्द घूम रही हैं ग्रामीण से लेकर शहरी तक महिलाऐं निरन्तर संघर्ष करती हुई नजर आती है इस दौरान वह न केवल संघर्ष करती हुई दिखाई देती है बल्कि अपनी अस्मिता की पहचान करती हुई नजर आती है उनकी महिला पात्र प्रगतिशील विचारों से उभरती हुई अपने आप को समाज में प्रतिष्ठित करती नजर आती हैं। उपन्यास तत्वों की सम्पूर्ण परिपक्वता उनके प्रायः उपन्यासों मे परिलक्षित होती हुई नजर आती है जो एक सर्वोत्कृष्ट साहित्यकार की दक्षता को परिपूर्ण करती है।

सन्दर्भ–सूची :–

1. पुष्पा, मैत्रेयी – चाक, प्रकाशक राजकमल प्रकाशन प्रा0लि0, 1–बी, नेताजी सुभाष मार्ग दरियागंज नई दिल्ली–110002, पृ0 104।
2. पुष्पा, मैत्रेयी – कस्तुरी कुंडल बसै, प्रकाशक राजकमल प्रकाशन प्रा0लि0, 1–बी, नेताजी सुभाष मार्ग दरियागंज नई दिल्ली–110002, पृ0–202।
3. वही – पृ0– 202।
4. पुष्पा, मैत्रेयी – विजन, वाणी प्रकाशन 4695, 21–ए दरियागंज, नई दिल्ली–110002 पृ0–60।
5. वही – पृ0– 98।
6. पुष्पा, मैत्रेयी – कस्तुरी कुंडल बसै, प्रकाशक राजकमल प्रकाशन प्रा0लि0, 1–बी, नेताजी सुभाष मार्ग दरियागंज नई दिल्ली–110002, पृ0– 14।
7. वही – पृ0– 14।
8. वही – पृ0– 55।

✯

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में स्त्री-विमर्श

ऋषि कुमार मिश्र*

मैत्रेयी पुष्पा की पहचान हिन्दी लेखिकाओं में सबसे निर्भीक व विद्रोही लेखिका के रूप में है। मैत्रेयी पुष्पा एक सशक्त महिला उपन्यासकार, कहानीकार है उनकी साहित्य में स्त्री का यथार्थ परक रूप है, जोकि सामान्य से हटकर भोगा हुआ है। परिवेश व्यक्ति के व्यक्तित्व में बदलाव, की स्थितियों का निर्माण करता है। मैत्रेयी पुष्पा का व्यक्तित्व भी तत्युगीन परिवेश से बना हुआ है। मैत्रेयी पर उनकी माँ कस्तूरी के व्यक्तित्व की अमिट छाप है। माँ के जीवनानुभव, साहिकता, पिता का स्वाभिमानी प्रवृत्ति व तत्कालीन घटनाओं का प्रभाव मैत्रेयी के व्यक्तित्व पर है। लेखिका उन सांस्कृतिक मूल्यों को नकारती हैं जिसमें हमेशा स्त्री को गुलाम बनाने की साजिश की– "हाँ मैं भी इस सत्य को दुनिया के सामने लाना चाहती हूँ कि स्त्री के लिए शास्त्रों द्वारा दी गई नैतिक सांस्कृति, बनाए गए जीवन मूल्यों और सुचिता का पाठ हमारी सक्रिय जिन्दगी के अनुरूप नहीं है क्योंकि पुरुष जाति ही इसे खण्ड–खण्ड तोड़ डालती है।"[1]

समाज का स्वरूप अलग–अलग प्रकार का होता है। प्रत्येक समाज की अपनी–अपनी मर्यादाएँ, संस्कृति पितृसत्तात्मक है। भारतीय समाज व्यवस्था में पुरुष को शक्तिसम्पन्न, दृढ, आत्मनिर्भर मानकर उत्तराधिकारी के आकार में स्वीकार किया जाता है, परन्तु स्त्री को परावलंबी व कमजोर मानकर छोड़ दिया जाता है, इसी कारण स्त्री भारतीय समाज में दलितों में दलित बन गई है। सामाजिक व्यवस्था के अनुसार स्त्री का कर्तव्य संतान पैदा करना, उनको पालना, घर–गृहस्थी चलाना, सास–श्वसुर, पति, पुत्र आदि की सेवा करना रहा है। महादेवी वर्मा इस संदर्भ में लिखती हैं– "न स्त्री को अपने जीवन का कोई लक्ष्य बनाने का अधिकार है और न समाज द्वारा निर्धारित विधान के विरुद्ध कुछ कहने का वातावरण भी धीरे–धीरे उसे ऐसे ही मूक आज्ञा पालन के लिए प्रस्तुत करता रहा है।"[2] ऐसी स्थितियों में एक मालिक तो दूसरा गुलाम एक सबल तो दूसरा निर्बल रह गया है। अतः स्त्री गुलाम, निर्बल शोषित होकर जीती रही है। जिन कुप्रथाओं, रूढ़ियों, परम्पराओं ने स्त्री को बांध रखा है, उनके साथ संघर्ष है। जिस विवाह नियमावली ने स्त्री को बार–बार छला है उन वैवाहिक मान्यताओं के साथ संघर्ष है। सुरक्षा के नाम पर सतीत्व पतिव्रत, धर्म यौन सुचित्व, शीलत्व आदि को स्त्री पर थोपा गया। स्त्री इस थोपी गठरी को उतार फेंकना चाहती है। स्त्री संघर्ष के लिए खड़ी हो चुकी है उसकी पहचान, स्वाधीनता, अस्मिता व विकास में बाधक साबित हो रही है। उसका यह संघर्ष स्त्री को पुरुष बनने के लिए नहीं बल्कि स्त्री को स्त्री के रूप में स्थापित करने के लिए। मैत्रेयी पुष्पा ने इसमें अहम भूमिका अदा की है।

समकालीन महिला लेखिकाओं में लीक से हटकर लेखन करने वाली लेखिका के रूप में मैत्रेयी पुष्पा का नाम बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है। मैत्रेयी पुष्पा ने ग्रामांचल से अनपढ़, अज्ञानी, स्त्री चरित्रों को स्त्री विमर्श को प्रभाव में लायीं जो कि हिन्दी जगत् के लिए नया था। मैत्रेयी के उपन्यासों में स्त्री अनपढ़ अज्ञानी होती है फिर भी वह अपनी अस्मिता, अधिकारों तथा स्वाधीनता के प्रति सजग एवं जागरुक हैं। 'इदन्नमम्', 'बेतवा बहती रही', 'चाक', 'गुनाह बेगुनाह', 'विजन', 'त्रिया हठ', 'अल्मा कबूतरी' आदि उपन्यासों में स्त्री चरित्र, सामाजिक व्यवस्था से संघर्ष करते नजर आते हैं। मैत्रेयी पुष्पा ने अपने उपन्यासों के स्त्री–चरित्र की संघर्ष के बारे में लिखती हैं– "मुझे गौरव है उस औरत पर जो अनपढ़ होकर भी बुद्धिमान, साधन विपन्नता झेलते हुए भी स्नेहमयी, गूंगी होकर भी कर्मशील असभ्य कलाकार भी सत्यनिष्ठ और सब तरफ से घिरी होकर भी मुक्त होने के लिए कटिबद्ध है।"[3] लेखिका के उपन्यासों में स्त्री पात्रों के सामाजिक संघर्ष के अनेक रूप प्रगट हुए जो इस प्रकार हैं– रूढ़ि प्रथा तथा परम्पराओं से संघर्ष, पारंपरिक नैतिकता से संघर्ष, स्त्री अस्मिता के लिए संघर्ष, पुरुषी मानसिकता से संघर्ष, परित्यक्ता तथा विधवा स्त्री का संघर्ष, सामाजिक उत्थान के लिए संघर्ष, बलात्कार की यातना से पीड़ित स्त्री का संघर्ष, बिरादरी तथा

***शोधार्थी, हिन्दी विभाग, उपाधि महाविद्यालय, पीलीभीत, उ.प्र.।**

पंचायत से संघर्ष करती स्त्री, नई और पुरानी पीढ़ी का संघर्ष आदि संघर्ष मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में दृष्टिगोचर हैं।

भारतीय सामाजिक व्यवस्था रूढ़ि–प्रथा, परम्पराओं से सजी पड़ी है। स्त्री गुलाम की तरह पुरुषों के प्रभुत्व में रहे इसलिए हमारे समाज ने उसे विभिन्न रूढ़ि–प्रथा, परम्पराओं में कस के जकड़ रखा है और ये प्रथायें पीढ़ी–दर–पीढ़ी प्रभावित होती रही हैं। महादेवी वर्मा लिखती हैं– "किसी भी नवीन दृष्टिकोण को समाज और धर्म की स्थिति के लिए घातक समझ लेते हैं और भरसक किसी भी परिवर्तन को आने नहीं देते। हिन्दू समाज ने उसे अपनी प्राचीन गौरवगाथा का प्रदर्शन मात्र बनाकर रख छोड़ा है और वह भी मूक, निरीह भाव से उसका वहन करती जा रही है। शताब्दियों पर शताब्दियाँ बीती चली जा रही हैं, समय की लहरों में परिवर्तन पर परिवर्तन बहते आ रहे हैं परन्तु समाज केवल स्त्री को जिसे दास्तां के अतिरिक्त और कुछ देता नहीं। सीखा, प्रलय के उथल–पुथल में भी शिला के सम्मान स्थिर देखना चाहता है ऐसी स्थिरता मृत्यु का श्रृंगार हो सकती है जीवन का नहीं।"[4] महादेवी वर्मा ने हमारे समाज के बारे में तथा परिवर्तनशीलता को व्यक्त करती है। मैत्रेयी पुष्पा इस परम्परा को तोड़ने की बात करती है– "हमें अपनी निष्ठा और प्रीति भरी वफादारी को भूखे रहकर निभाना होता है। करवाचौथ के साथ पति की उम्र का चक्कर तो बेकार लगा दिया है।"[5] मैत्रेयी पुष्पा ने आत्मकथात्मक उपन्यास 'गुड़िया भीतर गुड़िया' में स्वाअनुभवों को व्यक्त किया है।

नैतिकता की नियमावली ने स्त्री को समर्पणशील, आदर्शवादी, त्यागी तथा देवी बना दिया है। इस समाज व्यवस्था में पुरुष और स्त्री के नैतिकता के अलग–अलग मापदंड हैं। पुरुष नैतिकता के मापदण्डों का निर्माता है। मैत्रेयी पुष्पा इस समाज व्यवस्था पर समाज उठाते हुए कहती हैं– "नैतिकता क्या होती है, क्या नहीं होती, स्त्रियाँ नहीं जानतीं, नैतिकता का दावा करने वाले मर्यादा का मुकुट पहनने वाली स्त्री के संदर्भ में भी यह कथन बाकायदा लागू होता है। इसीलिए कि नैतिकता–अनैतिकता माने जाने वाले नियम और उल्लंघन की सजाएँ मुकर्रर करते समय औरतों की राय नहीं ली गई।"[6] नैतिक–अनैतिक, अपराध–निरापराध, पाप–पुण्य, जिंदगी का जो बोध उसे मिला वह पुरुषों द्वारा निर्धारित था। स्त्रियों के क्रिया–कलापों, इच्छाओं को वैध–अवैध ठहराने वाले पुरुष जो कि नैतिकता का कतई पालन नहीं करते हैं। 'इदन्नमम्' उपन्यास की कुसुमा इसका जीवंत उदाहरण है। यह उपन्यास समाज द्वारा निर्धारित नैतिकता के मापदण्डों पर प्रश्न चिन्ह लगाती है। मैत्रेयी पुष्पा स्त्री की ऐसी छवि को उतारती है जो कि पारंपरिक मान्यताओं को नकारकर प्रगति की ओर अग्रसर रहे– "मुझे स्त्री जीवन की वह छवि पेश नहीं करनी है जो मर्यादाशील, सुचिता और इज्जत के नाम पर स्त्री की नकली तस्वीर है। दमन और दबाव के कारण आँखें झुकाए हुए... आवाज को घुटे हुए... मुझे ऐसी जिंदगी देखकर ठेस लगती है।"[7] इसप्रकार 'झूलानट' की शीला इला चौधरी, 'चाक' की सारंग नैनी, 'इदन्नमम्' की मंदाकिनी, प्रेम बहू, कुसुमा भाभी, 'ऑगन पाखी' की भुवन मोहिनी, आदि को नैतिक मान्यताओं को तर्क की कसौटी पर कसकर उन स्त्रियों के लिए कैसे घातक है यह बताती है।

आज की स्त्री को अनेक सवालों ने उलझा रखा है। जैसे– मैं कौन हूँ? मेरे अस्तित्व की पहचान क्या ? मैं क्या कर रही हूँ ? मेरे जीवन की शिल्पकार मैं ही हूँ? या कोई और? ये प्रश्न इसलिए उठ रहे हैं क्योंकि अपमान, यातना, घृणा को सहन करते–करते उसकी अपनी पहचान गायब होने लगी। स्त्री को एक गुलाम, नौकरानी इत्यादि समझा जाता है जो कि नारी अस्मिता के लिए घातक है। बिना शादी की स्त्री माता–पिता का बोझ समझी जाती है जो विवाहित स्त्री श्वसुर, सास, जेठ, देवर, नंद, पति आदि के द्वारा छली जाती है। विवाहित स्त्री अगर विधवा हो जाती है तो वह समाज की नजर में घृणा, तिरस्कार व अपमान की दृष्टि से देखता है। मैत्रेयी पुष्पा ने ग्रामीण स्त्रियों की स्थिति को देखा और उसकी यातना को अपने उपन्यासों को बढ़े यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया। डॉ. दया दीक्षित ने मैत्रेयी पुष्पा के बारे में लिखा है– "जानने वाले जानते हैं कि मैत्रेयी ने पहले विमर्श को जिया है और बाद में उन्हें लेखन में उतारा। कितने रचनाकार हैं ऐसे जो यह कर पाते हैं। कहीं कथनी और करनी का यह अभेज्ञ ही उनका प्रभावी सृजनात्मक सफलता ओर सुयश का कारण तो नहीं।"[8] अविकसित गाँवों की स्थिति बहुत विचारणीय तथा गंभीर है। मैत्रेयी पुष्पा ने गाँव के विधवा व परित्यक्ता स्त्री की समस्याओं को उजागर कर इन समस्याओं से झगड़ने

के लिए स्त्री को उर्जा प्रदान की है। यह स्त्रियों को पुरुषों के समान नायक नहीं बनाना चाहती अपितु वह उनको जीने के स्वाभाविक अधिकार दिलाना चाहती है। झूला नट की शीलो और चाक की सारंगनैनी के अन्य पुरुषों के सम्बन्धों पर कई आलोचकों ने सवाल खड़े किये थे। इसका उत्तर देते हुए मैत्रेयी ने लिखा है– "सारंग का श्रीधर से प्रेम करना सबको खटका लेकिन किसी ने सारंग के उस चरित्र को नहीं देखा जो जूझना जानती है। सारंगी मेरी सभी रचनाओं के सभी पात्र खासकर महिला पात्र जूझते हैं... मेरी नायिकाएँ कमजोर नहीं हैं। वे सभी अपनी जमीन पर खड़ी होकर लड़ाइयाँ लड़ती हैं जिसमें उनकी जड़े हैं। मेरी नायिकाओं ने अगर देह की परिधि को लांघा है तो सिर्फ देह से सकारात्मक मूल्यों को बचाने के लिए। उन्होंने अपनी देह की कीमत पर सच्चाई को मरने नहीं दिया।"[9] मैत्रेयी इस बात को इसलिए बताती है क्योंकि उनके उपन्यासों की नायिकाएँ शरीर की परिधि को लांघती हैं। हमारे समाज ने विधवा स्त्री को कभी स्त्री नहीं समझा जाता अपितु उसको विधवा पापिनी समझा जाता है। 'गुनाह बेगुनाह' उपन्यास में भी पुलिस स्टेशन में बलात्कार पीड़ित व विधवा महिलाओं पर होने वाले अत्याचार का खुलासा इला चौधरी करती हैं। अतः मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में स्त्री चरित्र जीवन में लाचारी बेबसी नहीं बल्कि जीवन को जीने के लिए हर मोड़ पर संघर्षों के लिए तैयार रहती है। यद्यपि स्त्री पात्रों ने गॉव की नारी संहिता को तोड़ा है जिससे उनको अनेक सजाओं से भी गुजरना पड़ता है फिर भी उन्हें अपने किये पर अफसोस न होकर गर्व है।

इतिहास साक्षी है कि स्त्री को उपभोग्या वस्तु के रूप में देखा जाता रहा है। बलात्कार स्त्रित्व की मौत है। बलात्कार जैसे अनैतिक काम से बहुत सी स्त्रियाँ आत्महत्या तक कर लेती हैं। अगर वह ऐसा नहीं करती तो यही समाज उनको पतित, समझता और हीनता से देखता है। बलात्कार की सजा निर्दोष स्त्री को ही भुगतनी पड़ती है। मैत्रेयी पुष्पा ने मानवीय बर्बरता को पूरे धैर्य के साथ उठाया है। स्त्री बचपन से होकर बुढ़ापे तक किसी–न–किसी रूप में स्त्री को क्रूरता का सामना करना पड़ता है। मैत्रेयी पुष्पा भी इसकी भुक्तभोगी रही है। मैत्रेयी पुष्पा ने अपने उपन्यास 'अल्मा कबूतरी' में कदमबाई का बलात्कार मंशाराम द्वारा किया जाता है। 'इदन्नमम्' उपन्यास में नायिका मंदाकिनी व सगुना भी बलात्कार से पीड़ित चरित्र है। इस प्रकार मैत्रेयी पुष्पा अपने सशक्त पात्रों द्वारा हुआ बलात्कार तथा उसके बाद हुए दुष्परिणाम दिखाती है। एक समय था जब स्त्री को देवी, आदर्श रूप में जाना जाता था। बदलती सोच की बदलती स्त्री ने अपने आपको स्त्री रूप में सिद्ध करने में जुट चुकी हैं।

इस प्रकार मैत्रेयी पुष्पा ने अपने उपन्यासों में चिंतन, मनन, अध्ययन कर स्त्री चरित्रों के संघर्षों को प्रस्तुत किया है। इन्होंने अपने उपन्यासों में ग्रामीण स्त्री चरित्र, आंचलित जनजीवन से संबंधित है। इनके विचार परिवर्तनवादी हैं। लेखिका की कोशिश यह है कि स्त्री के जीवन की त्रासदी व सामाजिक स्थिति में बदलाव आये। इसीलिये ग्रामीण स्तर को केन्द्र में रखकर ऐसे स्त्री चरित्रों को आगे करती हैं जो पढ़े–लिखे स्त्रियों से भी ज्यादा जागरुकता का परिचय देते हैं। मैत्रेयी पुष्पा ने अपने उपन्यासों के द्वारा सृजनात्मक लेखन से परिवर्तन के विचार को पाठकों तक पहुँचाया है। जिस साहित्य में वंचितों, दबे कुचले लोगों की आवाज नहीं सुन पाता उसे साहित्य नहीं माना जाता। मैत्रेयी पुष्पा एक ऐसी लेखिका हैं जिन्होंने एक के बाद एक स्त्री चरित्र पाठकों तक पहुँचाये, जो परम्परागत पुरुषी मानसिकता को नकारकर नई समानता के उच्च विचारों का समर्थन करती है।

सन्दर्भ–सूची :–

1. मैत्रेयी पुष्पा : 'गुड़िया भीतर गुड़िया', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ0 329।
2. महादेवी वर्मा : 'श्रृंखला की कड़ियाँ', राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1942, पृ0 150।
3. मैत्रेयी पुष्पा : 'चिन्हार', आर्य प्रकाशन, नई दिल्ली, 1998, पृ0 143।
4. महादेवी वर्मा : 'श्रृंखला की कड़ियाँ', राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1942, पृ0 148–149।
5. मैत्रेयी पुष्पा : 'गुड़िया भीतर गुड़िया', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ0 130।
6. मैत्रेयी पुष्पा : 'हंस की दावेदारी', 'हंस' नवम्बर 2005, पृ0 सं0 63।
7. मैत्रेयी पुष्पा : 'गुड़िया भीतर गुड़िया', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ0 344।
8. दया दीक्षित : मैत्रेयी पुष्पा सत्य और तथ्य, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, भूमिका से उद्धृत।
9. मैत्रेयी पुष्पा : 'चर्चा हमारा', सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016, पृ0 30।

★

डॉ. धर्मवीर भारती की प्रेरणा-भूमि

पंकज विश्वकर्मा*
डॉ. निशात बानो**

सारांश :– महान या श्रेष्ठ साहित्यकार के उदात्त भावों और विचारों के पीछे, जो महान प्रेरणा होती है उसमें साहित्यकार के परिवेशीय और अनुवांशिकीय दोनों प्रकार के कारकों की भूमिका होती है। साथ ही इस प्रेरणा भूमि के निर्माण में लेखक के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक पृष्ठभूमि की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। जिसके कारण लेखक मानवता को सही दशा एवं दिशा देने की ओर उन्मुख हो पाता है। धर्मवीर भारती प्रायः सभी मामलों में समृद्ध रहे जो भी चुनौतियां उन्हें परिवेश से प्राप्त हुई उन्होंने भारती को और ऊपर उठाया। अपने घर के संस्कार एवं श्रेष्ठ अध्ययन से करुणा, ईमानदारी, सत्यनिष्ठा जैसे मूल्य प्राप्त हुए। इन सभी चीजों ने धर्मवीर भारती के प्रेरणा भूमि को उर्वरता प्रदान की।

कुंजी शब्द :– सत्यनिष्ठा, मानवतावाद, मार्क्सवाद, मनोविश्लेषणवाद, अस्तित्ववाद एवं लघुमानववाद आदि।

प्रस्तावना :– मानवता एवं सभी प्राणियों के लिए संवेदनशील रचनाकारों की सर्जना के पीछे कोई ना कोई प्रभाव एवं प्रेरणा अवश्य होती है। भारती के जन्म के बाद सबसे पहले जन्म देने वाले माता–पिता के संस्कारों का, फिर अध्ययनकाल में अपने मामा श्री अभयकृष्ण जौहरी जी का और तत्पश्चात् अध्यापकों, विद्वानों के सानिध्य का; अनेक प्रकार की भाषा, पुस्तकों, कवियों, लेखको और महापुरुषों का; विभिन्न आंदोलनों, सम्मेलनों आदि का जो प्रभाव पड़ा तथा जैसी प्रेरणाएँ उन्हें मिली, उनसे भारती जी का एक ऐसा समग्र व्यक्तित्व निर्माण हुआ। जिससे उनकी गणना एक कालजयी साहित्यकार के रूप में हुई।

उद्देश्य :– किसी भी साहित्यकार की प्रेरणा भूमि का उसके लेखन में महत्वपूर्ण एवं प्रभावशाली योगदान होता है। एक लेखक की प्रेरणा भूमि उसके लेखन कार्य को अत्यधिक समृद्ध कर देती। प्रस्तुत शोध पत्र में भारती जी की प्रेरणा भूमि के विविध आयामों पर चर्चा की गई है। जिससे यह स्पष्ट हो पाएगा की भारती जी के श्रेष्ठ लेखन में उनकी प्रेरणा भूमि की क्या उपयोगिता रही?

डॉ. भारती के संपूर्ण साहित्यिक रचनाओं के मूल में, वास्तविक परिवेश का सजीव साधारण मध्यवर्गीय मानव है और यही सादे विचारों से युक्त मनुष्य उनका शिक्षक भी हैं और पथ प्रदर्शक भी। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि अपने परिवेश एवं पूर्ववर्ती रचनाकारों से उन्होंने कुछ प्राप्त नहीं किया। भारती का मूल परिवेश इलाहाबाद वर्तमान प्रयागराज है। इलाहाबाद लंबे समय तक साहित्य प्रतिभाओ का केंद्र रहा है। यह स्थान हरिवंश राय बच्चन, महादेवी वर्मा, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' जैसे अद्वितीय साहित्यकारों की कर्मभूमि रहा है। इलाहाबाद के साहित्यिक परवेश ने अनेक रचनाकारों को पुष्पित एवं पल्लवित किया है। धर्मवीर भारती ने इलाहाबाद में जन्म लेकर यहाँ के परिवेश और समाज से सीख कर हिंदी साहित्य में महान योगदान दिया। भारती का साहित्यिक अवदान बहुत बड़ा है। हिंदी साहित्य में कविताओं के सर्जक, श्रेष्ठ उपन्यासकार, नाटककार, विचारक, निबंधकार आदि के रूप में हिंदी साहित्य में सदा याद किए जाते रहे हैं। अपने पूर्ववर्ती महान सर्जकों की परंपरा से उन्हें बहुत कुछ प्राप्त हुआ। भारती को जिन–जिन रचनाकारों से कुछ न कुछ प्राप्त हुआ है वह उसका जिक्र करते हुए लिखते हैं कि–"सरहपा और कबीर की प्रखर वाणी हो, या सूर या घनानन्द की वैष्णवता हो, या जायसी का सहज भाषा प्रवाह हो, इन सबने मेरी लेखनी को संस्कार दिये हैं। तुलसीदास जी से अपनी पटरी बहुत नहीं बैठ पायी। छायावाद का जिक्र ऊपर आया है।

***शोधार्थी, हिंदी विभाग, राजकीय महिला पी.जी. महाविद्यालय, रामपुर 244901 (सम्बद्ध –महात्मा ज्यो..फु. रूहेलखंड वि.वि. बरेली)**

****शोध पर्यवेक्षक, एसोसिएट प्रोफेसर हिंदी विभाग,राजकीय महिला पी.जी. महाविद्यालय, रामपुर 244901 (सम्बद्ध –महात्मा ज्यो..फु. रूहेलखंड वि.वि. बरेली।)**

उसके घटाटोप का त्याग कर जहाँ उसने बहुत सशक्त लेखन दिया है, निराला की 'राम की शक्ति पूजा' की ओजस्विता, पन्त की 'ग्राम्या' का खुला हरियालापन, प्रसाद के नाटकों और 'कामायनी' की इतिहास–दृष्टि, महादेवी की 'सब आँखों के आँसू उजले सबके सपनों में सत्य पला' की उदारता, छायावादोत्तर बच्चन का उद्घोष 'प्रार्थना मत कर मत कर मत कर' और भगवती बाबू की चित्रलेखा का तीखा बुनियादी सवाल– 'और पाप क्या है?' अमृतलाल नागर के कथा–मन्थन का 'अमृत और विष', इन सबसे मैंने आन्तरिक लगाव अनुभव किया है। जहाँ अलगाव अनुभव किया वहाँ निस्संकोच कहा भी है।"

धर्मवीर भारती के अंदर मूल्य विशेषतः –ईमानदारी एवं निर्भीकता, उन्हें अपने पिता श्री चिरंजीवी लाल वर्मा जी से प्राप्त हुए। चिरंजीवी लाल जब अपने पुश्तैनी मकान को छोड़कर आए और अपनी पत्नी से उन्होंने कहा कि 'हम नमक रोटी खायेंगे और उसी में खुश रहेंगे'। उसी समय से धर्मवीर अपने पिता की इस छवि के मुरीद हो गए थे। उन्होंने अपने द्वारा दिये गए एक साक्षात्कार में स्वयं ही कहा है कि– "पिताजी के मूल्य, उनकी प्रखरता, उनकी उदार दृष्टि, उनकी देशभक्ति, उनकी समझौता विहीन ईमानदारी मेरा आदर्श बन गयीं।" भारती नें अपनी उच्च शिक्षा इलाहाबाद विश्वविद्यालय से पूर्ण की। इनके व्यक्तित्व निर्माण में विश्वविद्यालय के वातावरण की महत्वपूर्ण भूमिका रही। विश्वविद्यालय का वातावरण अत्यंत साहित्यिक था। परास्नातक करते हुए इनके सहपाठी थे–जगदीश गुप्त, बिशन नारायण टंडन, गिरधर गोपाल एवं इनसे एक दर्जा पीछे थे–विजयदेव नारायण साही और सर्वेश्वरदयाल सक्सेना। भारती जी की साहित्यिक मंडली यही निर्मित हुई इस मंडली के सदस्य इलाहाबाद विश्वविद्यालय के हिंदी उर्दू विभाग के बरामदे पर इकट्ठा होकर विभिन्न समकालीन एवं साहित्यिक मुद्दों पर विचार विमर्श करते थे। भारती जी को इस बात से अत्यंत पीड़ा होती कि लेखक लोग जो लिखते हैं व्यक्तिगत जीवन में वह अपने लेखकीय विचारों से बिलकुल भी सरोकार नहीं रखते। लिखते समय तो बड़ी–बड़ी बातें करते हैं लेकिन निजी जीवन में उसके ठीक उल्टा कार्य करते है। भारती जी रचनाकारों की इस असंगति से इतने छुब्ध हुए उन्होंने जीवन पर्यंत अपने लेखन में भोगे हुए यथार्थवादी दृष्टिकोण को अपनाया। भारती जी के व्यक्तित्व की एक अन्य विशेषता उनकी निर्णयन क्षमता थी। भारती के निर्णय तर्क की कसौटी पर कसे होते थे। भारती जी विचारों के मतभेद को उतना महत्त्व नहीं देते थे फिर चाहे वह हिंदी साहित्य में मार्क्सवाद का विवाद हो या कहानी आंदोलन का। सभी विवादों पर तार्किकता के साथ तटस्थ रहे। इस प्रकार विविध कवियों, चिंतकों ओर लेखकों के अध्ययन एवं चिंतन–मनन से धर्मवीर जी की साहित्यिक पृष्ठभूमि तैयार हुई।

धर्मवीर भारती का जन्म २५ दिसंबर १६२६ को हुआ। इस समय भारत गुलामी की जंजीरों में जकड़ा हुआ था। इस गुलामी से छुटकारा पाने के लिए क्रांतिकारियों द्वारा विभिन्न आंदोलन किए जा रहे थे। भारतीय क्रांतिकारी दो धाराओं में विभक्त थे– 'नरम दल' एवं 'गर्म दल'। धर्मवीर पर दोनों ही विचारधाराओं का प्रभाव पड़ा। बाल्यकाल में वह भगत सिंह एवं चंद्रशेखर जी से इतने अधिक प्रभावित हुए कि चार वर्ष में ही क्रांतिवीर चंद्रशेखर की भाँति कमर में पिस्तौल धारण करके घूमा करते थे। कभी–कभी क्रांतिकारियों का अभिनय करते हुए अपने आस–पड़ोस में भी चले जाते थे। जब भारती की आयु सोलह वर्ष हुई, उसी समय १६४२ के भारत छोड़ो आंदोलन का सूत्रपात हुआ। इस आंदोलन में भारती ने भाग लिया। यद्यपि इस आंदोलन की शुरुआत गांधीजी के द्वारा हुई किंतु भारती जी ने इसे 'नायक हीन' क्रांति का नाम दिया। इसके संदर्भ में भारती जी अपने ग्रंथ 'मानव मूल्य और साहित्य' में लिखते हैं कि– "यह नायक हीन क्रांति थी, जिसका दायित्व तक लेने को नायक तैयार नहीं होता था–वह तो सामान्य जन का अपना विक्षोभ था, अपनी नियति की समस्त प्रक्रिया को, सारी बागडोर को आगे बढ़ कर उसने अपने हाथों में ले लिया था– हे और वह लघु क्रांति चाहे राजनीतिक स्तर पर कुचल दी गई थी– हमारी चेतना और हमारे भावबोध में पलती रही।" 1942 के आंदोलन को 'नायक हीन' कहना भारती जी की राजनैतिक परिपक्वता को दर्शाता है क्योंकि वास्तव में नायक मात्र प्रतीक होता है, जबकि असली शक्ति जनता के हाथों में होती है।

भारती जी ने राजनीति के क्षेत्र में अनेक विचारधाराओं एवं दार्शनिक सिद्धांतों यथा–'मार्क्सवाद', 'अस्तित्ववाद', 'लघुमानववाद' और 'मानवतावाद' आदि की श्रेष्ठ चीजों को आत्मसात करने में कोई भी कसर नहीं छोड़ी। इसके साथ ही उन्होंने कभी किसी विचारधारा का अंधा समर्थन या अंधविरोध नहीं किया, बल्कि

विचारधारा के विरेचन में नीर–क्षीर विवेक का इस्तेमाल किया। भारती जी मार्क्सवाद से प्रभावित अवश्य थे किंतु वर्ग संघर्ष को भी आंशिक रूप से ही स्वीकारते थे। धर्मवीर के अनुसार स्वतंत्रता का अर्थ यह नहीं कि उसे मूलभूत चीजों की प्राप्ति हो जाए बल्कि स्वतंत्र होने का अर्थ है–कुरीतियों को माँ खोखली परंपराओं, रूढ़ियों आरती से मुक्ति।

धर्मवीर जी की राजनीतिक स्पष्टता का बीज बचपन में ही पड़ गया था। जिसे भारतीय आंदोलनों ने उर्वरता प्रदान की। भारती जी के स्वतंत्रता पूर्व राजनीतिक दृष्टिकोण की परिपक्वता को उनकी कृति 'मुर्दो का गांव' में हम देख सकते हैं। जिसमे उन्होंने ब्रितानिया हुकूमत गे शोषणकारी एवं अमानवीय रवैये को चिन्हित किया जो की तत्कालीन बंगाल के अकाल ग्रस्त लोगों की करुण कथा व्यक्त करता है। स्वतंत्रता पश्चात भारती के दृष्टिकोण में परिवर्तन आया। इसका कारण साफ था चूँकि गोरों का शासन समाप्त हो चुका था और काली चमड़ी (भारतीयों) का शासन शुरू हो चुका था। इस समय की राजनैतिक बंदरबांट और मूल्यहीनता को उन्होंने अपनी कृति 'अंधायुग' में संजोया है।

हिंदी साहित्य के मूर्धन्य पंडितों ने यह माना है कि 'साहित्य समाज का दर्पण' होता है। प्रत्येक रचनाकार की कृतियों में उसका युग, सामाजिक दशा, प्रथाएँ एवं प्रवृतियों की छाप विद्यमान होते हैं। सच कहें तो इनके अभाव में लेखक द्वारा लिखा गया साहित्य कल्पना से युक्त मालूम पड़ता है। धर्मवीर जी के लेखन के आरंभिक वर्षों में भारतीय समाज के अंदर गरीबी, शोषण, अकाल, बेरोजगारी, पाखंड, कुरीतियां, विधवाओं की दयनीय अवस्था, सांप्रदायिकता, वर्णभेद एवं अंग्रेजी हुकूमत का वर्चस्व था। भारती जी अपने जन्म स्थान इलाहाबाद के अतरसुइया मुहल्ले और गलियों में यही सब देखकर बड़े हो रहे थे, ऐसी अवस्था में उन पर इन सब घटनाओं का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। इन सब समस्याओं से उनके संवेदनशील मन पर गहरा प्रभाव पड़ा। जिसके फलस्वरूप उनके साहित्य में यह चीजें प्रखर रूप से बार–बार आई। उन्होंने 'मुर्दो का गांव' में जहाँ अकाल समस्याएं, साम्प्रदायिकता एवं देह व्यापार का उल्लेख किया 'वही बंद गली का आखिरी मकान' ने भारतीय समाज में फैली विडंबनाओं जैसे अनमेल विवाह, विधवा विवाह एवं टूटते रिश्तों का जिक्र किया। धर्मवीर जी ने अपने बचपन से ही आर्थिक तंगी देखी थी। जब भारती जी कक्षा नवम के विद्यार्थी थे, उसी समय उनके पिता का स्वर्गवास हो गया। पिता के निधन के बाद भारती जी और उनकी माँ पर दुखों का पहाड़ टूट पड़ा एवं गृहस्थी की जिम्मेदारी उनके कंधों पर आ गई। अपनी उच्च शिक्षा भारती जी ने अपने मामा अभय कृष्ण जौहरी के सानिध्य में रहकर पूर्ण की। पिता के जीवित रहते हुए भारती जी को श्रेष्ठ मूल्य (यथा– सत्यनिष्ठा, करुणा, ईमानदारी आदि) व संस्कार मिले तो मृत्यु उपरान्त विरासत में एक जर्जर आर्थिक ढाँचा। आर्थिक परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए माँ छोटी बहन को लेकर गुरुकुल में नौकरी करने चली गई। ऐसे कठिन समय में भारती जी के मामा और मामी ने उन्हें संरक्षण व स्नेह दिया।

अपनी उच्च शिक्षा भारती ने अपने मामा अभय कृष्ण जौहरी के सानिध्य में रहकर पूर्ण की। प्रयागराज के कायस्थ पाठशाला इंटर कॉलेज से १९४२ में इंटरमीडिएट की परीक्षा उत्तीर्ण की। महात्मा गाँधी के आह्वान पर१९४२ के आंदोलन में भाग भी लिया, जिसके फलस्वरूप एक वर्ष के लिए शिक्षा ग्रहण करने का कार्य अवरुद्ध हो गया। बयालीस का आंदोलन अपने पूर्ण उद्देश्य में विफल रहा। एक वर्ष बाद जब भारती जी का विश्वविद्यालय खुला तब आंदोलन में सक्रिय रहने के कारण संचित लघु पूंजी भी समाप्त हो चुकी थी। इस घटना का उल्लेख करते हुए भारती जी कहते हैं कि–"आंदोलन विफल हुआ, यूनिवर्सिटी फिर खुली, पर अब मेरे पास पैसे न थे की सारी फीस दे पाता। ऑर्डिनेंस डिपो छिउकी में नौकरी की ताकि अगले साल दाखिले कि पैसे जमा कर सकूँ।" भारती के ऊपर गरीबी की छाया और असमय पिता के मृत्यु ने उनको बचपन से ही स्वावलंबी एवं आत्मनिर्भर बना दिया था। छात्र जीवन से ही भारती को ट्यूशन पढ़ाकर अपने अध्ययन खर्च को निकालना पढ़ता था। भारती जी को पढ़ाई का बहुत शौक था जब भी उन्हें मौका मिलता तो पढ़ते फिर वह चाहे– 'पाश्चात्य साहित्य' हो या 'भारती साहित्य'। किताबों की अनुपलब्धता और अपनी व्यस्तता को भारती ने अपने एक लघु संस्मरण 'मेरा छोटा सा निजी पुस्तकालय' के अंतर्गत बड़े ही मार्मिक शब्दों में व्यक्त किया है। इस संस्मरण में भारती जी यह कहते हैं कि– "जिस दिन कोई उपन्यास

अधूरा छूट जाता, उस दिन मन में कसक होती कि काश, इतने पैसे होते कि सदस्य बनकर किताब इश्यू करा लाता, या काश, इस किताब को खरीद पाता तो घर में रखता, एक बार पढ़ता, दो बार पढ़ता, बार–बार पढ़ता पर जानता था कि यह सपना ही रहेगा, भला कैसे पूरा हो पाएगा!" स्नातक तक की पढ़ाई धर्मवीर की ट्यूशनों सहारे चली। एम.ए. की पढ़ाई का खर्च निकालने के लिए भारती जी एक सौ रुपये प्रतिमाह 'अभ्युदय' पत्रिका में सहकारी संपादक के रूप में कार्य किया। 'संगम' पत्रिका में १६४८ में सहकारी संपादक नियुक्त हुए। इस समय संगम पत्रिका के प्रमुख संपादक का कार्य श्री इलाचंद्र जोशी जी कर रहे थे। दो वर्षों तक संगम में कार्य करने के पश्चात् 'हिंदुस्तानी अकादमी' में उप सचिव का कार्य किया। इसके पश्चात इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अध्यापन का कार्य आरंभ किया जो कि १६६० तक चला। अंततः 'धर्मयुग' के प्रधान संपादक के रूप में बम्बई आए। जब भारती धर्मयुग के प्रधान संपादक बने तब उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से दो वर्ष की छुट्टी ली ताकि आवश्यकता अनुसार वह पुनः अपने पद पर लौट सकें लेकिन भविष्य में उन्हें इसकी जरूरत नहीं पड़ी मुंबई आने ओर धर्मयुग का संपादक बनने पर भारती जी की आर्थिक स्थिति में सुधार व स्थिरता आई।

किसी के समग्र व्यक्तित्व निर्माण में घरेलू वातावरण की बड़ी भूमिका होती है। भारती के घर में आर्य समाजी वातावरण था अतः उन पर प्रारम्भ में आर्य समाजी दर्शन का ठीक ठाक प्रभाव रहा। भारती के अध्ययन के दौरान उनके ऊपर वैष्णव धर्म का प्रभाव पड़ा। वैष्णव धर्म के मानने वाले लोग जीवन में शुभ–अशुभ, पाप–पुण्य आदि बातों को विशेष महत्त्व देते हैं। भारती जी का चिन्तन इन तत्वों से प्रभावित है। धर्म का अध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक चिंतन के पीछे श्रीमद्भागवत गीता का भी योगदान है जिसे हम उनकी कृति 'अंधायुग' में देख सकते हैं। इसके अतिरिक्त धर्मवीर भारती ने अपने से पूर्व के दर्शन एवं मनोविज्ञान यथा– बौद्ध दर्शन, जैन दर्शन, सूफी दर्शन, मानवतावाद, मार्क्सवाद, मनोविश्लेषणवाद आदि; एवं अपने समकालीन दर्शन एवं मनोविज्ञान जैसे– अस्तित्ववाद एवं लघुमानववाद इत्यादि से समय समय पर प्रभावित होते रहे। लेकिन उन्होंने कभी किसी दर्शन या विचारधारा का अंधानुकरण नहीं किया बल्कि, स्वतंत्र एवं निष्पक्ष मूल्यांकन किया।अपनी विचारधारा या दर्शन के प्रति अज्ञेयता व्यक्त करते हुए धर्मवीर भारती जी कहते हैं कि– "आप की कहानियों का जीवन दर्शन क्या है? उनमें किसकी प्रति प्रतिबद्धता है? आपके लेखन का वर्ग चरित्र क्या है?आदि–आदि भारी भरकम सवालों का जवाब देना मुझे बिल्कुल नहीं आता, सच पूछिए तो अपने साहित्यकार या अपने साहित्य के बारे में कुछ भी बात करते समय मेरा गला सूखने लगता है, जबान तालू से चिपक जाती है। अपने बारे में मैं शब्दों का अत्यंत विपन्न निर्धन हूँ।"

उपरोक्त विवेचन के आधार पर हम सार रूप में यह कह सकते हैं कि भारती जी को आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक रूप से जो भवभूमि प्राप्त हुई उससे निर्मित विचार किसी एक सांचे में कैद नहीं रहे अपितु परिस्थितियों के अनुसार बदलते चले गए ; शायद इसीलिए प्रत्येक वर्ग के पाठकों में धर्मवीर भारती लोकप्रिय हैं। धर्मवीर भारती की प्रेरणा भूमि में जो चुनौतियां थीं उन्होंने उनके व्यक्तित्व को और भी सशक्त बनाया।

संदर्भ–सूची :–

1. भारती, पुष्पा– संपादक, 'धर्मवीर भारती की साहित्य साधना', भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशक, पृष्ठ संख्या–७४२।
2. भारती, पुष्पा–संपादक, 'धर्मवीर भारती से साक्षात्कार', वाणी प्रकाशन, पृष्ठ संख्या–१०।
3. बांदिवडेकर, चंद्रकांत – संपादक–, 'धर्मवीर भारती ग्रंथावली–५',, वाणी प्रकाशन, पृष्ठ संख्या–२४३।
4. भारती, पुष्पा– संपादक, 'साँस की कलम से', भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशक, पृष्ठ संख्या–२०।
5. भारती, धर्मवीर– 'मेरा निजी छोटा सा पुस्तकालय', एनसीआरटी प्रकाशन, पृष्ठ संख्या–३२।
6. भारती, पुष्पा– संपादक, 'साँस की कलम से', भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, पृष्ठ संख्या–१७।
7. अमरनाथ – 'हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली', राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या–२६७।
8. सिंह, मंजुलता–'हिन्दी उपन्यासों में माध्यम वर्ग', आर्या बुक डिपो प्रकाशक, पृष्ठ संख्या –३६२।
9. आहूजा, राम–'भारतीय समाज', रावत पब्लिकेशन प्रकाशक, पृष्ठ संख्या –३५।

सोहनलाल द्विवेदी के काव्य में स्वतंत्रता-आंदोलन के वैचारिक-पहलू

सत्येन्द्र कुमार द्विवेदी*
डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी**

भारतवासियों के लिए स्वाधीनता आंदोलन एक धरोहर के रूप में है। आज भले ही हम स्वतंत्र एवं भारत के संविधान के द्वारा शासित हैं। परन्तु हमें नहीं भूलना चाहिए कि हमारे पूर्वजों ने अपने प्राणों की आहुतियां दी थी। भारत के स्वाधीनता आंदोलन ने हमारी सभ्यता, संस्कृति एवं अस्मिता का निर्माण किया है।

देश की आजादी के पचहत्तर वर्ष हो रहें हैं। इसी उपलक्ष्य में अमृत महोत्सव मनाया जा रहा है। जिस समय स्वाधीनता आंदोलन प्रगति पर था; उस समय हिन्दी भाषा के साहित्यकारों ने राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना का प्रचार–प्रसार किया था। उन राष्ट्र चेता साहित्यकारों में एक नाम सोहनलाल द्विवेदी का था।

स्वतंत्रता आन्दोलन के विविध आयाम कवि की अनेक रचनाओं एवं कविताओं में स्पष्ट हुए हैं।जिन काव्य संग्रहो में 'भैरवी','प्रभाती','पूजागीत', 'युगाधार','चेतना', 'वासवदत्ता' एवं 'बासन्ती' आदि। 'भैरवी 'नामक कविता ने राष्ट्रीय आंदोलन को सशक्त बनाने तथा जन–जागरण में अभूतपूर्व योगदान दिया है।उस समय आजादी के दीवानों का कण्ठहार बनी थी, ये 'भैरवी' की पंक्तियां "वन्दिनीमां को न भूलों, राग में जब मत्त झूलों। हो जहां बलि शीस अगणित, एक शिर मेरा मिला दो। "भैरवी" के गीत उस युग के इतने अनुकूल थे कि जन–जन के कण्ठ में वास करने लगे। "भैरवी" के गीतों की लोकप्रियता ने आन्दोलन में तीव्रता लाने में बहुत सहायता की है।"[1]

कवि की उपर्युक्त रचना प्रथम काव्य संग्रह है। जिसमे राष्ट्रीय भावना ओतप्रोत है। "भैरवी" के द्वारा पं'सोहनलाल द्विवेदीने राष्ट्रीय जागरण का शंखनाद इस प्रकार किया है–

"सुना रहा हूं तुम्हें भैरवी,
जागो मेरे सोने वालों।"[2]

आपकी अनेकों कविताओं में स्वाधीन चेतना विद्यमान है। 'पथगीत' नामक कविता में सत्याग्रह एवं मातृभूमि के प्रति समर्पण की अनुगूंज सुनायी देती है–

"सन्तान शूरवीरों की है, हम दास नहीं कहलाएंगे।
या तो स्वतंत्र हो जाएंगेया रण में मर मिट जाएंगे।।"[3]

कवि के स्वाभाव में बालपन से ही स्वतंत्रता आंदोलन के बीज अंकुरित हो ए थे।आप जब विद्यार्थी थे तो इनके स्कूल में में प्रिंस आफ वेल्स के भारत आगमन पर मिठाई बांट रही थी। जिसका कवि ने विरोध इस प्रकार किया था दृ"मुझे नहीं चाहिए मिठाई मास्टर साहब, गुलामी के लड्डू से आजादी के चने चबाना बेहतर है।और यह कहकर सैकड़ों छात्रों को साथ लेकर फतेहपुर की गलियों एवं बाजारों में जुलूस का नेतृत्व करने लगेःउनकी वाणी गूंज रहीं थीं– "माता का आंचल लाल करो, हड़ताल करो, हड़ताल करो।"[4]

कवि महात्मा गांधी जी के अहिंसात्मक जन–क्रान्ति से बहुत प्रभावित थे। उनकी देश सेवा तथा सामाजिक श्रम से कवि का मन द्रवित हो जाता था। कवि ने 'युगावतार' नामक काव्य संग्रह में अनेकों कविताएं गांधी जी की जन–सेवा, त्याग एवं बलिदान की भावना पर लिखी है। उनमें से एक कविता 'बापू के प्रति द्रष्टव्य है–

***शोधार्थी, हिन्दी विभाग, मां. गा. चि. ग्रा. विश्वविद्यालय, चित्रकूट।**
****एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, मां. गा. चि. ग्रा. विश्वविद्यालय, चित्रकूट।**

"दुर्बल दलितों के क्रान्ति–घोष, तुम पद दलितों के शक्ति–कोष।
मृत जीवन के तुम जन्म प्राण, तुम नव संस्कृति के नव विधान। ।"5

सोहनलाल द्विवेदी उच्च शिक्षा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी से प्राप्त की है। स्नातक पास करने के बाद अपने अग्रज के निर्देशानुसार विलायत जाकर बैरिस्टरी की पढ़ाई के विषय में सोच रहे थे। इसी विषय पर मालवीय जी से परामर्श एवं आशीर्वाद प्राप्त करने पहुंचते हैं दृ"मालवीयजीने कहा,जो देश संसार का गुरु रहा हो उस देश के निवासी विद्यार्थीयोंसे क्या शिक्षा गृहण करेंगे। स्वयं अंग्रेज हों जाएंगे।'''' विलायत जाने का विचार त्याग दो'''। पढ़ लिख कर देश सेवा करो।बैरिस्टर बन कर पैसा पैदा करने वाले बहुत हैं।6

सन् 1942 ई. में जब गांधी जी ने 'करो या मरो' का नारा दिया तब आपने लिखा था–

"चल पड़े जिधर दो डगमग में, चल पड़े कोटि पग उसी ओर।
पड़ गयी जिधर भी एक दृष्टि, गड़ गये कोटि दृग उसी ओर।।"[7]

कवि द्वारा प्रकाशित 'चेतना' नामक काव्य संग्रह में भारत के नव निर्माण की लालशा दिखायी देती है। वर्षो की गुलामीसहने के कारण कवि का मन आजादी के लिए बेचैन हो रहा है और साथ में कवि को स्वाधीनता की ऊषा काल का स्वप्न भी दिखाई देने लगा है।इस विषय पर 'चेतना' नामक काव्य संग्रह की कविता इस प्रकार है दृ

"यह स्वतंत्रता की अरुण ऊषा, है लगी क्षितिज पर मुस्कानें।
जो सपने थे इस जीवन के, वे लगे सत्य बन इठलाने।।....

जिन तरु लतिकांओ को सींचा, उन पर फूल फल लगे आने।।[8]

कवि भारत की स्वतंत्रता के पश्चात वर्गहीन समाज की कल्पना करता है। इस भाव की अभिव्यक्ति कुछ इस प्रकार है–

"यह वर्ग हीन नव स्वर्ग आज, इस भूतल में रहा जन्म।
जिसमे बसने के लिए देवता, लगे आज फिर ललचाने।।"[9]

कवि द्वारा लिखित 'पूजागीत',कव्य–संग्रह मातृभूमि पर समर्पित कृति है। जिसमे कवि ने भारत मां की वन्दना की है। साथ में कवि ने मां से नये रुप की आकांक्षा भी रखता है। जिससे भारतीयों को नयी चेतना प्रदान हो– "निराशा की निविड निशा में कवि भारत में नयी शक्ति नव साहस तथा नव स्फूर्ति का संचार कर,नयीऊषा का आह्वान करके भारत मां के भाल को गौरव से दीप्त कर देना चाहता है–

तुम उठो माँ! पा नवल बल, दीप्त हो फिर भाल उज्जवल।
इस निविड नीरव निशा में, किस ऊषा की रश्मि लाऊं।।"[10]

देश की गरीबी एवं तंगहाली तथा बदहालीको देखकर कवि को लगता है; किभारत मां अपने पुत्रों के दुःखो की वेदना को सुनकर व्याकुल हैं। ऐसी तस्वीर को सोचकर कवि वेदना गीत गा उठता है–

"अन्नपूर्णे ! तुम क्षुधित हो,
फिर क्यों न मानस मथित हो।
देवि! यह दुर्दैव कैसा?
आज तुम रजवासिनी।
आज तुम कंगालिनी,
है फटा अंचल लहराता।
बन दरिद्र ध्वजा फहराता,
रत्न आभरणें बनी तुम,
आज तुम भिखारिणी।।"[11]

कवि भारत मां की इस दुर्दशा से चिंतित है। वह सोचता है, यही मातृभूमि जो एक समय रत्नों एवं अन्न से परिपूर्ण थी। आज वह पराधीनता के कारण कंगाल तथा बेहाल है। इसलिए कवि अति शीघ्र स्वाधीनता के सूरज को उदित होते देखने का आंकाक्षी है।

निष्कर्षतः सोहनलाल द्विवेदी एक 'उदीयमान' राष्ट्र कवि थे। उनकी अनेक रचनाओं मेंस्वतंत्रता आंदोलन के विविध आयाम दृष्टिगत होते हैं जैसे– राष्ट्रीवादी विचारधारा, मातृभूमि के प्रति समर्पण की भावना, अहिंसात्मक जन–क्रान्ति, सांस्कृतिक दृष्टि, तथा अतीत के गौरव गान की भावनास्पष्ट दिखाई देती है। मजबूत आर्थिक, सामाजिक सम्पन्नता के बजाय देश सेवा एवं समाज कार्य के लिए तत्पर रहे हैं। गांधी जी के नमक कानून के विरोध में तथा उनके पद चिह्नों पर चलते हुए स्वयं कई लोगों के साथ मिलकर नमक बनाने का दुष्कर प्रयास किया। जिसके लिए उन्हें जेल भी जाना पड़ा था। कवि सोहनलाल द्विवेदी के पास देश सेवा का ऐसा जज्बा था कि कोई भी साथ न दे फिर भी हम सेवा कार्य करते रहेंगे। इस विचारधारा पर कविता 'बिगुल' की ये पंक्तियां इस प्रकार हैं–

"मुझे न चाहिये साथी संगी,
मुझे न चाहिये अतुलित धन
साथ रहे पेड़ों पत्तो का,
शीतल बहती रहे पवन।
लिखूं कर्मवीरों कीगाथा। ।"[12]

विवेच्य कवि सशस्त्र क्रांति की अपेक्षा अहिंसावादी दृष्टि के पोषक रहे हैं। इनकी रचनाओं में गांधीवादी विचारधारा अधिकायत स्पष्ट होती है।

सन्दर्भ–सूची :–

1. डॉ०वियोगी लीलाधर'राष्ट्रीय चेतना के कवि सोहनलाल द्विवेदी' अनिल प्रकाशन संस्करण 2018पृष्ठ 45।
2. वहीं पृष्ठ 49।
3. वहीं पृष्ठ 46।
4. अमरेश अमर बहादुर सिंह 'काव्यके इतिहास पुरुष सोहनलाल द्विवेदी' हिन्दी प्रचारक संस्थान वाराणसी संस्करण 1971 पृष्ठ 285।
5. द्विवेदी सोहनलाल 'युगाधार'अवध पब्लिसिंग हाउस लखनऊ प्रथम संस्करण 1944 पृष्ठ 2।
6. अमरेश अमर बहादुर सिंह 'काव्य के इतिहास पुरुष सोहनलाल द्विवेदी' हिन्दी प्रचारक संस्थान वाराणसी संस्करण 1971 पृष्ठ 40।
7. राष्ट्र बंधु'राष्ट्कवि सोहनलाल द्विवेदीउत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान प्रथम संस्करण 2005 पृष्ठ 16।
8. द्विवेदी सोहनलाल, चेतना'इण्डियन प्रेस प्रयाग प्रयाग प्रथम संस्करण 1948 पृष्ठ 39।
9. वहीं पृष्ठ 30।
10. डॉ० वियोगी लीलाधर'राष्ट्रीय चेतना के कवि सोहनलाल द्विवेदी' संस्करण 2018 पृष्ठ 38।
11. द्विवेदी सोहनलाल 'पूजागीत' इण्डियन प्रेस प्रयाग संस्करण 1944 पृष्ठ 29।
12. डॉ० वियोगी लीलाधर 'राष्ट्रीय चेतना के कवि सोहनलाल द्विवेदी' अनिल प्रकाशन संस्करण 2018 पृष्ठ 38।

★

स्त्रीवादी उपन्यास : तृन धरि ओट

नविता भारद्वाज*

हिन्दी साहित्य में अनामिका एक समादृत लेखिका हैं। एक कवि के रूप में उन्हें जितना जाना जाता है, उतना ही गद्यकार के रूप में भी। साहित्य की अनेक विधााओं पर उनकी पकड़ है– कविता, कहानी, उपन्यास, डायरी, जीवनी, संस्मरण, के साथ–साथ आलोचना और निबंध। अब तक के उनके प्रकाशित उपन्यासों में– 'पर कौन सुनेगा', 'मन कृष्ण मन अर्जुन', 'अवांतर कथा', 'दस द्वारे का पींजरा', 'तिनका तिनके पास', 'बिल्लू शेक्सपीयर' 'आइना साज' हैं, अद्यतन उपन्यास में, 'तृन धरि ओट'(2023) है।

तृन धरि ओट एक नायिका प्रधान उपन्यास है जिसके केन्द्र में मिथिला की राजकुमारी– सीता हैं। सीता का जिक्र आते ही हमारे मस्तिष्क में जो छवि बनती है, उसकी कुछ रूप रेखा इस तरह है– मूक, आज्ञाकारिणी, पति की अनुगामिनी– पीछे–पीछे चलने वाली, धरती–सी सहिष्णु, सदा सहने वाली, रोती–बिसूरती, पति की गति में ही अपनी गति मानने वाली– एक पतिव्रता स्त्री। रामानंद सागर ने अपनी रामायण में जिस सीता की छवि को दिखाया वह उपर्युक्त विवरणों से कुछ भिन्न नहीं हैं। अनामिका की तृन धरि ओट में चित्रित–वर्णित स्त्री लोकप्रचलित सीता से भिन्न पढ़ी–लिखी होने के साथ हर छोटे–बड़े निर्णय लेती है, वह स्वावलंबी है, पति की अवमानना से क्रोधित हो उसका परित्याग करती है। वह नई स्त्री की तरह समय की नजाकत को पहचानती हुई– आवश्यकता अनुसार बोलती हैं, जहां चुप रहने से काम बन रहा हो वहां चुप रहती हैं। राम को भी प्रश्नांकित करती हुई उन्हें पत्र लिखती हैं– और राम को अपने लिए गए निर्णय पर पुनर्विचार करने को कहती हैं, ''एक छोटा–सा निवेदन यह था कि पहाड़ों से घिरे जिस चम्पकारण्य में आपने मुझे छोड़ा है, वहां दस्यु या राक्षस–प्रकोप के शमन के लिए और सैनिक टुकड़ियां आप ने भेजें, पूरा जनजीवन अस्त–व्यस्त हो जाता है। मैं शान्ति और प्रेम के स्त्रीसम्मत उपाय इनके बच्चों पर आजमाना चाहती हूं। सुशिक्षा की आंच में ही इनकी हिंसक वृत्तियां हमेशा के लिए गलेंगी।''[1] वे आगे लिखती हैं, ''युद्ध और हिंसा तात्कालिक शमन भले कर दें दुर्वृत्तियों का, उसका दुष्चक्र नहीं तोड़ पाते! असल समाधान तो बच्चों का संस्कार–प्रक्षालन है, जो अच्छी परवरिश और सद्शिक्षा से ही सम्भव है।''[2] अनामिका की स्त्री दृष्टि करुणासम्बलित न्याय दृष्टि पर विश्वास रखती हैं। उपर्युक्त उद्धरणों से भी अनामिका की सीता की स्त्री दृष्टि का पता चलता है। स्त्री दृष्टि मातृसम्बलित दृष्टि होती है जो करुणासम्बलित न्याय दृष्टि पर विश्वास करती है। वह भेदभाव की संरचनाओं को तोड़ने की बात करती है। हर प्रकार के पूर्वग्रहों को तोड़ना उसका मूल ध्येय होता है। स्वयं सीता स्त्री दृष्टि के सम्बन्ध में लव–कुश को पत्र के माध्यम से बताती है, ''जहां कहीं किसी को उदास देखना, वहीं ठहर जाना। उसके दुःख दूर करने में लग जाना, तुम्हारे सब दुःख स्वयं दूर हो जायेंगे। दुनिया को मां की ही आंख से देखना हमेशा। धरती की मां बनकर जीना। सब उसके संसाधनों के दोहन में लगे हैं। इस ओर सजग रहना कि कोई किसी पर हावी न हो– सबको अपनी सम्भावनाएं मुकुलित करने के अवसर मिलें, संसाधनों का वितरण सम्यक् हो और धरती के कोष से जितना लिया जाये, उससे दूना लौटाया जाये।''[3]

सीता–राम के विलगाव की घटना को आज तक राम की सीता की अवमानना माना गया, पर अनामिका की सीता– यह स्पष्ट करती है कि यह सीता और राम दोनों का ही निर्णय था– एक–दूसरे से अलग होने का। आज की युवापीढ़ियों को भी इससे प्रेरणा लेनी चाहिए– एक–दूसरे से अलग रहकर भी एक–दूसरे के लिए आंखों में सम्मान का भाव बनाए रखना आसान नहीं होता। साथ ही एक–दूसरे को कठिनतम क्षणों में सलाह–मशवरा देना भी आसान नहीं होता। अनामिका की सीता इस कार्य को पूरी दृढ़ता से अनुभव के आलोक में करती हैं। ध्यान देने योग्य बात यह है उक्त उपन्यास में सीता जंगल में आदिवासी बच्चों के लिए एक पाठशाला खोलती हैं और मातंगी के साथ मिलकर उसे चलाती हैं, उनका मानना है कि

---

*शोधार्थी, हिंदी विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय रोहतक।

बच्चों का मन कोमल होता है, उन्हें जैसी शिक्षा दी जाएगी वो वैसे ही ढलेंगे। फिर शिक्षित बच्चे अपने अभिभावकों की दुर्वृत्तियों का धीरे–धीरे खत्म करेंगे। अनुभव के आलोक में ही वह राम को पत्राचार कर बार–बार हिंसा करने के रोकने की बात करती हैं क्योंकि बच्चों के कोमल मन में इसका विपरीत प्रभाव पड़ेगा– 'अन्याय का प्रतिकार अन्याय' बैठ जाएगा। इस सिद्धांत पर तो पूरी दुनिया में अराजकता फैल जाएगी।

अनामिका की सीता स्त्रीवादी चेतना से परिपूर्ण है, वह अच्छी तरह जानती है– पुरुषों के मन मांझने की आवश्यकता है– धीरे–धीरे ही यह पूर्वाग्रह खत्म हो सकते हैं, अचानक तो जादू या चमत्कार होता है। फिर वह अच्छी तरह जानती हैं, ''अन्याय का प्रतिकार अन्याय नहीं होता।''[4] उदाहरण स्वरूप उक्त उपन्यास में शूर्पणखा का प्रसंग देखा जा सकता है। शूर्पणखा द्वारा राम और लक्ष्मण को किये गये प्रणय निवेदन से क्रोधित लक्ष्मण ने उसकी नाक काट ली। इस सन्दर्भ का स्मरण दिला सीता शूर्पणखा को भी एक पत्र लिखती हैं, ''कितने कामना–कातर पुरुषों के प्रणय–निवेदन, अपात्रों के प्रणय–निवेदन हर स्त्री को आठ से अड़तीस बरस तक झेलने होते हैं, अगर वह सबके नाक–कान काटती चले तो अधिकतर पुरुष नकटे ही मिलें।''[5] यह सीता का प्रतिवाद ही है लक्ष्मण के प्रति जो लक्ष्मण के कुकृत्य की निंदा करता है। आज भी स्त्री के प्रति अपराधों की दर दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है, उस अनुपात में क्या पुरुषों का सजा मिल पा रही है। तसलीमा नसरीन एक चैंकाने वाला आंकड़ा सामने रखती हैं, ''भारत में हर 26 मिनट में एक लड़की को यौन–जबरदस्ती का शिकार होना पड़ता है। हर 34 मिनट में एक औरत का बलात्कार होता है, हर 42 मिनट में औरत लांछन सहती है। हर 43 मिनट में एक औरत का अपहरण होता है। प्रति 93 मिनट में एक औरत कत्ल कर दी जाती है।''[6] यह तो सरकारी आंकड़े हुए कितनी घटनाएं तो दर्ज ही नहीं हो पातीं। सारा संसार रावण के द्वारा सीता के अपहरण की घटना की निंदा करता है। सीता रावण के भी अच्छे पक्षों को यहां रखती हैं। सत्य को छिपा देना उसे उजागर ही न होने देना, यह भी एक प्रकार की सामंतीवादी मानसिकता या पितृसत्तात्मक व्यवस्था के ही गूढ़ षडयंत्र हैं। किन्तु अनामिका की सीता रावण को एकनिष्ठ प्रेमी की तरह देखती हैं और उनके प्रेम के प्रति भी सम्मान का भाव रखती हैं, किन्तु एक विवाहित स्त्री के सारे दायित्व और अधिकार को भी वह नहीं भूलतीं। रावण जब उन्हें अपने अस्तित्व की वीणा सीखाने की बात करता है तो सीता उन्हें बताती हैं कोई किसी के वजूद की वीणा कैसे बजाना सीखा सकता है। अपने वजूद की वीणा तो स्वयं गढ़नी होती है और प्रकृति को जो भी तालछंद सिखाना होता है वह खुद ही सीखा देती है। सीता के इन कथन को सुनने के बाद रावण की आत्मा कभी उस ओर नहीं भटकती। अनामिका की सीता स्त्री भाषा पर जोर देती है, स्त्री शिक्षा पर जोर देती है। वो मानकर चलती हैं कि स्त्री की भाषा में सूर्य का तेज होना चाहिए, तभी वह सही निर्णय ले सकती हैं, और सामने वाले की दुर्वृत्तियों को समाप्त कर सकती हैं। अनामिका की सीता एकल मातृत्व के भी सारे दायित्व निभाती हैं– बीहड़ जंगल में रहकर भी वे कठिन परिस्थितियों में लव–कुश के पालन–पोषण से लेकर, उन्हें पढ़ाती हैं, उन्हें सोलहों कलाओं में निपुण करती हैं, शास्त्र और शस्त्र दोनों कला में पारंगत करती हैं, वाक्यपटुता में भी उन्हें निपुण करती हैं। उनके भीतर मातृ–दृष्टि भी पैदा करती हैं। लव–कुश, दोनों ही मां के सीखाए नियमों और विधानों को भी खूब समझते हैं, ''संसाधनों का वितरण सम्यक् हो और धरती के कोष से जितना लिया जाये, उससे दूना लौटाया जाये।''[7] यह सारी विशेषता अनामिका की सीता के एकल मातृत्व के आदर्श रूप को सामने रखती हैं। नई स्त्री को यह समझना चाहिए– पुरुषों को भी स्त्री के इस रूप का परिचय अवश्य मिलना चाहिए तभी वे नई स्त्री के मनचिता पुरुष बन पाएंगे।

सीता– एक ऐसी स्त्री है जो अपने विवेक से सारे निर्णय लेती है। राम उसे वनवास साथ जाने को नहीं कहते, बल्कि सीता ही अपने विवेक से राम के साथ जाने की जिद करती हैं। वे चाहती तो अयोध्या रहकर नौकर–चाकरों के बीच रानी–सा जीवन व्यतित कर सकती थीं, किन्तु वो ऐसा नहीं करतीं बल्कि राम के साथ जाने का निर्णय ले, पति के दुख को कम करने का ही प्रयास करती हैं। फिर सास–ससुर की सेवा के लिए उर्मिला का भी स्मरण रखती है। इतना ही नहीं लक्ष्मण द्वारा लक्ष्मण रेखा खींचे जाने पर, वे अपने विवेक से उसे लांघती हुई एक भिक्षुक को भोजन करवाने का निर्णय लेती हैं। यह अलग बात है कि

छल–कपट का शिकार होती हैं। पर यह नहीं भूलना चाहिए कि सीता के ही लक्ष्मण रेखा लांघने का निर्णय रावणवध का कारण बनता है। निर्णय लेने की क्षमता में वे इतनी निपुण हैं कि पितृसत्तात्मक व्यवस्था में भी कई बदलाव की मांग करती हैं। पितृसत्तात्मक व्यवस्था सदियों से शोषणकारी नीति अपनाती है। यह व्यवस्था स्त्रियों को अपने से हीनतर मानती है। जबकि सीता की दृष्टि सम्यक् है और वह हर सभी को एक समान मानती हैं, हर ''फूल अपनी विशिष्ट सुगन्ध से पहचाने जाते हैं।''[8] नई स्त्री की सारी विशेषता अनामिका की सीता में देखने को मिलते हैं– वह शिक्षित और स्वतंत्र और स्वावलंबी है– अपने विवेक से ही सारे निर्णय लेती है। वह यह मानकर चलती है कि सौ में से एक निर्णय गलत भी हो तो घबराना नहीं चाहिए। बल्कि उसे चुनौती समझ उससे लड़ना चाहिए। हर चोट ज्ञान देती है। बड़ी चोटें आंखें खोलती हैं– आंखों के आगे छाए धुएं को खत्म करती हैं, जैसे सूर्य के निकलते ही बादल हट जाते हैं।

अनामिका की सीता साधारण स्त्री नहीं, पति से विलग रोने–धोने में ही अपनी सार्थकता नहीं समझतीं, बल्कि हर समस्या का मुकाबला करती हैं, राम से भी पत्राचार कायम रखती हैं। बच्चों की आंखों में पिता के लिए सम्मान और आदर का भाव जगाती हैं। इतना ही नहीं हर परित्यक्त स्त्री के लिए राम का द्वार खोलने के लिए भी राम को प्रेरित करती हैं। राम द्वारा सीता के निष्कासन की घटना के पीछे जो तर्क उजागर किया जाता है वह यह है कि किसी धोबी के कहने पर राम ने सीता का परित्याग किया। जबकि सीता इसके पीछे छिपे सत्य को गलत बताती हैं, और उसे राम का निर्णय न मान अपना निर्णय बताती हैं। और रावण–वध के बाद तो उनका निर्णय सबके लिए सही हो जाता है। अनामिका की सीता ज्ञान–शास्त्र–अस्त्र विद्या में पारंगत है। एक सवाल यह भी उठता है कि सीता यदि अस्त्र–शस्त्र में पारंगत थी तो रावण उसे कैसे हर आया। इसका उत्तर भी अनामिका की सीता स्वयं देती हैं, ''मेरी मां ने मुझे आत्मरक्षा के कई ऐसे गुर दिये कि हाथ में एक छड़ी रखकर भी असुरक्षित नहीं होती! रावण तो छल–बल से मुझे हर लाया। एक भी अस्त्र मेरे पास नहीं था, वरना यह नौबत ही नहीं आती।''[9] दुख से विचलित होने वाली स्त्री नहीं, वह मानकर चलती है कि ''हर चुनौती एक अवसर भी है– अपनी प्रच्छन्न सम्भावनाएं ढूंढ़ निकालने का अवसर।'' इस प्रकार सीता चुनौतियों से घबराती नहीं, बल्कि उससे लड़ती हैं, उसका सामना करती हैं।

कहा जा सकता है कि अनामिका का 'तृन धरि ओट' उपन्यास स्त्री की चेतना, स्त्री के संघर्ष, स्त्री के निर्णय, उसकी स्वतंत्रता, उसकी ध्वंस के विरुद्ध सृष्टि की दृष्टि की एक नई इबारत गढ़ती है जो एक सशक्त स्त्रीवादी उपन्यास की सारी शर्तों पर खरी उतरती है। कथ्य और शिल्पविधान में भी यह अद्वितीय है! संवाद योजना–कौशल, देशकाल, पात्रों की अधिकता होने के बाद भी सुगठित और नदियों की कल–कल, छल–छल वाली प्रांजल भाषा– जिनमें तत्सम शब्दों की प्रचुरता के साथ, सरल, सहज और प्रवाहमान हिन्दी का प्रयोग किया गया है। कथ्य और शिल्प की दृष्टि से भी यह उपन्यास उन्नत बन पड़ा है। छोटे–छोटे वाक्य, मुहावरेदारी के साथ लोकस्मृतियों से गढ़ी गई परतदार भाषा यहां एक चटाई पर बैठे मिलते हैं। विषय के विधान में अनामिका ने उन घटनाओं का ही विश्लेषण किया जो पक्ष किसी ने उद्घाटित नहीं किये, जैसे राम पर यह लांछन लगाया जाता है कि सीता का निष्कासन उन्होंने किया किन्तु स्वयं यहां सीता ही उजागर करती है कि यह उनका निर्णय था। शूर्पणखा का संदर्भ हो या रावण का, या लव–कुश का ही वे सारे निर्णय विवेकसम्मत लेती हैं और स्पष्ट उदाहरण के रूप में पेश आती हैं– कि आज की स्त्री को अगर अवसर दिये जाएं तो वह हर चुनौती से लड़ती हुई अपनी उपलब्धियों और अपनी सफलता का पताका चारो ओर फैला सकती हैं।

सन्दर्भ–सूची :–

1. तृन धरि ओट / अनामिका / वाणी प्रकाशन / नई दिल्ली 110002 / प्रथम संस्करण, 2023 / पृ.सं.–24।
2. वही, पृ.सं.–35।
3. वही, पृ.सं.–218।
4. स्त्री विमर्श की उत्तरगाथा / अनामिका / सम्यक प्रकशन / नई दिल्ली 110002 / पृ– सं.–16।
5. तृन धरि ओट / अनामिका / पृ.सं.–107।
6. औरत का कोई देश नहीं / तसलीमा नसरीन / वाणी प्राशन / नई दिल्ली / प्रथम संस्करण –पृ. 127।
7. तृन धरि ओट / अनामिका / पृ.सं.–218।
8. वही, पृ.सं.–99।
9. वही, पृ.सं.–117

राम कथा की सफलता है समन्वय भावना

अखिलानंद मिश्र*
डॉ कुसुम सिंह**

सारांश :– राम कथा भावात्मक एकता की अभिव्यक्ति है। राम कथा काव्य आदिकाल से अविरल निर्मल बहने वाला कथा काव्य है। समय–समय पर राम के चरित्र व जीवन गाथा को कई रूपों में चित्रित किया गया है। राम नाम की महिमा अति पावन है। हिंदी साहित्य में राम काव्य की सबसे उत्तम लेखनी महाकवि तुलसीदास की ही है। महाकवि तुलसीदास अपने समय के सबसे सशक्त हस्ताक्षर हैं। और जब वह रामचरितमानस ग्रंथ की रचना करते हैं तो उसमें समन्वय को स्थापित करते हैं। मानवीय मूल्यों में समन्वय स्थापित करना। राजा और प्रजा के संबंधों के बीच समन्वय स्थापित करना। मनुष्य और जीव के बीच समन्वय स्थापित करना। समन्वय को स्थापित करने के दृष्टांत प्रस्तुत करते हैं। तुलसीदास ने रामचरितमानस में श्री रामचंद्र जी का ऐसा निर्मल पावन अनुपम दिव्य विमल चरित्र प्रस्तुत किया है कि उसमें सभी वेदों पुराणों उपनिषदों का सार सन्निहित है गोस्वामी तुलसीदास रामचरितमानस के प्रथम सोपान में लिखते है

नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद् रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।
स्वांतःसुखाय तुलसी रघुनाथगाथा भाषानिबंधमतिमंजुलमातनोति।।

अर्थात नाना पुराण वेद शास्त्र तथा रामायण में जो वर्णित है वही इस ग्रंथ में कहा गया है। और कुछ अन्य ग्रंथो से भी प्राप्त है। उस सब को तुलसीदास ने अत्यंत मनोहारी भाषा में वर्णित किया है। तुलसीदास उक्त कथन में स्पष्ट करते हैं कि शांतः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा यानि की आत्म सुख आत्म कल्याण ही उनका मुख्य लक्ष्य है किंतु रामचरितमानस में ही लिखते हैं कि कीरती भनिति भूति भल सोयी सुरसरि सम सबकर हित होई।संत कवि तुलसीदास का अभीष्ट लोकमंगल की साधना भी है और कदाचित यही साहित्य का उद्देश्य भी है।

मुख्य शब्द :– संस्कृति, विरासत, परंपरा, वांड्मय, राम कथा, वेद, पुराण, उपनिषद्, समन्वय आदि।

वर्तमान समय श्री राम के लिए सर्वोत्तम समय है। राम, कृष्ण, हिमालय और गंगा भारतीय जीवन में ऐसी समायी है जिससे देश की अस्मिता पहचानी जाती है। राम काव्य से तो कविता की शुरुआत हुई है वाल्मीकि रामायण अपने देश का आदिकाव्य है, यदि दुनिया का भी हो तो कोई आश्चर्य नहीं। वाल्मीकि रामायण की देखा–देखी पता नहीं कितनी रामायणें लिखी गई हैं। तुलसी ने रामचरितमानस में इसका उल्लेख किया है नाना भांति राम अवतारा रामायन सतकोटि आपारा। अध्यात्म रामायण भुशुंडि रामायण आनंद रामायण अद्‌भुत रामायण आदि का पता है। तुलसी का मानस अध्यात्म रामायण से बहुत प्रभावित है।[1]

हिंदी में राम कथा पर अनेकों महाकाव्य लिखे गए हैं।महाकवि तुलसीदास ने रामचरितमानस, केशव ने रामचंद्रिका, मैथिलीशरण ने साकेत लिखा। रामचरितमानस तुलसी के युवा काल की रचना है। रामचरितमानस में समाज और तत्कालीन देश–काल के परिप्रेक्ष्य में नये सिरे से निर्मित किया है। रामचरितमानस सात सोपानों में विभक्त है। अयोध्या काण्ड को मानस का हृदय स्थल कहा जाता है। उत्तर काण्ड मानस का सातवां सोपान है जिसमें तुलसी की विचारधारा मुखरित हुई है। जिस प्रकार शिव ने मानस की रचना अपने मानस में कर रखी थी ठीक उसी प्रकार तुलसी ने भी मानस लिखने से पूर्व उसका खाका अपने मानस में तैयार कर रखा था। राम चरित मानस की नींव गार्हस्थिक जीवन पर रखी गयी है। रामचरितमानस में जीवन मूल्यों के उतार चढ़ाव का जो अनुभव जिंदगी की व्याप्ति में मिलता है वैसा अन्य

***शोध छात्र महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय चित्रकूट सतना मध्य प्रदेश।**
****एसोसिएट प्रोफेसर, महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय, विश्वविद्यालय, चित्रकूट,सतना, मध्य प्रदेश।**

किसी ग्रन्थ में दुर्लभ है। रामचरितमानस के ग्रामवासियों और जन जातियों के भोले प्रेम को देखकर हम मनुष्यता की बुनियाद समझते हैं जिसे पूंजीवादी सभ्यता ने लगभग लील लिया है।कोल, किरात, भील, निषाद जैसी अस्पृश्य जातियां राम के लिए फलों का ढेर लगा देती हैं। पलकों के पांवड़े बिछा देती हैं। चित्रकूट सभा मानस का गंभीरतम प्रकरण है। राम को अयोध्या लौटाने के लिए भरत के साथ पूरा राजपरिवार, वशिष्ठ अवध के लोग,जनक आदि लोग चित्रकूट में एकत्र हैं।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल अपने हिंदी साहित्य के इतिहास में भक्ति काल के प्रकरण चार लिखते हैं"यद्यपि स्वामी रामानंद जी की शिष्य परंपरा के द्वार देश के बड़े भाग में राम भक्ति की पुष्टि निरंतर होती आ रही थी और भक्त लोग फुटकल पदों में राम की महिमा गाते आ रहे थे पर हिंदी साहित्य के क्षेत्र में इस भक्ति का परमोज्जवल प्रकाश विक्रम की 17वीं शताब्दी पूर्वार्द्ध में गोस्वामी तुलसीदास की वाणी द्वारा स्फुरित हुआ।उनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा ने भाषा काव्य की सारी प्रचलित पद्धतियों के बीच अपना चमत्कार दिखाया। सारांश यह है कि रामभक्ति का वह परम विशद साहित्यिक सन्दर्भ इन्हीं भक्त शिरोमणि द्वारा संघटित हुआ जिससे हिंदी काव्य की प्रौढता के युग का आरंभ हुआ।"[2]

अनंतानन्द महाराज भगवान श्री राम का पावन चरित्र तुलसीदास ने बहुत सुंदर वर्णन किया है।

गोस्वामी तुलसीदास भक्ति काल के सगुण धारा के अंतर्गत आने वाली राम काव्य धारा के मुख्य कवि हैं। उन्होंने अपने सभी काव्य ग्रन्थो में राम के प्रति अनन्य एकनिष्ठ भक्ति की है। उन्होंने कहा है–

एक भरोसो एक बल एक आस विश्वास।
एक राम घनश्याम हित चातक तुलसीदास। ।

राम के प्रति उनके मन में अनन्य प्रेम है भक्ति भाव है श्रद्धा है विश्वास है भरोसा है। श्रद्धा और विश्वास तुलसी की भक्ति के मेरुदंड है। रामचरितमानस और विनय पत्रिका इन दोनों ग्रंथो में तुलसी की भक्ति भावना अभिव्यक्त हुई है। तुलसी की भक्ति दैन्य भाव की है। तुलसी अपने प्रभु राम के प्रति पूर्ण समर्पित थे। राम को वह अपना स्वामी मानते थे अपना भगवान मानते थे। वह रामचरितमानस में स्पष्ट घोषणा करते हैं।

सेवक सेव्य भाव के बिना कोई इस संसार सागर से पार नहीं लग सकता है। तुलसी की भक्ति में दैन्य की प्रधानता है वे इष्ट देव राम को महान एवं सर्वगुण संपन्न तथा स्वयं को तुच्छ नीच छोटा पापी मानते हैं। आत्म निवेदन की प्रवृत्ति के कारण वह कहते हैं–

राम सौं बड़ों है कौन मौसो कौन छोटो।
राम सौं खरो है कौन मौसो कौन खोटो।।

रामचरितमानस दुनिया को संयुक्त करने के लिए सबसे अनुपम ग्रंथ है। इस ग्रंथ में अनेक घटनाएं ऐसी हैं जो बिखराव के बाद भी संबंधों को कैसे समेटा जाए इसका मनोवैज्ञानिक हल प्रस्तुत करती हैं। विश्व के साहित्य में रामचरितमानस का श्रेष्ठ स्थान है। रामचरितमानस को मानने वाले विश्व के कई देशों में फैले हुए हैं। विदेशों में राम कथा का मंचन किया जाता है। रामचरितमानस उत्तम काव्य के लक्षणों से युक्त है और अभ्यास से यह कंठस्थ हो जाता है यह इसकी सबसे बड़ी विशेषता है। इस ग्रंथ में आदर्श गार्हस्थ जीवन, आदर्श राज धर्म, आदर्श पारिवारिक जीवन, आदर्श पतिव्रतधर्म, आदर्श बंधु धर्म, सर्वोच्च भक्ति, ज्ञान, त्याग, वैराग्य, सदाचार आदि की शिक्षा प्रदान करने वाला ग्रंथ है। रामचरितमानस को ग़रीब –अमीर, शिक्षित–अशिक्षित, ग्रहस्थ–सन्यासी, स्त्री–पुरुष, बालक– वृद्ध सभी बहुत रुचि के साथ पढ़ते, सुनते, और कहते हैं। रामचरितमानस एक आशीर्वादात्मक ग्रंथ है। इसकी प्रत्येक चौपाई मंत्र के समान आदरणीय है। रामचरितमानस में वर्णित भगवान की लीलाओं का चिंतन मनन करने से भागवत प्रेम की प्राप्ति होती है। रामचरितमानस एक अलौकिक ग्रंथ है। रामचरितमानस की रचना भगवान श्री गौरी शंकर जी की आज्ञा से हुई और उन्हीं भगवान ने सत्यम शिवम सुंदरम लिखकर अपने हाथ से सही किया। रामचरितमानस का अध्ययन अनुशीलन अनुसंधान जितना अधिक होगा उतना ही जगत का मंगल होगा। वर्तमान समय में सारा

संसार कोरोना महामारी युद्ध नरसंहार मारकाट आदि समास्याओं से जूझ रहा है और इन समस्याओं को जड़ से खत्म करने के लिए रामचरितमानस की कथा का श्रवण करके चिंतन, मनन, और वैज्ञानिक तरीके से विधिवत लोगों के मन को निर्मल, निश्छल करके इससे छुटकारा पाया जा सकता है। रामचरितमानस का प्रत्येक सोरठा, चौपाई, दोहा बूटी के समान है। जिसका पान करके निश्चित रूप से शांति और सुकून की प्राप्त की जा सकती है। तुलसीदास भाखा में कविता करते हैं और लोक में प्रिय होते हैं और शास्त्रीय मर्यादा का निर्वाह करके पंडितों में प्रिय होते हैं। तुलसीदास कहते हैं– कवित्त विवेक एक नहीं मोरे। सत्य कहउं लिखी कागद कोरे।।

तुलसी रामचरितमानस में आग्रह पूर्वक कहते हैं कि उनकी रचना शांतः सुखाय, आत्मविश्वास, आत्मबोध के लिए है। रामचरितमानस ना तो किसी के निर्देश पर लिखी गई है और ना ही किसी को उपदेश के लिए लिखी गई है। रामचरितमानस के माध्यम से तुलसी राम कथा में अनुराग करने का उपदेश देते हैं। तुलसी ने जगह–जगह परस्पर विरोधी भूमिकाओं में सामंजस्य स्थापित करने के दृष्टांत प्रस्तुत किए हैं। राम कथा में एक बुनियादी महत्व का स्थल है। राम के प्रति कैकई की दृष्टि में परिवर्तन इस एक बिंदु से काव्य का कथानक नाटकीय मोड़ ले लेता है। सीता हरण, सुग्रीव की मैत्री, रावण वध आदि उसी से निकलते हैं। कैकेयी की मति को सरस्वती ने फेर दिया था। इस बात को गोस्वामी तुलसीदास जी रामचरितमानस के अयोध्या कांड में स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि–

"नामु मंथरा मंद मति चेरी कैकई केरि।
अजस पेटारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि। ।

मंथरा नाम की कैकेयी की एक मंदबुद्धि दासी थी, उसे अपयश की पिटारी बनाकर सरस्वती उसकी बुद्धि को फेर कर चली गयीं।"[3]

रामस्वरूप चतुर्वेदी अपनी पुस्तक हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास में लिखते हैं "भारतीय परंपरा और जीवन क्रम में मूल इकाई परिवार के सौहार्द और संघर्ष ही कवियों के लिए उपजीव्य बने हैं। यहां के आदिकाव्य इसी वस्तु के विस्तार को प्रस्तुत करते हैं रामायण और महाभारत दो प्रकार के परिवारों की ही गाथाएं हैं।"आगे वह लिखते हैं तुलसी और सूर के रूप में वह स्थिति मध्यकालीन हिंदी काव्य में देखी जा सकती है तुलसी राम का चरित्र चुनते हैं अपने लिए जो मर्यादा पुरुषोत्तम हैं।और हर तरह से आदर्श के प्रतिरूप हैं,आदर्श पुत्र, आदर्श शिष्य, आदर्श मित्र, आदर्श भाई और सबसे अधिक आदर्श पति और फिर आदर्श शासक सूर का पक्ष कृष्ण का है जिन्हें लीला पुरुषोत्तम कहा गया है जो यथार्थ के हर पक्ष से निपटने को तैयार हैं पूतना से लेकर दुर्योधन तक और जिनका पति की अपेक्षा प्रेमी रूप अधिक चित्रित है नंद यशोदा परिवार के केंद्र बिंदु हैं पर अपनी गृहस्थी बसाते नहीं दिखाए गए हैं। यहां स्मरणीय है कि तुलसी द्वारा चित्रित गृहस्थ जीवन रक्त संबंध पर आधारित है, जबकि सूर द्वारा अंकित गृहस्थ जीवन प्रेम संबंधों पर विकसित है।"4 रामचरितमानस के अरण्यकाण्ड में श्री राम शबरी के आश्रम में पधारे और सबरी के द्वारा दिऐ गये स्वादिष्ट कंद मूल और फल प्रभु ने प्रेमसहित खाया। सबरी हाथ जोड़कर प्रभू के सामने खड़ी हो गयीं और कहा कि मैं आपकी स्तुति कैसे करूं ? मैं तो नीच जाति की मूढबुध्दि हूं।तब श्री रघुनाथ जी ने कहा कि हे भामिनी मेरी बात सुन मैं तो केवल एक भक्तिही का सम्बन्ध मानता हूं। और फिर अपनी नवधा भक्ति कहते हैं–

"नवधा भगति कहऊं तोहि पाहीं। सावधान सुनू धरू मन माहीं।
प्रथम भगति संतन्ह कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा।

गुर पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान। चौथी भगति मम गुनगन करइ कपट तजि गान।मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा।पंचम भजन सो वेद प्रकासा। छठ दम सील बिरति बहु करमा। निरत निरंतर सज्जन धरमा। सातवं सम मोहि मय जग देखा। मोतें संत अधिक करि लेखा

आठवं जथालाभ संतोषा। सपनेहुं नहिं देखइ परदोषा।
नवम सरल सब सन छलहीना।मम भरोस हियं हरष न दीना।

नव महुं एकउ जिन्ह कें होई। नारि पुरूष सचराचर कोई।
सोइ अतिसय प्रिय भामिनि मोरें। सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरें।
जोगि बृंद दुर्लभ गति जोई।तो कहुं आजु सुलभ भइ सोई।"[5]

शबरी को रघुनाथ जी ने जो गति योगियों को दुर्लभ है वह गति सुलभ हो गयी।

रामधारी सिंह दिनकर संस्कृति के चार अध्याय पुस्तक में लिखते हैं तुलसीदास केवल कवि ही नहीं हैं उनका स्थान हिंदू संस्कृति के रक्षक, त्राता और उध्दर्ता का है। नैतिक विषयों पर धर्मशास्त्रों का कहां क्या कहना है यह जानने की चिंता उत्तर भारत में अधिक नहीं है। वहां की जनता प्रत्येक विषय पर केवल तुलसीदास की राय जानना चाहती है। तुलसीदास पर जनता का ऐसा अटल विश्वास है कि राजा नेता और फकीर इनमें से जो भी तुलसी के खिलाफ होगा जनता उसके खिलाफ हो जाएगी। अवश्य ही ऐसा सम्मान वही कवि पा सकता है जिसने अपने देश की संस्कृति के कण–कण को अपने भीतर पचा लिया हो और जिसका ह्रदय अपार जनता के ह्रदय से बिल्कुल एकाकार हो।

"तुलसीदास का सम्मान दोनों ही धर्म के लोग करते थे खान खाना रहीम से तुलसीदास की दोस्ती थी यह बात साहित्य के इतिहास में अनेक बार कही गई है जब तुलसीदास ने रामचरितमानस लिखा रहीम ने कुछ दोहे रच कर उसे काव्य की प्रशंसा की थी और यह स्वीकार किया था कि यह काव्य हिंदुओं के लिए वेद और मुसलमान के लिए कुरान है।"[6] हिन्दुआन को वेद सम, तुरुकहिं प्रगट कुरान।

तुलसीदास में समन्वय करने की विराट चेतना थी। जिस समय तुलसी का आविर्भाव हुआ उस युग में धर्म, समाज, राजनीति, साहित्य आदि क्षेत्रों में बहुत विषमता व्यात थी। हिंदू मुसलमानों के बीच आपसी बैर था तो दूसरी ओर शैव और वैष्णव मत को मानने वाले आपस में लड़ते झगड़ते रहते थे। हिंदू समाज में ब्राह्मण और शुद्र के बीच ऊंच नीच की खाई बन रही थी। संत कवियों ने भारत में भावात्मक एकता को स्थापित किया। उन्हीं संत कवियों में गोस्वामी तुलसीदास थे जिन्होंने तत्कालीन परिस्थितियों का गंभीरता के साथ चिंतन मनन करके समाज में व्याप्त विषमताओं को दूर करने के लिए समन्वय की भावना को प्रोत्साहन दिया और स्वयं धर्म राजनीति समाज सहित्य आदि क्षेत्रों में समन्वय को स्थापित करते हुए वैषम्य को दूर किया। तुलसीदास ने सामाजिक, पारिवारिक, आध्यात्मिक, आर्थिक, राजनीतिक, नैतिक आदि सभी क्षेत्रों में समन्वय स्थापित करके अशांति, पापाचार, अनाचार अधर्म आदि को दूर करने की कोशिश की। अपने इसी समन्वयात्मक दृष्टिकोण के कारण तुलसी लोकनायक भी कहलाते हैं और गौतम बुद्ध के पश्चात आपको ही लोकनायकत्व का महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। तुलसीदास शैव एवं वैष्णव, वैष्णव एवं शाक्त, रामावत संप्रदाय एवं पुष्टिमार्गसंप्रदाय, अद्वैतवाद एवं विशिष्टा द्वैतवाद, ज्ञान और भक्ति, सगुण और निर्गुण, नर और नारायण, द्विज और शूद्र, राजा और प्रजा, पारिवारिक क्षेत्र में, साहित्यिक क्षेत्र में और राजनीतिक क्षेत्र में समन्वय स्थापित करते हैं। द्वारिका प्रसाद सक्सेना कहते हैं कि "तुलसी एक उच्च कोटि के समन्वयवादी कवि थे। उन्होंने जीवन और जगत के सभी क्षेत्रों में समन्वय स्थापित करने का स्तुत्य प्रयत्न किया और अपने समन्वयवादी विचारों द्वारा तत्कालीन समाज में व्याप्त विषमता, विद्वेष, वैमनस्य, कटुता आदि को दूर करके पारस्परिक स्नेह सौहार्द्र, समता, सहानुभूति आदि का प्रचार किया। इसलिए तुलसी एक उच्च कोटि के कवि, महान लोकनायक, सफल समाज सुधारक, भारतीय संस्कृति के श्रेष्ठ प्रचारक, एवं समाज में उन्नत आदर्श के संस्थापक कहलाते हैं।"[7]

लोक में सबसे ज्यादा व्याप्त राम काव्य है।भगवान के चौबीस अवतार हुए हैं लेकिन सबसे ज्यादा लोकप्रिय राम और कृष्णा हैं।राम का जीवन संघर्षों से परिपूर्ण है। रामायण को तो करुण रस का काव्य माना जाता है। राम का चरित्र दुःखी और असहाय जनता को अधिक सहानुभूति देता है। राम के जीवन में अविरल संघर्ष बहता है। और इस संघर्ष में भी विवेक लोकमंगल और मर्यादा को बनाए रखने का जो आदर्श राम के चरित्र में मिलता है वह अन्यत्र दुर्लभ है।राम का रामत्व संघर्षशीलता में है। राम को रामत्व की प्राप्ति चित्रकूट में हुई थी। तुलसी के राम वाल्मीकि और भवभूति के राम से अलग हैं। वाल्मीकि और भवभूति के राम असाधारण पराक्रमी हैं। और तुलसी के राम सर्वशक्तिमान हैं। तुलसी के राम करुणानिधान,दीनबंधु

शीलवान,और आमजन के दुःखों में साथ देने वाले हैं। वाल्मीकि भवभूति तुलसी और निराला के राम में एक चीज समान है वह है राम का संघर्ष। तुलसी ने राम को लोक जीवन में घुले मिले हुऐ लोक वादी व्यक्ति के रूप में चित्रित किया है। विश्वनाथ त्रिपाठी अपनी पुस्तक लोकवादी तुलसीदास में लिखते हैं कि "पंडित रामचंद्र शुक्ल को राम वन गमन का प्रसंग बहुत मार्मिक लगता था उन्होंने अपनी पुस्तक तुलसीदास में लिखा है की एक सुंदर राजकुमार के छोटे भाई और स्त्री को लेकर घर से निकलने और वन वन फिरने से अधिक मर्मस्पर्शी दृश्य क्या हो सकता है? राम कितने भी सुंदर और सुशील होते यदि घर से निकलकर सामान्य जीवन भूमि पर ना निकलते तो इतने मनोहर ना लगते।"[8] रामचरितमानस में वर्णित मार्मिक प्रसंगो में से एक मार्मिक प्रसंग यह भी है जो शुक्ल जी को अति प्रिय है। चित्रकूट सभा में भरत मिलाप बहुत ही मार्मिक प्रसंग है और राम जी पादुका दान और भरत जी का शीश पर धर लेना, आदि रामचरितमानस के प्रसंग पाठकों के ह्रदयों को छूते हैं। उसी पुस्तक में आगे विश्वनाथ त्रिपाठी लिखते हैं कि– "आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते हैं कि राम कल्प पुरुष हैं, अर्थात् चूंकि वे इतिहास के प्रत्येक दौर में जन्मते रहे और जन्मते रहेंगे, इसलिए वह अचिंत्य हैं, अनादि और अनंत है, उनकी शक्ति का आरपार नहीं है। उन्हें कोई सामान्य मनुष्य समझे तो वह सचमुच बाबा की डांट फटकार का अधिकारी है दृराम मनुज रे कस सठ बंगा। राम साधारण पुरुष नहीं है सनातन पुरुष हैं।"9 रामचरितमानस के माध्यम से रामकथा को आम जनमानस में लोकप्रिय बनाने में तुलसीदास को अपार सफलता प्राप्त हुई है। और निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि तुलसीदास रामकथा के सच्चे लोकगायक हैं और डॉ ग्रियर्सन ने तो कहा ही है कि बुद्धदेव के बाद भारत में सबसे बड़े लोकनायक तुलसी दास थे। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा था कि भारतवर्ष का लोकनायक वही हो सकता है जो समन्वय करने का अपार धैर्य लेकर आया हो।

सन्दर्भ–सूची :–

1. सिंह बच्चन, हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधा कृष्ण प्रकाशन, संस्करण 2017।
2. शुक्ल चन्द्र राम, हिंदी साहित्य का इतिहास, प्रयाग पुस्तक सदन प्रकाशन, संस्करण 2015पृष्ठ संख्या 72।
3. दास तुलसी श्री गोस्वामी, रामचरितमानस, संस्करण सं॰2072 गीताप्रेस गोरखपुर, पृष्ठ संख्या 353।
4. चतुर्वेदी रामस्वरूप, हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण 2011,पृष्ठ संख्या 44,49।
5. दास तुलसी श्री गोस्वामी रामचरितमानस संस्करण सं॰2072, गीताप्रेस गोरखपुर पृष्ठ संख्या 667।
6. दिनकर सिंह रामधारी, संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण 2010, पृष्ठ संख्या 252।
7. सिंह भानुउदय,तुलसी, राधाकृष्ण प्रकाशन, पहला संस्करण 1976, पृष्ठ संख्या।
8. त्रिपाठी नाथविश्व, लोकवादी तुलसीदास,राधाकृष्ण प्रकाशन संस्करण 2007पृष्ठ संख्या 29।
9. त्रिपाठी नाथविश्व, लोकवादी तुलसीदास, राधाकृष्ण प्रकाशन संस्करण 2007, पृष्ठ संख्या 35।

स्वामी विवेकानंद का धर्म-दर्शन

डॉ. रतिलाल गिरधर कालरीया*

परिचय :– मेरे शोध की मुख्य पद्धति समीक्षात्मक, वर्णनात्मक और मूल्यांकनात्मक है। विवेकानन्द का धर्मदर्शन एवं सांख्य योग, पतंजलि योग एवं हठ योग इसके लिये मुख्य स्रोत सामग्री हैं। स्वामी विवेकानन्द का साहित्य सृजन विशाल है। उनके पत्रों, भाषणों आदि का पूरा संग्रह रामकृष्ण मिशन द्वारा प्रकाशित किया गया है।

सारांश :– सामाजिक अनुसंधान एक ऐसी प्रक्रिया है जो मुख्य रूप से सामाजिक जीवन के बारे में वैज्ञानिक ज्ञान बढ़ाने से संबंधित है। यदि हम दर्शनशास्त्र को देखें तो यह मुख्य रूप से मोक्ष की अवधारणा, कर्म की अवधारणा, मनुष्य और प्रकृति के बीच संबंध आदि का अध्ययन करता है। समाज में अनेक प्रकार की समस्याएँ हैं। और दर्शनशास्त्र समाज की विभिन्न समस्याओं के समाधान हेतु सदैव प्रयत्नशील रहता है। हालाँकि दर्शनशास्त्र आदि में ऐसी किसी भी समस्या के पीछे कई कारण जिम्मेदार हो सकते हैं। इस संशोधन पत्रमे ऐसी ही किसी समस्या का संशोधन करने का प्रयास किया गया हे।

भारतीय दर्शन की व्याख्या एवं मूल्यांकन क्षेत्रीय भाषा में करना आवश्यक है। चूंकि उच्च शिक्षा का माध्यम क्षेत्रीय भाषा में बना है, इसलिए क्षेत्रीय भाषा में शोध करना उसी तरह जरूरी हो जाता है, जैसे इच्छा को मूर्त रूप देना हो। मेरे शोध का विषय है "स्वामी विवेकानन्द के संदर्भ में राजयोग एक अध्ययन"। मेरा मुख्य उद्देश्य इस पर क्षेत्रीय भाषा में शोध करना है। भारतीय दर्शन में कुल मिलाकर स्वामी विवेकानन्द का धर्मदर्शन मेरी मुख्य रुचि रहा है। क्योंकि स्वामी विवेकानन्द ने अपने आध्यात्मिक जीवन के पीछे के योग को कर्म योग, भक्ति योग, राज योग के रूप में समझाने का प्रयास किया था।

महान व्यक्तियों का जीवन उनके वर्षों से नहीं बल्कि उनके कर्मों से नापा जाता है। स्वामी विवेकानन्द, जिन्होंने भविष्यवाणी की थी कि "मैं अपना चालीसवाँ वर्ष नहीं देखूँगा", उन्होंने हमारे लिए एक महान कार्य किया है जो अपने कठिन जीवन के माध्यम से न जाने कितनी शताब्दियों तक पहुँचेगा! यह सब केवल डेढ़ दशकों की अल्प अवधि में! बीच में! धर्म और विज्ञान, प्राचीन और पुरातन, पूर्वी और पश्चिमी प्रथाओं और परमार्थ, तपस्या और संसार, इस महान समवायाचार्य ने अपने अद्वितीय कौशल से एक अटूट पुल का निर्माण किया और भावी पीढ़ियों के लिए जीवन का राजमार्ग बनाया।' उभरते राष्ट्र के लिए उन्होंने महान मंत्र का जाप किया। "उठो और जागो" के मंत्र और सदीओ पुराने प्राचीन वेदांत की गूँज से, अभिनव सुरावली ने वैश्विक महाकाव्य संगीत की रचना की, जो संप्रदायों की दीवारों को भेद गया और 1896 में अपने गुरुभाई को लिखे एक पत्र में, उन्होंने गुरुदेव श्री रामकृष्णदेव के बारे में लिखा। ' इस नए अवतार या आचार्य का उपदेश यह है कि योग, भक्ति, ज्ञान और कर्म का संयोजन अब हमारे सामने एक नया भारत है जिसमें एक नया भगवान, एक नया धर्म और एक नया वेद है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इन शब्दों में स्वामीजी का अपना जीवन आदर्श समाहित है।

स्वामी विवेकानन्द ने पीड़ित लोगों की सेवा करना और उनमें ईश्वर के दर्शन करना सिखाया। उन्होंने भारत के युवाओं में अतीत के प्रति गौरव और भविष्य के प्रति विश्वास पैदा किया। उन्होंने 1893 में शिकागो, संयुक्त राज्य अमेरिका में आयोजित विश्व धर्म परिषद में भाग लिया। इसमें उन्होंने ओजस्वी भाषणों के माध्यम से भारतीय संस्कृति और दर्शन की जानकारी दी। इसके बाद उन्होंने संयुक्त राज्य अमेरिका, यूरोप, मिस्र, चीन, जापान आदि की यात्रा की और भारतीय संस्कृति का प्रसार किया। वे भारतीय संस्कृति के प्रतिपादक और प्रखर देशभक्त थे।

स्वामी विवेकानन्द ई.एस. 1897 में गुरु के नाम पर बेलूर में रामकृष्ण मिशन की स्थापना की गई। यह मिशन भूकंप, महामारी, रेल दुर्घटना, सूखा जैसी प्राकृतिक आपदाओं के दौरान राहत कार्य और चिकित्सा उपचार के माध्यम से सामाजिक सेवा प्रदान करता है। रामकृष्ण परमहंस के जीवन से प्रेरित होकर मिशन ने "जन सेवा ही प्रभु सेवा" के आदर्श वाक्य को लागू किया। देश में स्कूल और अस्पताल खोलकर शिक्षा दी जाती है। इस

***सहायक प्राध्यापक, तत्त्वज्ञान, बहाउद्दीन आर्ट्स कोलेज, जूनागढ़।**

मिशन की शाखाएँ आज भारत और विदेशों में काम कर रही हैं। स्वामी विवेकानन्द के जीवन से परिचय कराना आध्यात्मिक जीवन में उतरना है। मात्र 39 वर्ष के जीवन काल में उन्होंने कितना कुछ कर दिखाया! उनके जीवन में हम आस्था और शक्ति की महान ऊंचाई, जबरदस्त नैतिक शक्ति और आध्यात्मिक जागरूकता की संपूर्ण साधना देखते हैं। उन्होंने पुरुषार्थ में सच्ची पवित्रता देखी हैं।

धर्म क्या है?

"धर्म मनुष्य में पहले से मौजूद दिव्यता की अभिव्यक्ति है— स्वामी विवेकानन्द"

हम मानते हैं कि हर कोई दिव्य है, भगवान है। प्रत्येक आत्मा अज्ञान के बादलों से ढके हुए सूर्य के समान है; आत्मा और आत्मा के बीच का अंतर इन बादलों की परतों के घनत्व के कारण है। हमारा मानना है कि यह सभी धर्मों की नींव है, चाहे वह स्पष्ट हो या अंतर्निहित।

"पशु से मनुष्य बनने और मनुष्य से भगवान बनने की कल्पना ही धर्म है।— स्वामी विवेकानन्द"

अनादि, नित्य, सर्वव्यापक, सर्वज्ञ ईश्वर एक तत्त्व है, व्यक्ति नहीं। मैं, आप और सभी कुछ उस सिद्धांत का अवतार हैं। यह अनंत सिद्धांत जितना अधिक किसी व्यक्ति में व्यक्त होता है, वह व्यक्ति उतना ही महान बन जाता है। अंत में सभी अपने पूर्ण रूप बन जाएंगे और एक हो जाएंगेः जैसा कि दर्शनः अब यही धर्म है। और यह एकता की भावना, यानी प्रेम के माध्यम से संचालित होता है। सभी पुरानी परंपराएँ केवल मिथक हैं। उन्हें जीवित रखने की जहमत क्यों उठाई जाए? यदि जीवन और सत्य पास—पास बहते हैं, तो प्यासे लोग पोखर का पानी क्यों पियें।

भगवान और मनुष्य के बीच, संत और पापी के बीच क्या अंतर है? अज्ञानतावश, सबसे महान व्यक्ति और आपके पैरों के नीचे रेंगने वाले कीड़े के बीच क्या अंतर है? ज्ञान और अज्ञान का. इससे सारा फर्क पड़ता है यहां तक कि शूद्र रेंगने वाले कीट के भीतर भी ईश्वर की अनंत शक्ति, अनंत ज्ञान, अनंत पवित्रता और अनंत दिव्यता निहित है; केवल वह अव्यक्त अवस्था में है। उन्हें व्यक्त करने की जरूरत है. यह एक महान सत्य है जो भारत को दुनिया को सिखाना है क्योंकि वह सत्य कहीं नहीं है। आत्मा का यह विज्ञान आध्यात्मिक है।

धर्म एवं नैतिकताः— खतरा है कि हमारा धर्म रसोई में ही रह जायेगा. हममें से बहुत से लोग वेदांती नहीं हैं, पौराणी या तंत्री नहीं हैं! हम तो बस हमें मत छूना वाले हो गए! हमारा धर्म है —"छूना नहीं मुझे, मैं पवित्र हूँ!"। हालाँकि कई लोग अज्ञानता में डूबे हुए हैं, भीतरी के अहंकार में वे खुद को सर्वज्ञ मानते हैं और रुकते नहीं हैं। लेकिन वह दूसरों का बोझ अपने कंधों पर लेने के लिए तैयार रहते हैं. और इस तरह आधे अँधे की अगुवाई करते हुए दोनों गड्ढे में गिर जाते हैं। स्वामी विवेकानन्द के मन में धर्म के बीज बचपन से ही उनके माता—पिता ने बोये थे। स्वामी विवेकानन्द बचपन से ही हिन्दू धर्म से जुड़े हुए थे। स्वामी विवेकानन्द का जीवन हिन्दू धर्म से बहुत प्रभावित रहा है। स्वामी विवेकानन्द शंकर वेदांत से अधिक प्रभावित थे, उन्होंने शकर वेदांत को अपने जीवन अभ्यास में उतारा है और वे बौद्ध धर्म के करुणा के विचार से भी बहुत प्रभावित थे।

स्वामी विवेकानन्द वेदांत पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं कि वेदांत का आदर्श मनुष्य को उसके मूल स्वरूप में पहचानना है जैसा वह है; और इसका संदेश यह हैः यदि आप अपने साथी मनुष्य, प्रकट ईश्वर की पूजा नहीं कर सकते, तो आप अवैयक्तिक ईश्वर की पूजा कैसे कर सकते हैं? धर्म का रहस्य सिद्धांत में नहीं बल्कि आचरण में है। "अच्छा होना और अच्छा करना, यही उत्तम धर्म है। वह मनुष्य नहीं जो 'भगवान', 'भगवान' जपता है, बल्कि वह मनुष्य जो इच्छा के अनुसार कार्य करता है।" परमात्मा उतना ही महान है। मैं जो उपदेश देता हूं उसकी पहली आवश्यकता के रूप में, मैं यह सिद्धांत देता हूं कि जो कुछ भी आपको आध्यात्मिक, मानसिक या शारीरिक रूप से कमजोर बनाता है, उसे अपने पैर के अंगूठे से न छुएं। धर्म मनुष्य के भीतर की मौलिक शक्ति की अभिव्यक्ति है, इस छोटे से शरीर में अनंत शक्ति का एक मेहराब घूम—घूम कर घूम रहा है और वह मेहराब टूट कर गिर रहा है। यह धर्म, संस्कृति और प्रगति का मानव इतिहास है

वेदांत का यह पहला सिद्धांत है कि अनुभव ही धर्म है और अनुभव करने वाला व्यक्ति ही धार्मिक व्यक्ति होता है। आपको इस दुनिया में ऐसे बहुत से लोग मिल जायेंगे जो कहेंगे, "मुझे धार्मिक बनने की बहुत इच्छा थी, मैं इसका अनुभव करना चाहता था, लेकिन मैं इसमें सफल नहीं हुआ, इसलिए मैं किसी में विश्वास नहीं

पाता।" ऐसा कहने वाले लोग आपको शिक्षित वर्ग में भी मिल जायेंगे. बहुत से लोग आपसे कहेंगे, "मैंने जीवन भर धार्मिक बनने की कोशिश की है लेकिन यह काम नहीं कर रहा है"।

मान लीजिए कि एक आदमी आपके पास आता है और कहता है, "मैं एक रसायनज्ञ हूं। एक महान वैज्ञानिक हूं। " अब यदि आप उससे कहते हैं, "मैं रसायन विज्ञान में बिल्कुल विश्वास नहीं करता क्योंकि मैंने अपने पूरे जीवन में एक रसायनज्ञ बनने की कोशिश की है और मुझे लगता है कि इसमें कुछ भी नहीं है।" तो आपसे पूछा जाएगा, "लेकिन आपने कब प्रयास किया?" आप कहेंगे, "जब मैं रात को सोने जाता हूं, तो हमेशा कहता हूं, हे रसायन शास्त्र, मेरे पास कभी ऐसा नहीं आया।" यह वही बात है। रसायनज्ञ आप पर हंसेंगे और कहेंगे, "ठीक है, यार, आप सही तरीका नहीं हैं। इसलिए, किसी को प्रयोगशाला में जाना होगा, सभी एसिड और नमक इकट्ठा करना होगा और बार–बार प्रयोग करना होगा। आपने ऐसा क्यों नहीं किया? यदि तुमने ऐसा किया होता तो तुम सीख गए होते" धर्म भी इसी प्रकार सीखना है। धर्मी बनो; बहादुर बनो; दिल से उदार बनो, जान जोखिम में डालकर भी बहादुर बनो, सदाचारी बनो, धर्म के दावों में सिर मत डालो। कायर ही पाप करते हैं, बहादुर नहीं। वे पाप के बारे में सोचते भी नहीं हैं। यदि आपके मन में पाप या अपराधबोध और कमजोरी का डर नहीं है, तो बाकी सब कुछ अपने आप आ जाएगा।

इस विचार को छोड़ना कि मनुष्य एक भौतिक शरीर है, नैतिकता और निस्वार्थ व्यवहार की नींव है। मान लीजिए कि मन इस पूर्ण निःस्वार्थता को प्राप्त कर लेता है, तो उसका क्या होता है? जो एक समय छोटा सा व्यक्तित्व था वह हमेशा के लिए चला गया है। अनंत हो जाना और इस अनंत क्षेत्र को प्राप्त करना ही सभी धर्मों, नीतिशास्त्रों और दर्शनों की शिक्षा है। नीति को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता हैः "जो सर्वज्ञ है वह अनैतिक है और जो निःस्वार्थ है वह नैतिक है। अपने बच्चों को यह सिखाएं कि सच्चा धर्म भावनात्मक है, न कि निगमनात्मक, कि धर्म में न केवल पाप से बचना है, बल्कि अच्छे कर्म करने के लिए मेहनती कार्रवाई भी शामिल है। सच्चा धर्म मनुष्य के उपदेश या शास्त्रों के अध्ययन से नहीं आता है, यह आपकी आत्मा का जागरण है जो पवित्र और साहसी कार्यों के प्रदर्शन से उत्पन्न होता है।

यदि आप केवल बुद्धि लेकर आते हैं, तो आपको कुछ बौद्धिक अभ्यास, कुछ बौद्धिक सिद्धांत तो मिलेंगे, लेकिन आपको सत्य नहीं मिलेगा, सत्य का दर्शन ऐसा है कि जो भी उसे देख ले, वह उसका कायल हो जाए। सूर्य को प्रकट करने के लिए किसी टॉर्च की आवश्यकता नहीं होती। सूर्य स्वयं प्रकाशमान है. यदि सत्य को साक्ष्य की आवश्यकता है तो कौन सा साक्ष्य उसे सिद्ध करेगा? यदि सत्य को साक्षी की आवश्यकता हो तो उस साक्षी के लिए साक्षी क्या है? हमें धर्म के साथ आदर और प्रेम का व्यवहार करना चाहिए; तब हमारा हृदय जाग उठेगा और कहेगा कि यह सत्य है और यह असत्य है।

"सच्चा धर्म चरित्र है, चरित्र ही सच्ची शक्ति है।"–स्वामी विवेकानंद

नवीन धर्म :– प्राचीन धर्मों ने ईश्वर में विश्वास न करने को नास्तिकता कहा; नया धर्म कहता है कि जिसे स्वयं पर विश्वास नहीं वह नास्तिक है। लेकिन वह आस्था कोई स्वार्थी आस्था नहीं है, क्योंकि वेदांत के पीछे का सिद्धांत एकता है। इसका अर्थ है सभी में विश्वास, क्योंकि आप ही सब कुछ हैं। स्वयं से प्रेम का अर्थ है सभी से प्रेम, जानवरों से प्रेम, हर चीज़ से प्रेम; क्योंकि आप सब एक हैं. यह महान विश्वास ही दुनिया को बेहतर बनाएगा। आत्म–विश्वास का आदर्श हमारे लिए बहुत उपयोगी है। यदि आध्यात्मिकता का प्रचार और अभ्यास अधिक व्यापक रूप से किया जाता यदि ऐसा होता, तो मुझे यकीन है कि वर्तमान बुराइयों और कष्टों का एक बड़ा हिस्सा गायब हो गया होता। मानव जाति के इतिहास में सभी पुरुषों और महिलाओं के जीवन में यदि कोई प्रेरक शक्ति किसी अन्य की तुलना में अधिक शक्तिशाली रही है, तो वह शक्तिशाली आध्यात्मिकता है। उन्होंने महानता केवल इसलिए प्राप्त की क्योंकि वे इस ज्ञान के साथ पैदा हुए थे कि उनका जन्म महान बनने के लिए हुआ है।

अनंत शक्ति ही धर्म है, शक्ति ही अच्छाई है। कमज़ोरी पाप है, सारे पाप और सारी बुराइयाँ उस एक शब्द 'कमजोरी' में समाहित हैं। सभी बुरे कामों के पीछे की प्रेरक शक्ति कमजोरी है; सारे स्वार्थ की जड़ कमजोरी है; यह कमजोरी ही है जो मनुष्य को दूसरों को नुकसान पहुंचाने के लिए प्रेरित करती है, यह कमजोरी ही है जिसका वास्तविक रूप नहीं बल्कि वह रूप है जो वह मनुष्य को दिखाती है। लोगों को पता होना चाहिए

कि वे क्या हैं, उन्हें दिन–रात याद रहना चाहिए कि वे क्या हैं। लोगों को मां के दूध की इस शक्ति की भावना को अपनाना चाहिए कि सबसे पहले सुनना है। इस आत्मा की बात सुननी चाहिए. उसका ध्यान करना चाहिए, ध्यान करना चाहिए, निरंतर ध्यान करना चाहिए, लोगों को आत्मा के बारे में सोचना चाहिए; इस विचार से, कि शरीर ऐसे कार्य करेगा जैसा संसार ने कभी नहीं देखा होगा।

निष्कर्ष :–

1. स्वामी विवेकानन्द ने धर्म के बारे में समझाते हुए कहा था कि धर्म में आदेश नहीं बल्कि उपदेश होता है। वर्तमान समय में धर्म के नाम पर तानाशाही चलती थी। तब स्वामी विवेकानन्द ने धर्म सुधार के प्रयास प्रारम्भ किये। स्वामी विवेकानन्द ने धर्म को हिन्दू धर्म, ईसाई धर्म, इस्लाम, बौद्ध धर्म, जैन धर्म नहीं, बल्कि मानव धर्म कहा और इसी मानव धर्म के बारे में यहाँ विचार प्रस्तुत किये गये।
2. यह मानव धर्म के विचारों का दर्शन है। 18वीं सदी का अवतरण "क्षणिक जीवन से युग युग परिवर्तन तक।" ऐसा जीवन जीने वाले और जिनका केवल नाम स्मरण करने योग्य है, ऐसे महान चरित्र वाले विवेकानन्द के दर्शन से एक अद्वितीय एवं सरल मानव धर्म का उदय होता है।
3. भगवान श्री रामकृष्ण परमहंस गुरु के निधन के बाद विवेकानन्द ने भारत का दौरा किया। और यही यात्रा उसे मानव धर्म की ओर खींच लाती है। उन्होंने देखा कि भारत के गौरवशाली अतीत और आध्यात्मिक और सांस्कृतिक विरासत के बावजूद, देश के लोग बेहद गरीबी में जी रहे थे। सामाजिक खून–खराबे और बुराई का शिकार हो गया है. हम आश्वस्त हैं कि आध्यात्मिक पुनरुत्थान के लिए एक नए प्रकार का क्रांतिकारी उत्साह है। इस क्रांतिकारी विचार के बीज से ही मानवतावादी विचार विवेकानन्द के दर्शन में प्रवेश करते हैं।
4. मानवतावाद का अर्थ है मनुष्य को, जैसा वह है, सभी सामाजिक प्रक्रियाओं के केंद्र में रखना। और आइए हम इसे स्वीकार करें और धर्म, ईश्वर और सभी चीजें मनुष्य के लिए हैं। यह सब मनुष्य के लिये नहीं है। विवेकानन्द को प्रत्येक भारतीय युवा और युवाओं के भीतर छिपी शक्तियों पर अटूट विश्वास था। ऐसा माना जा रहा है, लेकिन भारतीय लोगों की रोटी, कपड़ा और मकान जैसी बुनियादी जरूरतें भी पर्याप्त नहीं हैं। एक वर्ग लगातार गरीबी में फंसा हुआ है। और दूसरा वर्ग गरीबों का फायदा उठाकर उन्हें लूट रहा है। इस समय, विवेकानन्द एक धनी और आर्थिक रूप से व्यवहार्य उच्च वर्ग है। गरीबों की सेवा करने का आह्वान करते हुए कहा कि वास्तव में गरीबों, बीमारों, बूढ़ों और बच्चों की सेवा करना ही सच्चा धर्म है। "मानव सेवा ईज प्रभु सेवा।" ऐसा नारा देने से "दरिद्र नारायण" नाम का एक नया शब्द भारत की देन है। ईसाई धर्म के प्रसिद्ध वाक्यांश "अपने पड़ोसी से प्यार करो" ने विवेकानन्द को प्रभावित किया। इस प्रकार विवेकानन्द ने धर्म को उसके रहस्य से बाहर निकाला गुफाएँ बनाईं और उसका मानवीकरण किया।

सन्दर्भ–सूची :–

1. स्वामी विवेकानन्द संक्षिप्त जीवन.,लेखक–स्वामी ध्रुवेशानन्द,प्रकाशक– श्री रामकृष्ण आश्रम,राजकोट।
2. स्वामी विवेकानन्द ग्रन्थमाला – खण्ड–7,आलेख–स्वामी ध्रुवेशानन्द,प्रकाशक – श्री राजकृष्ण आश्रम राजकोट।
3. आधुनिक भारतीय दर्शनः–लेखक–डॉ. बी। जी.देसाई. प्रकाशक – जे बी सेडिल, अध्यक्ष, विश्वविद्यालय ग्रंथ निर्माण बोर्ड गुजरात राज्य, अहमदाबाद।
4. आदर्श मनुष्य का निर्माणः–लेखक – स्वामी ध्रुवसानंद प्रकाशक – श्री रामकृष्ण आश्रम – राजकोट।
5. विचार को सशक्त बनानाः–लेखक – स्वामी ध्रुवेशानंद प्रकाशक – श्री रामकृष्ण आश्रम – राजकोट।
6. गीता के पंचप्राणः–लेखक – पांडुरंग शास्त्री, आठवेलेजी के व्याख्यान से प्रकाशक–सिहिचर, दर्शन।
7. स्वामी विवेकानन्द – जीवनीः–प्रकाशक – श्री रामकृष्ण आश्रम – राजकोट।
8. श्री रामकृष्ण परमहंस की जीवनी :– प्रकाशक – श्री रामकृष्ण आश्रम– राजकोट।

★

राजस्थान स्वास्थ्य देखभाल अधिकार अधिनियम 2022 : भविष्य की चुनौतियाँ

डॉ. अनिल सैनी*

सार :– स्वस्थ शरीर ही स्वस्थ समाज का निर्माण करता है। इसी उद्देश्य का आत्मसात करते हुए राजस्थान सरकार ने विधानसभा में राजस्थान स्वास्थ्य देखभाल अधिकार अधिनियम 2022 पारित किया है। राजस्थान ऐसा करने वाला देश का प्रथम राज्य बन गया है। यह कानून राजस्थान के प्रत्येक नागरिक को सभी सार्वजनिक स्वास्थ्य सुविधाओं एवं कुछ चयनित निजी सुविधाओं का मुफ्त लाभ उठाने का अधिकार प्रदान करता है। यह कानून संविधान के अनुच्छेद 47 और अनुच्छेद 21 की विस्तारित परिभाषा पर आधारित है।

संकेत शब्द :– स्वास्थ्य, कानून, समाज, अधिनियम, सामाजिक परिवर्तन, बहुउद्देशीय, वित्तीय समावेशन।

राजस्थान स्वास्थ्य देखभाल अधिकार अधिनियम 2022 : परिचय :– एक बेहतर समाज के निर्माण के लिए नागरिको स्वस्थ, सशक्त एवं आत्मनिर्भर बनाने की आवश्यकता है, जब हम किसी व्यक्ति, समुदाय, समाज या राष्ट्र के समक्ष प्रमुख चुनौतियों पर विचार करते है तो सर्वप्रथम रोटी, कपड़ा, मकान व सुरक्षा की चर्चा करते है तथा स्वास्थ्य को गौण कर देते है। किसी भी राष्ट्र की समस्त विकास योजजाएं रोटी, कपड़ा, मकान, सुरक्षा, रोजगार आदि तक ही समिति रहती है, हम स्वास्थ्य को मूलभूत सुविधाओं में अभी तक स्थान ही नही दे पाये है। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री अमर्त्य सेन के अनुसार शिक्षा व स्वास्थ्य किसी भी समाज व राष्ट्र के जीवन में गुणात्मक परिवर्तन लाने में अत्यन्त ही आवश्यक तत्व है। इन दोनों में यथोचित परिवर्तन करके जीवन के स्तर में पर्याप्त और सकारात्मक परिवर्तन लाये जा सकते है। आधारभूत सुविधाओं के साथ–साथ स्वास्थ्य के प्रश्न को भी गंभीरता से लिया जाना चाहिए, क्योंकि किसी भी समाज का विकास प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष दोनों रूपों में समाज में रहने वाले लोगों के स्वास्थ्य से जुड़ा हुआ है। स्वस्थ रहने के लिए उचित दृष्टिकोण, स्थानीय संसाधन, उपचार व प्रकृति के साथ संतुलन बनाये रखना अत्यन्त आवश्यक है।

स्वास्थ्य की अवधारणा को मूलत : दो प्रकार से दृष्टिगत किया जाता है। प्रथम उपचारात्मक एवं द्वितीय सुरक्षात्मक। वर्तमान पूंजीवादी अर्थव्यवस्था और वैश्वीकरण के युग में सरकार व समाज का सम्पूर्ण ध्यान उपरात्मक उपायों पर ही अधिक होता है। वैश्विक–आर्थिक संस्थाएं, राज्य, सरकार, डॉक्टर व अधिकारी तंत्र अधिकतर उपचारात्मक तरीकों पर ही बल देते है, क्योंकि कहीं ना कहीं सभी के आर्थिक हित इससे जुड़े हुए है। सभी की चिंता स्वास्थ्य को बनाये रखने के स्थान पर रोग की चिकित्सा को लेकर रहती है। खराब स्वास्थ्य का सीधा–सीधा प्रभाव समाज के जीवन पर पड़ता है, तथा परिवार का विकास, समृद्धि, रोजगार च सम्पत्ति पर इसका विपरीत प्रभाव पड़ता है। जिस देश का स्वास्थ्य सूचकांक बेहतर है, उस देश का मानव विकास सूचकांक, सामाजिक प्रगति सूचकांक, लैंगिक समानता सूचकांक, जीवन की भौतिक गुणवत्ता सूचकांक भी बेहतर होगे।

वर्ष 1996 में सुप्रीम कोर्ट न माना कि जीवन के अधिकार (अनु. 21(अनु. 21) में स्वास्थ्य का अधिकार भी शामिल है, और स्वास्थ्य सेवाएं प्रदान करने के लिए राज्य सरकारों को उतरदायी माना। इसी उत्तरदायित्व का निवर्हन करते हुए राजस्थान सरकार द्वारा 'राजस्थान स्वास्थ्य का अधिकार विधेयक, 2022, दिनांक 22 सितम्बर 2022 को राजस्थान विधानसभा में प्रस्तुत किया गया था, जो कि विधानसभा द्वारा 21 मार्च 2023 को पारित किया गया। यह विधेयक स्वास्थ्य और कल्याण में समान अधिकारों की सुरक्षा और पूर्ति को सुनिश्चित करता है। इस कानून के अनुसार राजस्थान के लगभग 8 करोड़ नागरिकों को किसी भी सार्वजनिक स्वास्थ्य संस्थान, स्वास्थ्य देखभाल प्रतिष्ठान और नामित स्वास्थ्य केन्द्रों पर आवश्यक शुल्क या शुल्क के पूर्व भुगतान के बिना आपातकालीन उपचार व देखभाल का अधिकार होगा। साथ ही यह कानून स्वास्थ्य सेवा क्षेत्र में पारदर्शिता लाने के साथ–साथ अस्पतालों की जबावदेही भी तय करेगा।

***व्याख्याता– समाजशास्त्र, सीकर–राजस्थान।**

स्वास्थ्य देखभाल अधिकार अधिनियम 2022 के प्रमुख उद्देश्य व लाभ :—

1. राज्य के समस्त सरकारी अस्पतालों के साथ—साथ निजी अस्पतालों में भी आपातकालीन स्थिति में मरीजों को निःशुल्क उपचार दिया जाना।
2. सभी मरीजों को 50 से अधिक क्षमता वाले बेड के निजी अस्पतालों में निःशुल्क उपचार उपलब्ध करवाना।
3. राज्य के सभी नागरिकों को आउट डोर, इनडोर, चिकित्सक को दिखाना और परामर्श, दवाईयां, डायग्नोसिस, इमरजेंसी ट्रांसपोर्टेशन यानी एम्बुलेंस सुविधा, प्रोसीजर और सर्विसेज, इमरजेंसी ट्रीटमेंट की सभी सुविधाएं उपलब्ध करवाना।
4. राज्य के प्रत्येक व्यक्ति का स्वास्थ्य बीमा राज्य सरकार द्वारा अपने स्तर पर करवाना।
5. चिकित्सकों द्वारा मरीजों एवं उनके परिवार को आवश्यकता पर समयानुसार जानकारी उपलब्ध करवाना।
6. आपातकालीन स्थिति में बिना किसी फीस या चार्ज के निजी अस्पतालों द्वारा तुरन्त ईलाज प्रारम्भ करवाना तथा प्राथमिक उपचार के उपरान्त रैफर करने पर एंबुलेंस की सुविधा भी उपलब्ध करवाना।
7. किसी मेडिको—लीगल मामला है तो हेल्थ केयर प्रोवाइडर पुलिस की एनओसी या पुलिस रिपोर्ट मिलने के आधार पर ईलाज में देरी नहीं कर सकेगा।
8. किसी भी तरह ही महामारी के दौरान होने वाले रोगों के इलाज भी इस कानून के अन्नर्गत शामिल किये जायेगें।
9. ईलाज के दौरान मरीज कह अस्पताल में मृत्यु हो जाने पर भुगतान के लिए अस्पताल डेड बॉडी को अस्पताल में नहीं रोक सकेगें।
10. किसी भी मरीज को गंभीर स्थिति में दूसरे अस्पताल में रैफर करने की जिम्मेदारी अस्पताल की होगी।
11. सर्जरी, कीमोथैरेपी की पहले से ही सूचना देकर मरीज या परिजनों से सहमती ली जाएगी।
12. किसी भी पुरूष चिकित्सक द्वारा महिला मरीज को फिजिकल टेस्ट करने के दौरान अन्य महिला की उपस्थिति होना आवश्यक होगा।
13. सभी प्रकार की सुविधाओं व टैक्स के बारे में सूचना प्राप्त करने का अधिकार मरीज व उसके परिजनों को होगा।
14. निजी अस्पतालों द्वारा मरीज की बिमारी को सार्वजनिक नहीं किया जायेगा। केवल मरीज व उसके परिजनों को ही जानकारी उपलब्ध करवायी जायेगी।
15. सड़क दुर्धटना में मुफ्त ट्रांसपोर्टेशन, मुफ्त उपचार व मुफ्त बीमा कवर का लाभ दिया जायेगा।
16. इस बिल में मरीज व उसके परिजनों को लेकर भी कर्त्तव्य निर्धारित किये गये है। जिनमें वे चिकित्सा कर्मियों व चिकित्सों के साथ दुर्व्यवहार नहीं कर सकेंगे।
17. अप्राकृतिक मृत्यु के मामले में परिजनों को पोस्टमार्टम करने की अनुमति देनी होगी।
18. इस कानून के तहत नेचुरल बायोलॉजिकल खराबी पैदान करने वाले बैक्टीरिया, जहरीले पदार्थ, केमिकल अटैक, वायरस, परमाणु हमला, दुर्धटना, आबादी की बड़ी तादाद में मौत, गैसों का फैलना आदि भी शामिल किये गये है।
19. दुर्धटना में धायल मरीज को अस्पताल तक पहुंचाने वाले नागरिक को राशि रु. 5000 प्रोत्साहन के रूप में दिये जाने का प्रावधान किया गया है।
20. सुरक्षित खाना, पानी व सफाई की सुविधा उपलब्ध करवायी जायेगी।
21. किसी भी शिकायत का तुरन्त निपटारा करने हेतु सिस्टम तैयार किया जायेगा।
22. वेब पोर्टल के माध्यम से 24 घंटे के भीतर शिकायत को सहायता केन्द्र से सम्बन्धित अधिकारी को भेजा जाना।
23. शिकायत करने वाले को 24 घंटे के भीतर जवाब दिया जायेगा, तथा जिला स्वास्थ्य कमेठी को शिकायत मिलने पर 30 दिवस के भीतर उचित कार्यवाही की जायेगी।
24. कानून का उल्लंधन करने पर प्रथम स्तर पर चिकित्सक व अस्पताल पर राशि रु. 10,000 तथा द्वितीय स्तर पर 25,000 रु. का जुर्माना लगाया जायेगा।

25. समस्याओं के निवारण हेतु जिला स्तर पर अभिकरण स्थापित किया जायेगा।

उपर्युक्त उद्देश्यों व लाभ के साथ साथ ही राज्य सरकार द्वारा अपने दायित्व भी निर्धारित किये गये है जो कि निम्न है –

- एक सार्वजनिक स्वास्थ्य मॉडल तैयार करना व निर्धारत करना।
- राज्य के बजट में सुविधाओं हेतु उचित प्रावधान करना।
- भौगोलिक क्षेत्रों, जनसंख्या धनत्व व दूरी को ध्यान में रखते हुए राज्य में स्वास्थ्य सुविधाएं उपलब्ध करवाना।
- सभी स्तरों पर गुणवता और सुरक्षा के लिए मानक निर्धारित करना।
- सुरक्षित पेयजल, स्वच्छता व पोषण संबंधी पर्याप्त सुरक्षित भोजन की आपूर्ति सुनिश्चित करने हेतु एक समन्वय तंत्र स्थापित करना।
- महामारी व सार्वजनिक स्वास्थ्य आपातकालीन स्थितियों को रोकने, उपचार व नियन्त्रित करने हेतु सिस्टम का निर्माण करना।
- राज्य सरकार के स्वास्थ्य कर्मियों के समान वितरण को सुनिश्चित करने हेतु मानव संसाधन नीति विकसित करना।

राजस्थान स्वास्थ्य देखभाल अधिकार अधिनियम 2022 के समक्ष प्रमुख चुनौतियां व मुद्दे :–

- निजी अस्पताल को प्रतिपूर्ति – राज्य के सभी नागरिकों को निःशुल्क स्वास्थ्य सेवाएं प्रदान करने के लिए निजी अस्पताल को प्रतिपूर्ति करने का कोई प्रावधान नहीं है। जो कि निजी अस्पतालों के लिए अव्यवहारिक है। इससे संविधान के अनु. 19 (1) (जी) का उल्लंधन करता है।
- मरीज की निजता के अधिकार का उल्लंधन – जिला स्वास्थ्य प्राधिकरण को शिकायतों के लिए वेब पोर्टल पर की गई कार्रवाई रिपोर्ट अपलोड करना आवश्यक है, परन्तु यहां यह स्पष्ट नहीं है कि वेब पोर्टल पर रिपोर्ट तक किसकी पहुंच होगी। इससे चिकित्सीय मामलों में मरीज की निजता के अधिकार का उल्लंधन हो सकता है।
- बजट आवंटन का अभाव – राजस्थान सरकार अपने कुल बजट का लगभग 7.4 प्रतिशत स्वास्थ्य सेवाओं पर खर्च करती है। जो कि लगभग 22 हजार करोड़ की राशि है। जबकि अन्य राज्यों में यह लगभग 6 प्रतिशत है, परन्तु अभी स्वास्थ्य सेवाओं पर ओर अधिक व्यय किये जाने की आवश्यकता है। भारत सरकार द्वारा बजट आवंटन की स्थिति निम्न ग्राफ में देखी जा सकमी है। पर्याप्त बजट के अभाव में इस कानून को सही प्रकार से लागू करने व लोगों को इसका लाभ पहुंचाने में समस्याएं उत्पन्न होगी।

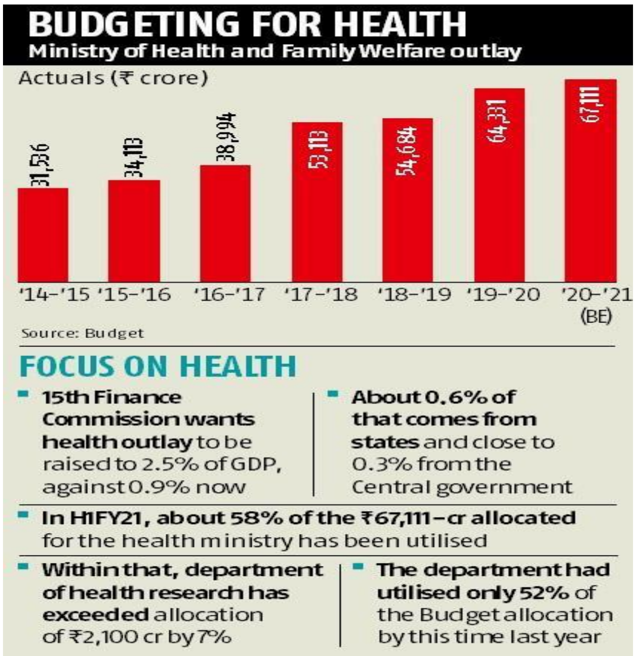

- निजी अस्पतालों द्वारा विरोध – राजस्थान स्वास्थ्य देखभाल अधिकार अधिनियम 2022 जिस मंशा से राज्य सरकार द्वारा पारित किया गया था, वह मंशा निजी अस्पतालों व चिकित्सकों के विरोध का कारण बन गई है। राज्य के समस्त निजी अस्पतालों व चिकित्सकों द्वारा लगातार इसका विरोध किया जा रहा है, क्योंकि निजी अस्पतालों का मानना है कि इस कानून से उनके ऊपर अनावश्यक आर्थिक बोझ बढ़ेगा, जो कि उनके वर्तमान आर्थिक व व्यवसायिक हितों पर विपरीत प्रभाव डालेगा।
- आपातकालीन सेवाओं की परिभाषा स्पष्ट ना होना – राज्य के समस्त निजी अस्पतालों व चिकित्सकों द्वारा लगातार इस बात का विरोध किया जाता रहा है कि आपातकालीन सेवाओं की परिभाषा इस कानून में स्पष्ट नहीं है, तथा आपातकालीन ईलाज के दौरान मरीज द्वारा व्यय का भुगतान नहीं करने पर इस व्यय का भुगतान सरकार द्वारा किस प्रकार से तथा समयबद्ध रूप से किस प्रकार किया जायेगा, स्पष्ट नहीं है।
- संसाधनों की अपर्याप्तता – राज्य की जनसंख्या जनगणना वर्ष 2011 के अनुसार 6.86 करोड़ है तथा जनसंख्या घनत्व 342 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी. है, वहीं वर्तमान वर्ष 2023 में एक अनुमान के अनुसार जनसंख्या 7.95 करोड़ के लगभग हो गई है। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार राज्य में 68.44 प्रतिशत ग्रामीण तथा 31.16 प्रतिशत शहरी जनसंख्या है परन्तु इसके विपरीत स्वास्थ्य सेवाओं की 75 प्रतिशत सुविधाएं शहरी क्षेत्रों में स्थित है। राजसथान मेडिकल काउंसिल के अनुसार वर्ष 2020 तक राज्य में कुल 52976 चिकित्सक पंजीकृत है, जो कि राज्य की जनसंख्या के अनुपात में बहुत कम है। राज्य में प्रत्येक एक हजार पर एक चिकित्सक की आवश्यकता है परन्तु वर्तमान में प्रत्येक दो हजार पर एक चिकित्सक उपलब्ध है। एक रिपोर्ट के अनुसार राजस्थान के 3000 चिकित्सा संस्थानों में लगभग 8400 चिकित्सक है, लेकिन काम व घंटों की ऑडिट नहीं होने के कारण चिकित्सा व्यवस्था चरमरा रही है। कई जगह स्वीकृत पद से भी अधिक चिकित्सक लगे हुए है, वहीं कई जगह पद रिक्त है। 14378 उपकेन्द्र ए.एन.एम. के जिम्मे है। वहीं 2090 प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, 606 सीएचसी, 190 शहरी डिस्पेंसरी व 103 उपजिला अस्पताल होने के बावजूद भी अधिकांश जनसंख्या निजी अस्पतालों के चक्कर काटती है। ग्रामीण राजस्थान आज भी स्वास्थ्य सेवाओं के विस्तार में पिछड़ा हुआ है। इस कानून को लागू करने में सर्वाधिक बड़ी चुनौती यहीं है कि ग्रामीण क्षेत्रों में सर्वप्रथम चिकित्सा सुविधाओं का विस्तार किये बिना इस कानून का लाभ ग्रामीण क्षेत्रों तक किस प्रकार पहुंचाया जायेगा।

राजस्थान स्वास्थ्य देखभाल अधिकार अधिनियम 2022 हेतु प्रमुख सुझाव :–

- राजस्थान में 8.3 करोड जनसंख्या के उपचार हेतु लगभग 55000 एलौपेथिक चिकित्सक उपलब्ध है। राज्य के सभी नागरिकों को निःशुल्क स्वास्थ्य सेवा उपलब्ध करवाने के लिए आवश्यक है कि प्रत्येक एक हजार की जनसंख्या पर एक चिकित्सक उपलब्ध करवाया जाये जो कि वर्तमान में दो हजार की जनसंख्या पर एक चिकित्सक उपलब्ध है।
- डॉ. सुरेश पांडेय के अनुसार भारत सरकार कुल जीडीपी का लगभग 2 प्रतिशत स्वास्थ्य पर व्यय करती है। जो कि भूटान, नेपाल और श्रीलंका से भी कम है। भारत सरकार द्वारा चिकित्सा पर कुल जीडीपी का लगभग 10 प्रतिशत व्यय किया जाना आवश्यक है। अमेरिका में प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष लगभग 9.00 लाख रू. स्वास्थ्य पर खर्च किये जाते है, वहीं भारत में यह मात्र 5300 रु. है।
- राज्य में वर्तमान में 14378 उपकेन्द्र, 2090 प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, 606 सीएचसी, 190 शहरी डिस्पेंसरी व 103 उपजिला अस्पताल उपलब्ध है जो कि जनसंख्या के अनुपात में अत्यन्त कम है, आवश्यकता है कि सरकार विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में चिकित्सा सुविधाओं का विस्तार करें ताकि कि प्रत्येक व्यक्ति तक उत्तम स्वास्थ्य पहुंचाने का यह कानून धरातल पर उतर सके।
- कानून के तहत आने वाले निजी अस्पतालों हेतु ऑनलाईन भुगतान की सुगम प्रक्रिया बनायी जाने चाहिए, ताकि निजी अस्पतालों को वित्तीय सुरक्षा प्राप्त हो सके तथा वह मरीजों के ईलाज में अधिक रूचि दिखाये।

- राज्य में चिकित्सकों तथा नर्सेज कार्मिकों के साथ–साथ अन्य तकनीकी कर्मचारियों की नियुक्ति शीघ्र की जाये।
- राज्य के जिला व उप–जिला अस्पतालों में आवश्यक सुविधाओं, उपकरणों व जांच मशीनों की आपूर्ति की जाये।
- राज्य सरकार द्वारा वर्तमान में संचालित अनेक प्रकार की स्वास्थ्य योजनाओं को एक कानून के तहत एकीकृत किया जाये ताकि सभी प्रकार की स्वास्थ्य सुविधाएं नागरिकों को सुगमता से उपलब्ध हो सके। मुख्यमंत्री निःशुल्क दवा योजना, मुख्यमंत्री निःशुल्क जांच योजना,, मुख्यमंत्री चिरंजीवी स्वास्थ्य बीमा योजना जैसी अनेक योजनाओं को इस कानून में एकीकृत किया जा सकता है।
- राजस्थान स्वास्थ्य देखभाल अधिकार अधिनियम 2022 का आमजन में पर्याप्त प्रचार–प्रसार किया जाये ताकि कानून का लाभ प्रत्येक व्यक्ति तक पहुंचाया जा सके।
- राज्य सरकार द्वारा उपचारात्मक उपाय के साथ–साथ सुरक्षात्मक उपायों पर ध्यान केन्द्रित किया जाना चाहिए, ताकि कम से कम जनसंख्या को उपचार की आवश्यक हो तथा सभी तक स्वास्थ्य सुविधायें पहुंचायी जा सके।
- कार्यालय महानिदेशक पुलिस, राजस्थान, जयपुर के सड़क दुर्घटना प्रतिवेदन 2020 के अनुसार राजस्थान में कुल 19114 सड़क दुर्घटनाएं हुई, जिनमें 9250 लोगों की मृत्यु हुई तथा कुल 16769 लोग धायल हुए, यह आंकड़े साल दर साल बढ़ते जा रहे है, राज्य सरकार इस कानून के तहत सड़क दुर्घटनाओं में धायल लोगों को अस्पताल पहुंचाने वालों को प्रोत्साहन राशि दे रही है परन्तु साथ–साथ दुर्घटना स्थलों तक समय पर एम्बुलेंस व आपातकालीन चिकित्सा सुविधा उपलब्ध करवाने के ओर अधिक प्रयास किये जाने चाहिए। जिसमें एम्बुलेंस एवं ट्रोमा यूनिट में वृद्धि करने की भी आवश्यकता है। (सड़क दुर्घटना विवरण 2020)
- सरकार को राज्य में संचालित बड़े–बड़े निजी अस्पतालों का सामाजिक दायित्व निर्धारित करना चाहिए, ताकि कॉपोरेट सोशल रेस्पोन्शब्लिटी फण्ड का उपयोग इस कानून का प्रभावी तरीके से लागू करने में किया जा सके।
- राज्य सरकार जिला स्तर तथा ब्लॉक स्तर पर विशेष कमेठियों का निर्माण करें जिसमें सभी वर्गो के लोगों को शामिल किया जाए तथा समय–समय पर इन कमेठियों द्वारा सरकारी व निजी अस्पतालों की निगरानी करने के साथ–साथ सरकार को प्रभावी स्वास्थ्य सेवाओं के विस्तार हेतु सुझाव उपलब्ध करवाये जा जाएं।
- वर्तमान में राज्य में 01 एम्स के साथ कुल 26 सरकारी तथा 10 निजी मेडिकल कॉलेज स्थापित है। राज्य सरकार द्वारा कानून के प्रभावी क्रियान्वयन तथा चिकित्सकों, नर्सिंग कर्मचारियों व अन्य स्वास्थ्य कार्मिकों के अध्ययन एवं प्रशिक्षण हेतु मेडिकल कॉलेजों की संख्या में वृद्धि की जानी चाहिए।
- सरकार द्वारा वित्तीय संसाधनों के विकेन्द्रीकरण करने के कारण स्वास्थ्य सुविधाओं का विस्तार हुआ है। सरकार द्वारा मानव संसाधन प्रबन्धन के विकेन्द्रीकरण, बजटीय आवंटन में वृद्धि और निर्णय लेने में सामुदायिक भागीदारी में वृद्धि करने के नीतिगत निर्णय लेने की आवश्यकता है।

संदर्भ–सूची :–

1. राजस्थान स्वास्थ्य देखभाल अधिकार अधिनियम 2022, प्रतिवेदन, राजस्थान सरकार।
2. राजस्थान सड़क दुर्घटना प्रतिवेदन 2020, राजस्थान पुलिस महानिदेशक कार्यालय, जयपुर।
3. राजस्थान सुजस, मार्च 2023 अंक, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, राजस्थान सरकार।
4. राजस्थान मेडिकल काउन्सिल, जयपुर, https://www.rmcjaipur.org/
5. चिकित्सा, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण विभाग, राजस्थान सरकार, https://rajswasthya.nic.in/
6. बजट प्रतिवेदन, राजस्थान सरकार वर्ष 2023।
7. तपन बिसवाल, मानवाधिकार, जेन्डर एवं पर्यावरण, वीवा 2008।
8. योजना मासिक पत्रिका, मार्च, अप्रैल 2023, अंक।
9. डा. सुभी धुसिया (2011), भारतीय समाज में महिलाएं, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया।
10. सांख्यिकीय विभाग राजस्थान सरकार द्वारा जारी रिपोर्ट।

अपमानजनक संबंध और अंतरंग साथी-हिंसा
(भारत के विशेष संदर्भ में)

दुर्गेश नंदिनी*
निर्मल कुमार निर्मोही**

शोध सार :– हिंसा एक सामाजिक अपराध है। यह एक गंभीर सामाजिक समस्या है। परिवार के किसी भी सदस्य द्वारा किसी अन्य सदस्य को शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक या आर्थिक रूप से प्रताड़ित करना घरेलू हिंसा कहलाता है। यह एक प्रकार का विरोधाभास ही है कि जिस देश में शक्ति (देवी) की पूजा होती है उसी देश में नारी, जो शक्ति का प्रतिरूप है, घरेलू हिंसा की अत्यधिक शिकार होती हैं। आए दिन समाचार पत्रों या आसपास में हो रही घटनाओं में घरेलू हिंसा की घटना देखने–सुनने को मिल ही जाती है। घरेलू हिंसा में मुख्य रूप से हिंसा करने वाला स्त्री का अंतरंग साथी होता है। यह अंतरंग साथी स्त्री का वर्तमान पति, पूर्व पति या प्रेमी होता है। भारतीय समाज पितृसत्तात्मक समाज है इसलिए परिवार में पुरुषों का वर्चस्व अधिक होता है। वह परिवार का मुखिया या स्वामी होता है। धर्म, समाज और रूढ़िवादी परंपराएँ पितृसत्ता को मजबूत बनाती हैं। सदियों से महिलाएँ इसका दंश झेलती आई हैं और वर्तमान में भी उनकी स्थिति में वांछनीय सुधार नहीं हुआ है। महिलाओं को पुरुष मित्र या अंतरंग साथी पर इतना निर्भर बना दिया जाता है कि उनकी स्वतंत्र सत्ता कहीं खो जाती है। समाज में स्त्रियों की स्थिति उनके पतियों पर अश्रित होती है। उनका पति या साथी जैसा भी हो, उन्हें उनके साथ ही निर्वाह करना होता है। जो स्त्रियाँ अपने पति या अंतरंग साथी के दुर्व्यवहार का विरोध कर आवाज़ उठाती हैं उन्हें पारिवरिक या सामाजिक सहयोग कम ही मिलता है। अपनी लड़ाई खुद लड़नी पड़ती है, इस क्रम में सामाजिक तिरस्कार का भी सामना करना पड़ता है। इस लेख के माध्यम से हम अंतरंग साथी द्वारा की जाने वाली हिंसा, कार्यस्थल पर महिलाओं के साथ होने वाली हिंसा और महिलाओं को सुरक्षा प्रदान करनेवाले कानूनी अधिकार पर दृष्टि डालेंगे।

मुख्य बिन्दु :– घरेलू हिंसा, पितृसत्तात्मक समाज, घरेलू हिंसा अधिनियम 2005, कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन उत्पीड़न (रोकथाम, निषेध व निवारण) अधिनियम 2013, स्त्री सशक्तीकरण, आर्थिक स्वतंत्रता।

भूमिका :–

"सुन लो नारी, एक नाम है पीड़न कसक–क्रंदन रोदन का
सुन लो, नारी नाम युगों से चिर अश्रु–उपेक्षा शोषण का।"[1]

सदियों से नारी के लिए उपेक्षिता, शोषिता, अबला, परित्यकता जैसे विशेषणों का प्रयोग होता रहा है। उन्हें एक स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में न देखकर सदैव किसी की पुत्री, किसी की पत्नी या किसी की माँ के रूप में देखा जाता रहा है। भारतीय समाज में माना जाता है कि पुरुष के होने से ही स्त्री का सौभाग्य है अन्यथा उसका जीवन व्यर्थ है। ऐसा प्रतीत होता है मानो स्त्रियों का भाग्य पुरुषों की कुशलता पर टिका हो। पितृसत्तात्मक व्यवस्था में पुरुष भी स्वयं को स्त्री के भाग्य का स्वामी समझता है। वह निश्चित करता है कि उसकी पुत्री, पत्नी, पालिता किस प्रकार से परिवार में रहेंगी। परिवार में निर्णय लेने का अधिकार पुरुषों को ही होता है। पितृसत्तात्मक समाज ने पुरुषों को जितनी अधिक स्वतंत्रताएँ दे रखी है उतनी ही अधिक स्त्रियों के लिए वर्जनाएँ बना रखी हैं। ये स्वतंत्रताएँ पुरुषों को अभिमानी बनाती हैं एवं स्त्रियों को संकुचित मानसिकता के साथ जीवन व्यतीत करने के लिए मजबूर करती हैं। इस प्रकार के समाज में अधिकतर सामाजिक नियम या बाध्यताएँ केवल स्त्रियों के लिए ही बने हैं। पितृसत्तात्मक व्यवस्था को स्त्रियों का स्वतंत्र

*** शोधार्थी, हिन्दी विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा।**
****शोधार्थी, समाजशास्त्र विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा।**

व्यक्तिव रास नहीं आता है। इस प्रकार की व्यवस्था में पुरुष सदैव स्त्रियों पर अपना अधिकार बनाए रखना चाहता है।

अंतरंग साथी के अंतर्गत वे पुरुष साथी आते हैं जिनका महिला के साथ नज़दीकी, भावनात्मक, संवेगात्मक या वैवाहिक संबंध हो। महिला का पति, पूर्व पति, लिव–इन संबंध में साथ रहने वाला पुरुष साथी आदि महिला के अंतरंग साथी कहे जाते हैं। साथी के द्वारा महिला की स्वतंत्रता का हनन करना तथा उस पर जबरन स्वामित्व स्थापित करना अंतरंग साथी हिंसा है। घरेलू हिंसा एक सामाजिक अपराध है। यह एक गंभीर सामाजिक समस्या है। परिवार के किसी भी सदस्य द्वारा किसी अन्य सदस्य को शारीरिक, मानसिक, लैंगिक, भावनात्मक या आर्थिक रूप से प्रताड़ित करना घरेलू हिंसा कहलाता है। इस बात में कोई संदेह नहीं कि इस हिंसा की शिकार मुख्यतः स्त्रियाँ होती हैं, जिसका नकारात्मक प्रभाव पूरे परिवार पर पड़ता है। साथ ही यह भी एक उल्लेखनीय बात है कि घरेलू हिंसा में मुख्य रूप हिंसा करने वाला स्त्री का पति, पूर्व पति, प्रेमी या अंतरंग साथी होता है कभी–कभी अंतरंग साथी के परिवार के अन्य सदस्य भी हिंसा में शामिल रहते हैं।

घरेलू हिंसा के कई प्रकार होते हैं– शारीरिक, भावनात्मक, मानसिक, लैंगिक, शाब्दिक, आर्थिक, तकनीकी आदि। परिवार तथा संबंधों में व्याप्त ईर्ष्या, अंहकार, अपमान तथा विद्रोह घरेलू हिंसा के मुख्य कारण बनते हैं। विश्व के अधिकांश देश पुरुष प्रधान हैं इसीलिए पुरुष सदैव स्वयं को प्राथमिक स्थान पर रखते हैं तथा स्त्रियों को दोयम दर्जे का स्थान प्रदान करते हैं। ऐसे में जो स्त्रियाँ दहेज के लोभ या अंतरंग साथी के अभिमान के कारण घरेलू हिंसा का शिकार होती हैं, उनके लिए उनका जीवन नारकीय हो जाता है। घरेलू हिंसा के अंतर्गत साथी द्वारा किए जाने वाले कई कृत्य ऐसे हैं जो हिंसा की श्रेणी में आते हैं। अंतरंग साथी द्वारा की जानेवाली हिंसा निम्नवत हैं–

1. शारीरिक हिंसा
2. आर्थिक हिंसा
3. लैंगिक हिंसा
4. तकनीकी हिंसा
5. भावनात्मक हिंसा

शारीरिक हिंसा के अंतर्गत अंतरंग साथी द्वारा मारपीट करना, धक्का देना, थप्पड़ मारना, किसी अन्य रीति से शरीर को क्षति पहुँचाना आदि क्रियाएँ आती हैं। स्त्री को आर्थिक अधिकारों से वंचित कर पुरुष साथी उस पर आर्थिक हिंसा करता है। आर्थिक हिंसा के अंतर्गत स्त्री को आवश्यक कार्य के लिए धन उपलब्ध न कराना, रोजगार न करने देना, काम करने के बाद भी उसके वेतन पर अपना अधिकार जमाना आदि कार्य आते हैं। लैंगिक उत्पीड़न या हिंसा के अंतर्गत स्त्री को हीन समझना या उसकी गरिमा को ठेस पहुँचाने वाली क्रियाएँ आती हैं। लैंगिक हिंसा का ही एक और विस्तृत रूप है तकनीकी हिंसा। डिजिटल तकनीक का इस्तेमाल कर महिलाओं पर नजर रखना, उनका पीछा करना, धमकी देना, उन्हें नुकसान पहुंचाना आदि तकनीकी हिंसा के अंतर्गत आते हैं। डिजिटल तकनीक, नेटवर्क या सर्विस के द्वारा महिलाओं के प्रति कोई भी खतरनाक या हानिकारक व्यवहार तकनीकी हिंसा है। स्त्री को अपशब्द कहना, उसके चरित्र पर दोषारोपण कर उसे अपमानित करना, दहेज न देने या पुत्र उत्पन्न न करने पर उसे ताने देना जैसी क्रियाएँ भावनात्मक हिंसा के अंतर्गत आती हैं। इन सभी हिंसाओं की मुख्य भूमिका में महिला का अंतरंग साथी होता है, चाहे वह उसका पति हो, पूर्व पति हो या कोई पुरुष साथी हो। अपने अंतरंग साथी द्वारा की गई हिंसा को सहती हुई स्त्री अपने जीवन का एक बड़ा हिस्सा दुख में व्यतीत करती है। अंतरंग साथी द्वारा शारीरिक, आर्थिक, लैंगिक, भावनात्मक आदि हिंसा किए जाने की शिकायत करने पर परिवारवाले, समाज के तथाकथित प्रतिष्ठित लोग, यहाँ तक कि कई मामलों में पुलिस भी समझौता करने की सलाह देते हैं। संवेदनशीलता के साथ उनकी समस्या पर विचार नहीं किया जाता।

शारीरिक हिंसा के निशान तो दिखते हैं परंतु शाब्दिक, मानसिक या आर्थिक हिंसा के निशान नहीं दिखते। इस प्रकार की हिंसा के कारण जिस दर्द से स्त्रियाँ गुजरती हैं उसका गहरा असर उनके मानसिक स्वास्थ्य पर पड़ता है। इस हिंसा की शिकार केवल निम्न वर्ग की अशिक्षित महिलाएँ ही नहीं होती बल्कि

मध्यम एवं उच्च वर्ग की शिक्षित महिलाएँ भी होती हैं। पुरुष अपने पुरुषत्व मोह में नारी की पृथक सत्ता का विस्मरण कर देता है। इसी व्यथा को प्रसाद ने अपनी सुप्रसिद्ध रचना ' कामायनी ' में व्यक्त किया है—

"तुम भूल गए पुरुषत्व—मोह में कुछ सत्ता है नारी की
समरसता है संबंध बनी अधिकार और अधिकारी की।"[२]

यदि किसी पुरुष द्वारा अपने घर में जिसके साथ उसी घर में कोई स्त्री रहती है, उन्हें पीटा जाता है, धमकी दी जाती है या उत्पीड़ित की जाती हैं तो वह घरेलू हिंसा की शिकार हैं। घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण अधिनियम, 2005 आपको घरेलू हिंसा के विरुद्ध संरक्षण और सहायता का अधिकार देता है। शारीरिक हिंसा के अंतर्गत, मारपीट करना, थप्पड़ मारना, ठोकर मारना, दांत से काटना, लात मारना, मुक्का मारना, धक्का देना, धकेलना, किसी अन्य रीति से शारीरिक पीड़ा या क्षति पहुंचना आदि कृत्य आते हैं।

लैंगिक हिंसा के अंतर्गत, बलपूर्वक मैथुन, अश्लील साहित्य या अन्य अश्लील सामग्री देखने के लिए मजबूर करना, आपका अन्य व्यक्तियों के मनोरंजन के लिए उपयोग करना, लैंगिक प्रकृति का दुर्व्यवहार, अपमानजनक, तिरस्कारपूर्ण या आपकी गरिमा का अतिक्रमण करने वाला कोई अन्य कार्य करना आदि कृत्य आते हैं। मौखिक और भावनात्मक दुर्व्यवहार के अंतर्गत, चरित्र या आचरण आदि पर अभियोग या कलंक लगाना, दहेज आदि ना लाने हेतु अपमान करना, पुरुष संतान या संतान न होने पर अपमान करना, अप्रतिष्ठित, अपमानजनक या क्षतिकारक टिप्पणियां या कथन कहना, उपहास करना, निंदा करना, आपको विद्यालय, महाविद्यालय या किसी अन्य शैक्षिक स्थान में न जाने पर बल देना, आपको नौकरी करने से रोकना, घर से बाहर जाने से रोकना, किसी विशिष्ट व्यक्ति से मिलने से निवारित करना, इच्छा के विरुद्ध विवाह पर बल देना, अपने पसंद के व्यक्ति से विवाह करने से निवारित करना, उनकी पसंद के व्यक्ति से विवाह करने पर बल देना आदि कृत्य आते हैं।

आर्थिक हिंसा के अंतर्गत, आपको या आपकी संतानों को भरणपोषण के लिया धन न देना, आपको या आपकी संतानों को खाना, कपड़े, दवाइयाँ आदि उपलब्ध न करवाना, घर से बाहर रहने के लिए मजबूर करना, आपको घर या घर के किसी भाग में घुसने या उसका उपयोग करने से रोक जाना, आपको आपकी नौकरी से निवारित किया जा रहा है या उसमें बाधा डाली जा रही है, नौकरी करने की अनुज्ञा न देना, भाड़े पर ली गई वास—सुविधा की दशा में भाड़ा न देना, कपड़ों या साधारण घर गृहस्थी के उपयोग की वस्तुओं के उपयोग की अनुज्ञा न देना, आपकों सूचित किए बिना स्त्रीधन या अन्य मूल्यवान वस्तुओं को बेच देना या बंधक रख देना, आपका वेतन, आय या मजदूरी आदि बलपूर्वक ले लेना, स्त्रीधन का व्यय करना, बिजली आदि जैसे अन्य बिलों का भुगतान न करना आदि कृत्य आते हैं। यह अधिनियम उपर्युक्त किसी भी प्रकार की हिंसा से महिला की सुरक्षा एवं उनके अधिकारों को सुनिश्चित करने की दिशा में कार्य करता है।

भारत का संविधान स्त्री—पुरुष की समानता की बात करता है, दोनों को समानता का अधिकार देना संविधान की आत्मा में निहित है। भारतीय संविधान उनको मिलने वाले अवसरों की समानता भी सुनिश्चित करता है। संविधान के भाग—3 में अनुच्छेद 12 से 35 तक मूल अधिकारों की बात है। अनुच्छेद 15 लिंग के आधार पर विभेद का निषेध करता है और अनुच्छेद 16 सभी नागरिकों को समान अवसर प्रदान करने की बात करता है। लिंग के आधार पर किसी प्रकार का भेदभाव दंडनीय है। स्त्रियों के हितों की रक्षा, उनके सम्मान की रक्षा एवं उन्हें भेदभाव रहित वातावरण उपलब्ध करवाना, आधी आबादी की समानता एवं सुरक्षा सुनिश्चित करना भारतीय संविधान की प्रमुख भूमिकाओं में से एक है। इसके अतिरिक्त घरेलू हिंसा को रोकने एवं स्त्रियों के अधिकारों की रक्षा करने के उद्देश्य से सबंधित कई कानून बनाए गए हैं। महिलाओं की शारीरिक और मानसिक कल्याण की रक्षा करने के लिए कुछ प्रमुख कानून निम्नलिखित हैं :—

1. 304 बी— दहेज हत्या का अपराध संज्ञान में लेने लायक अपराध की श्रेणी में आता है। इस अपराध के लिए अपराधी को आसानी से जमानत नहीं मिलती। आईपीसी की धारा 304 बी के तहत दोषी को कम से कम 7 साल से लेकर आजीवन उम्रकैद की सजा तक सुनाई जा सकती है।

2. भारतीय दंड संहिता 313–316–ये प्रावधान मिलकर गर्भवती महिलाओं के हितों की रक्षा और उनके तथा उनके गर्भस्थ शिशु के अधिकारों की सुरक्षा सुनिश्चित करने का उद्देश्य रखते हैं। महिला की सहमति के बिना गर्भपात कराना। महिला की सहमति के बिना यदि कोई गर्भपात कराता है या जीवित बच्चे को जन्म लेने से रोकने के इरादे से ऐसा करता है तो उसे 10 वर्ष तक की कैद की सज़ा हो सकती है, साथ ही जुर्माना भी लगाया जा सकता है।
3. धारा 498 ए– पति या पति के रिश्तेदार, जो महिला के साथ क्रूरतापूर्ण बर्ताव करते हैं, के द्वारा की गई क्रूरता के अपराध के लिए इस धारा के तहत सजा सुनाई जाती है।

भारतीय सर्वोच्च न्यायालय ने 1997 में एक ऐतिहासिक फैसला दिया और कहा कि यौन उत्पीड़न का हर मामला 'मौलिक अधिकार' (अनुच्छेद 14,15 और 21) का उल्लंघन है। घर के अलावा कार्यस्थल पर साथी या सहकर्मी महिलाओं से यदि दुर्व्यवहार करते हैं तो उनसे भी महिलाओं की सुरक्षा के लिए सरकार द्वारा कुछ दिशानिर्देश निर्धारित किए गए हैं। विशाखा दिशानिर्देश (1997) इस दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसके तहत कई प्रावधान बनाए गए हैं। जिस दफ्तर में 10 या उससे अधिक लोग काम करते हैं वहाँ एक अंदरूनी शिकायत समिति (आईसीसी) बनाना अनिवार्य है। कार्यस्थल पर हो रहे किसी भी प्रकार के दुर्व्यवहार की शिकायत वे शिकायत समिति को कर सकती हैं। इस समिति की अध्यक्ष महिला होंगी और सदस्यों में भी आधे से ज्यादा महिलायें होंगी। दफ्तर में यदि किसी महिला का यौन उत्पीड़न होता है और मामले की जांच के दौरान यदि आरोपी पर आरोप सिद्ध होता है तो समिति आईपीसी की धारा के तहत कार्रवाई करती है। अगर कोई महिला फैसले से संतुष्ट नहीं है तो वह पुलिस में भी शिकायत कर सकती है। 1997 से 2013 तक दफ्तरों में विशाखा दिशानिर्देश के आधार पर ही यौन उत्पीड़न के मामलों को देखा जाता था। बाद में, कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न की समस्या से निपटने के लिए भारतीय संसद ने 'कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन उत्पीड़न (रोकथाम, निषेध और निवारण)' अधिनियम, 2013 पारित किया। इस अधिनियम के माध्यम से महिला के मूल अधिकार की रक्षा और लैंगिक उत्पीड़न से मुक्त सुरक्षित वातावरण में उनके जीने के अधिकार की रक्षा होती है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट (9 मार्च 2021) के अनुसार विश्व स्तर पर लगभग हर तीन में से एक महिला अपने जीवनकाल में या तो शारीरिक या अंतरंग साथी द्वारा यौन हिंसा या गैर साथी द्वारा यौन हिंसा का शिकार हुई हैं। रिपोर्ट के मुताबिक 15–49 वर्ष की उम्र की लगभग एक तिहाई महिलायें, जो किसी रिश्तें में रही हैं, उन्हें अपने रिश्तें में अंतरंग साथी द्वारा शारीरिक या यौन हिंसा का शिकार होना पड़ा है। दिनांक– 24/02/2022 को एक प्रतिष्ठित दैनिक अखबार 'हिंदुस्तान' (पटना) में यह रिपोर्ट छ्पी कि 'हर चौथी महिला पति की प्रताड़ना से पीड़ित है'। यह रिपोर्ट चौंकानेवाली तथा विचारणीय है।

वर्तमान में स्त्री सशक्तीकरण से संबंधित कई दावे और वादे होते हैं। किसी वर्ग को सशक्तीकरण की आवश्यकता तब होती है जब सदियों से उसे दबाया गया हो या उसका शोषण किया गया हो। स्त्रियाँ विगत कई वर्षों से शोषित एवं उपेक्षित होती आईं हैं। हमारे समाज अर्थात भारतीय समाज में स्त्रियों को बाल्यावस्था से ही घरेलू कामकाज की शिक्षा दी जाती है, उन्हें कोमल तथा मृदुभाषी बनाया जाता है, उनके आने व जाने का समय निश्चित किया जाता है यहाँ तक कि उन्हें क्या पहनना चाहिए इस बात की भी शिक्षा दी जाती है। हमारी सामाजिक व्यवस्था ही इस प्रकार निर्मित है कि जिसमें स्त्रियाँ हमेशा पुरुष की अनुगामिनी बनकर रहने में ही अपने जीवन की सार्थकता समझती हैं। इसके विपरीत पुरुष किसी भी प्रकार से ऐसी मानसिकता से ग्रस्त नहीं होते। वे विवाहोपरांत स्त्रियों को अपनी सम्पत्ति समझते हैं तथा उनके विषय में उनकी सहमति के बिना निर्णय लेना अपना अधिकार समझते हैं और ताज्जुब की बात यह है कि स्त्रियाँ न तो पुरुषों के निर्णय का विरोध करती हैं न ही अपनी इच्छा उनके समक्ष रखती हैं। वे इसे अपनी नियति मानकर सबकुछ सहती रहती हैं। पुरुषों के लिए बाहर की दुनिया खुली रहती है परंतु स्त्रियों के लिए घर का आँगन सीमित कर दिया जाता है। इस भेदभावपूर्ण व्यवहार के कारण उनके विकास मार्ग में बाधा आती है। आज भी पुरुषों के मुकाबले कामकाजी स्त्रियों की संख्या कम है। योग्यता होते हुए भी उन्हें

आगे बढ़ने के अवसर कम मिलते हैं क्योंकि न तो उन्हें अपने साथी का साथ मिलता है न ही परिवार का। जिन्हें इन दोनों का साथ मिलता है वो निश्चित ही सफलता के नए कीर्तिमान स्थापित करती हैं।

स्त्रियों को जागरूक एवं सशक्त बनाने के लिए सन् 1914 से प्रत्येक वर्ष 8 मार्च को 'अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस' मनाया जाता है। महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए उन्हें उनके अधिकारों से परिचित कराना होगा तथा उनमें साहस का संचार करना होगा। स्त्रियों को केवल कानून और अधिकार का ज्ञान दे देने मात्र से ही वे सशक्त और आत्मनिर्भर नहीं बनेंगी। आवश्यकता इस बात की है कि उन्हें प्राप्त अधिकारों का ज्ञान हो साथ ही उन प्राप्त अधिकारों की रक्षा करने की शक्ति भी हो। ज्ञान एवं शक्ति के समन्वय से ही वे स्वयं को सशक्त कर पाएँगी। इन्हीं लक्ष्यों की पूर्ति के लिए जागरूकता कार्यकमों में तेजी लानी होगी तथा अंतरंग साथी एवं समाज को अपने दृष्टिकोण में बदलाव लाना होगा। सुप्रसिद्ध लेखिका कृष्णा सोबती स्त्री मुक्ति के विषय में कहती हैं कि– "हमने गृहस्थ की चौखट में औरतों का मनोविज्ञान बदल दिया है, अब वह इस चंगुल से निकलने की तैयारी में हैं। इस पूरी प्रक्रिया का जवाब शिक्षा और आर्थिक स्वतंत्रता में है। नागरिक होने की समानताओं और संभावनाओं में है।"[३]

निष्कर्ष :– अंतरंग साथी हिंसा की समस्या काफी व्यापक है और कई मामलों में तो हिंसा से पीड़ित स्त्री को यह पता भी नहीं होता है कि उसके साथ हिंसा हो रही है। इस प्रकार की हिंसा का मुख्य कारण सामाजिक रूढ़ता, आर्थिक असमर्थता, जानकारी एवं जागरूकता का अभाव है। हम स्वयं कई ऐसे परिवारों को जानते हैं जहाँ कि महिलायें अपने अंतरंग साथी द्वारा किए गए हिंसा की शिकार हुई हैं परंतु परिवार और समाज के लोगों ने कानून का रास्ता ना अपनाते हुए समझौता का रास्ता चुना। किसी भी प्रकार की हिंसा की जड़ श्रेष्ठ होने के भाव में है तथा अपना प्रभुत्व कायम रखने की इच्छा में है। भारत में कई कानून हैं जो सीधे तौर पर महिलाओं की सुरक्षा और उनके साथी से उनकी सुरक्षा से संबंधित है। हिंसा को नज़रंदाज़ करना समस्या का समाधान नहीं है। समस्या का समाधान तभी हो पाएगा सब स्त्रियाँ शिक्षित, जागरूक और स्वावलंबी होंगी। सदियों से नारी को उनके जिन अधिकारों से वंचित रखा गया है वे अब शिक्षा प्राप्त कर आर्थिक स्वतंत्रता की ओर बढ़ रही हैं एवं अपने अधिकारों की रक्षा कर पाने की दिशा में समर्थ हो रही हैं। बदलाव की बयार बह रही है जिसे हम सब महसूस कर पा रहे हैं। आवश्यकता इस बात की है कि समाज में यह बदलाव प्रत्यक्ष रूप से दिखाई दे जहाँ स्त्रियॉ अंतरंग साथी की अनुगामिनी नहीं बल्कि सहगामिनी के रूप में अपने कर्तव्यों का निर्वहन करती नजर आए और उन्हें वो सम्मान मिले जिनकी वो हकदार हैं।

संदर्भ–सूची :–

1. जगन्नाथ प्रसाद शर्मा, प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन, वाणी प्रकाशन, 2005, नई दिल्ली, पृष्ठ सं–161
2. जयशंकर प्रसाद, कामायनी, प्रकाशन संस्थान, 2014, नई दिल्ली, पृष्ठ सं– 63।
3. कृष्णा सोबती, कृष्ण बलदेव वैद, सोबती– वैद संवाद, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करणः 2007, नई दिल्ली, इलाहाबाद, पटना, पृष्ठ सं– 159।

आधार–ग्रन्थ–सूची :–

1. घरेलू हिंसा अधिनियम २००५– (भारत का राजपत्र, सं 498, नई दिल्ली, मंगलवार, अक्तूबर 17, 2006 / आश्विन 25, 1928)
2. कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन उत्पीड़न (रोकथाम, निषेध व निवारण) अधिनियम 2013, भारत, ILO डीसेन्ट वर्क टीम फॉर साउथ एशिया एण्ड कन्ट्री ऑफिस फॉर इंडिया, 2014
3. https://www.jagran.com/lifestyle/miscellaneous-who-is-bhanwari-devi-who-becomes-the-reason-for-issuing-vishaka-guidelines-23439200.html
4. https://hindi.feminisminindia.com/2023/09/20/what-is-tech-abuse-hindi/
5. https://hindi.feminisminindia.com/2021/09/10/understand-intimate-partner-violence-hindi/
6. https://www.who.int/news-room/fact-sheets/detail/violence-against-women

ഇ★ഏ

लिङ्गस्वरूपविमर्शः

नीरजकुमारभार्गवः*

अथ लिङ्गम् इति लिङ्गानुशासनस्य सूत्रं वर्तते। तत्र लिङ्गपदार्थः कः, नामलिङ्गानुशासनम् इत्यादौ प्रयुज्यमानस्य लिङ्गपदस्य कोऽर्थः। तस्माच्छसो नः पुंसि, स्त्रियाम्, ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य इत्यादौ च पुंस्त्वादिपदेन कस्य ग्रहणम् इत्यादयो विविधाः प्रश्नाः सन्ति, अतः पूर्वोक्तप्रश्नानां समाधानाय प्रबन्धेऽस्मिन् लिङ्गस्य लक्षणविषये तस्य भेदविषये यथाशास्त्रं प्रतिपाद्यते।

लिङ्गलक्षणम् – लिङ्गस्य सामान्यं लक्षणं तावत् ''प्रातिपदिकविशिष्टत्वं लिङ्गत्वम्, वैशिष्ट्यञ्च स्वजन्यशाब्दबोधीयप्रकारतावत्त्वम्, स्वनिष्ठशक्तिविषयत्वम्, स्वप्रयोज्यधर्मितानिरूपितप्रकारतावत्त्वम् एतत्त्रितयसम्बन्धेन''। अत्र समन्वयः वैयाकरणमते प्रातिपदिकस्य जातौ व्यक्तौ लिङ्गे च शक्तिः स्वीक्रियते। तस्मात् लिङ्गमपि प्रातिपदिकार्थो भवति। अपि च जातिवत् व्यक्तौ विशेषणं भवति। यथा घटप्रातिपदिकस्य घटे घटत्वे पुंस्त्वे च शक्तिरस्ति, अतः घटप्रातिपदिकनिष्ठशक्त्या घटघटत्वपुंस्त्वानामुपस्थितिः भवति, तत्र च घटो विशेष्यतया भासते, घटत्वं पुंस्त्वञ्च तत्र प्रकारीभूय भासते। एवञ्च घट इत्यस्मात् पुंस्त्वविशिष्टघट इति बोधो भवति। एवञ्च घटप्रातिपदिकजन्यशाब्दबोधे पुंस्त्वं प्रकारः अस्ति, अतस्तत्र प्रकारता वर्तते, एवञ्च घटप्रातिपदिकजन्यशाब्दबोधीयप्रकारतावत्त्वं पुंस्त्वे गतम्। पुनः घटप्रातिपदिकस्य पुंस्त्वे अपि शक्तिरस्तीति कृत्वा घटनिष्ठशक्तेः विषयोऽपि पुंस्त्वं भवतीति कृत्वा घटप्रातिपदिकनिष्ठशक्तिविषयत्वमपि तत्र गतम्। पुनः तृतीयसम्बन्धोऽप्यस्ति। स्वं घटप्रातिपदिकम्, तत्प्रयोज्या धर्मिता (सावच्छिन्नविशेष्यता) घटव्यक्तिनिष्ठधर्मिता तन्निरूपितप्रकारता पुंस्त्वे अस्ति, तादृशप्रकारतावत्त्वं पुंस्त्वे गतम्। तस्मात् पुंस्त्वं त्रिभिरपि सम्बन्धैः घटप्रातिपदिकविशिष्टं भवति। तस्मात् पुंस्त्वं लिङ्गम्। तथैव स्त्रीत्त्वे अपि समन्वयः कार्यः। तथाहि अजाघटकस्य अजेति प्रातिपदिकस्य अजाव्यक्तौ अजात्वजातौ स्त्रीत्त्वे च शक्तिरस्ति। ततश्च अजाशब्दात् स्त्रीत्त्वविशिष्टाजा इति बोधो भवति। अयञ्च बोधः स्त्रीत्वप्रकारकः अजाविशेष्यको वर्तते। एवञ्च अजप्रातिपदिकजन्यशाब्दबोधीयप्रकारतावत्त्वं स्त्रीत्वे गतम्। एवञ्च अजप्रातिपदिकस्य स्त्रीत्त्वे शक्तिरस्तीति कृत्वा अजप्रातिपदिकनिष्ठशक्तिविषयत्वमपि स्त्रीत्त्वे गतम्। तथैव अजप्रातिपदिकप्रयोज्यधर्मितानिरूपितप्रकारतावत्त्वमपि स्त्रीत्त्वे वर्तते, अतः स्त्रीत्त्वमपि लिङ्गमिति सिद्धम्। एवमेव नपुंसकत्त्वे समन्वयो बोध्यः। यथा जलप्रातिपदिकस्य जले जलत्वे नपुंसकत्त्वे च शक्तिरस्ति। तस्माज्जलमित्यस्मात् नपुंसकत्वविशिष्टजलमिति बोधो भवति, अयञ्च बोधो नपुंसकत्वप्रकारकजलविशेष्यको वर्तते, ततश्च नपुंसकत्त्वे जलप्रातिपदिकप्रयोज्यशाब्दबोधीयप्रकारतावत्त्वं गतम्, एवमेव जलशब्दस्य नपुंसकत्त्वे शक्तिरस्तीति कृत्त्वा नपुंसकत्त्वे जलपदनिष्ठशक्तिविषयत्वमपि वर्तते, तथैव जलप्रातिपदिकजन्यशाब्दबोधीयधर्मितानिरूपितप्रकारतावत्त्वमपि वर्तते, अतो नपुंसकत्त्वमपि लिङ्गम्। एवमेव अन्यशब्दवाच्येषु स्त्रीत्वपुंस्त्वनपुंसकत्त्वेषु समन्वयो बोध्यः। एतच्च लिङ्गं द्विविधं भवति लौकिकं शास्त्रीयञ्चेति। तत्र लौकिकमपि द्विविधं भवति अवयवविशेषरूपं जातिरूपञ्चेति। प्रत्येकं लौकिकमपि स्त्रीत्वपुंस्त्वनपुंसकत्वभेदात् त्रिविधं भवति। तथैव शास्त्रीयमपि स्त्रीत्वपुंस्त्वनपुंसकत्वभेदात् त्रिविधं भवति। अत्र क्रमेण स्त्रीत्वादीनां लौकिकं शास्त्रीयञ्च लक्षणं प्रस्तूयते। तत्र अवयवरूपलौकिकलिङ्गलक्षणविचारः – तत्र अवयवविशेषरूपस्य लौकिकलिङ्गस्य लक्षणं प्रोक्तं भाष्ये–

''स्तनकेशवती स्त्री स्याल्लोमशः पुरुषः स्मृतः।
उभयोरन्तरं यच्च तदभावे नपुंसकम्''। ।

अर्थात् स्तनकेशवती स्त्री भवति, लोमवान् पुरुषः भवति। तदभावे स्तनकेशलोमादिव्यञ्जकाभावे सति यद् उभयोः अन्तरं सादृश्यं भवति तन्नपुंसकं भवति। तत्र स्तनौ च केशाश्च इति स्तनकेशाः, तेऽस्यां सन्तीत्यर्थे मतुप्प्रत्यये सति स्तनकेशवतीशब्दः सिध्यति। प्रकृते च भूमादावर्थे मतुप्प्रत्ययो विद्यते, एवञ्चास्य

***सहायकाचार्यः, संस्कृतदर्शनविभागः, रामकृष्णमिशन्विवेकानन्दशैक्षणिकशोधसंस्थानम्, बेलुडमठः, हावडा।**

स्तनकेशवत्त्वमित्यर्थः। केशशब्दश्चात्र योनिवाचकः। तत्र स्तनकेशवत्त्वञ्च प्रसिद्धत्वाद् अन्यस्यापि कुमार्यादिगतस्य स्त्रीप्रतिपत्तिहेतोरुपलक्षणं बोध्यं तेन जन्मकाले स्तनाद्यभावेऽपि न क्षतिः। अथ स्त्र्याकारनपुंसकव्यक्तावपि स्तनकेशादिमत्त्वस्य सत्त्वेन तत्रातिव्याप्तिरिति। अतस्तत्रातिव्याप्तिपरिहाराय परिष्कृतं स्वरूपं तु रोगाद्यप्रयुक्तमिथुनकर्मोपयोगयोग्यत्वाभावरहितयोनिमत्त्वमिति। ततश्च तत्र न दोषः। तथैव लोमानि सन्त्यस्येत्यर्थे मतुबर्थके शप्रत्यये सति लोमशशब्दः सिध्यति। अत्रापि भूमादावर्थे शप्रत्ययो विद्यते एवञ्चास्य लोमवत्त्वमित्यर्थः। लोमपदञ्चात्र शिश्नस्य बोधकं वर्तते। अपि च लोमपदं पुंविज्ञानहेतोः कुमारादिगतस्य पुंस्त्वप्रतिपत्तेरुपलक्षणम्। अत्रापि रोगाद्यप्रयुक्तमिथुनकर्मोपयोगयोग्यत्वाभावरहितशिश्नादिमत्त्वमिति बोध्यम्, तेन पुमाकारनपुंसकव्यक्तौ नातिव्याप्तिरिति भावः। एवम् उभयोरपि स्त्रीपुंसयोर्यदन्तरं सदृशं स्तनलोमाद्युभयव्यञ्जनं तन्नपुंसकमित्यर्थः। तथा च निरुक्तस्त्रीत्वपुंस्त्वोभयशून्यत्वे सति स्त्रीपुरुषसाधारणावयववत्त्वं नपुंसकस्य लक्षणं बोध्यम्। तथा चाह श्रीमान् कैयटः कारिकायाः तात्पर्यं ''स्तनकेशवतीति। भूमादौ मतुप्। तथैव लोमश इति शः। लिङ्गे पृष्टे लिङ्गिकथनं लिङ्गप्रतिपत्तिपरमिति प्रश्नप्रतिवचनयोर्नास्त्यसंगतिः। स्तनकेशञ्च प्रसिद्धत्वादन्यस्यापि स्त्रीप्रतिपत्तिनिमित्तस्य कुमार्यादिगतस्योपलक्षणम्''। श्रीमता हरदत्तेनाप्येवमेवोक्तं ''भूमादौ मतुप्, तथैव लोमश इति शः। स्तनकेशवत्त्वञ्च प्रसिद्धत्वादन्यस्यापि कुमार्यादिगतस्य स्त्रीप्रतिपत्तिहेतोरुपलक्षणम्। लोमशत्वञ्च पुंविज्ञानहेतोः कुमारादिगतस्य। उभयोरपि स्त्रीपुंसयोर्यदन्तरं सदृशं स्तनलोपाद्युभयव्यञ्जनं तन्नपुंसकमित्यर्थः''।

जातिरूपलौकिकलिङ्गलक्षणविचारः – काशिकावृत्तौ लिङ्गस्य जातिरूपत्वं प्रतिपादितम्। तदनुसारं गोत्वमनुष्यत्वादयो यथा जातयस्तथैव स्त्रीत्वादय अपि जातयः सन्ति। जातेश्चाश्रयाः व्यक्तयो भवन्ति। तथा चोक्तं काशिकायां ''स्त्रियाम् इत्युच्यते केयं स्त्री नाम, सामान्यविशेषाः स्त्रीत्वादयो गोत्वादय इव बहुप्रकारा व्यक्तयः''। श्रीमता कैयटेनापि मतमिदमङ्गीकृतम्, तथा चाह कैयटः – ''स्त्रीत्वादीनां स्तनाद्युपव्यञ्जनानां गोत्वादिवत्सामान्यविशेषत्वं दर्शितम्''। आचार्येण भर्तृहरिणापि मतमिदं समर्थितम्। तथाहि भर्तृहरिवचनम् –

''तिस्रो जातय एवैताः केषाञ्चित्समवस्थिताः।
अविरुद्धा विरुद्धाभिर्गोमहिष्यादिजातिभिः।।(वा.प. 3–4)
हस्तिन्यां वडवायां च स्त्रीत्वबुद्धेः समन्वयः।
अतस्तां जातिमिच्छन्ति द्रव्यादिसमवायिनीम्''। । (वा.प. 3–5)

शास्त्रीयलिङ्गलक्षणविचारः – शास्त्रीयं लिङ्गं तु शब्दसाधुताप्रयोजकधर्मविशेषरूपं भवति। तथा चाह भाष्यकारः –

''संस्त्यानप्रसवौ लिङ्गमास्थेयौ स्वकृतान्ततः।
संस्त्याने स्त्यायतेर्ड्रट् स्त्री, सूते सुप् प्रसवे पुमान्''। ।

अर्थात् स्वसिद्धान्तानुसारं संस्त्यानप्रसवौ लिङ्गम् आस्थेयौ। तत्र संघातार्थकात् स्त्यायतेः ड्रट्प्रत्यये कृते सति स्त्रीशब्दः सिध्यति। तत्र यदाधिकरणे ड्रट्प्रत्ययः स्वीक्रियते तदा यस्यां शुक्रशोणिते संङ्घातरूपं प्राप्नुतः सा स्त्री, अथवा स्त्यायति गर्भः अस्यामिति स्त्री, इति वा विग्रहेण नारीवाचको भवति स्त्रीशब्दः। किन्तु प्रकृते ड्रट्प्रत्ययो भावार्थक इति स्वीक्रियते। तेन स्त्रीशब्दः संस्त्यानवाचकः, संस्त्यानपदेन चात्र तिरोभावो विवक्षितः। एवञ्च तिरोभावः स्त्रीत्वमिति समायाति। तिरोभावश्चात्र सत्त्वादिप्राकृतगुणानामेव विवक्षितः, ततश्च सत्त्वादिप्राकृतगुणानां तिरोभावः स्त्रीत्वमिति फलति। अपि च सूतेः प्रसवे अर्थे पुमान् भवति। अर्थात् सूते अपत्यं जनयतीति इति विग्रहेण निष्पन्नस्य पुंसिति शब्दस्य पुरुषः इत्यर्थो भवति। किन्तु प्रकृते भावार्थड्डुमसुन्प्रत्ययान्तः पुमसिति शब्दः स्वीक्रियते, तेन अस्यार्थो भवति प्रसवः, प्रसवशब्दश्चात्र आविर्भाववाचक अस्ति। ततश्च आविर्भावः पुंस्त्वमिति समायाति। तत्र च कस्याविर्भाव इति जिज्ञासायां प्राकृतगुणानामेव स्वीक्रियते। ततश्च सत्त्वादिप्राकृतगुणानामाविर्भावः पुंस्त्वमिति सिध्यति। अत्र संस्त्यानप्रसवाभ्यां साम्यावस्थापि प्रोच्यते। ततश्च सत्त्वादिप्राकृतगुणानां स्थितिः नपुंसकत्वमिति फलितं भवति। तथा चाह भाष्यकारः ''अधिकरणसाधना लोके स्त्री स्त्यायत्यस्याङ्गर्भ इति, कर्तृसाधनश्च पुमान् सूते पुमानिति। इह पुनरुभयं भावसाधनम्। संस्त्यानं स्त्री प्रवृत्तिश्च पुमान्''। अत्र संस्त्यानपदेन तिरोभावः, प्रवृत्तिपदेन आविर्भावो विवक्षितः। तथा चाह कैयटः ''संस्त्यानं तिरोभावः, प्रवृत्तिराविर्भावः, साम्यावस्था स्थितिः''। श्रीमान् भर्तृहरिरपि विषयेऽस्मिन्नेवमेवाह–

''आविर्भावस्तिरोभावः स्थितिश्चेत्यनपायिनः।
धर्मा मूर्तिषु सर्वासु लिङ्गत्वेनानुदर्शिताः''। । (वा.प.3–13–13)

अर्थात् आविर्भाव उपचयः पुंस्त्वम्, तिरोभाव अपचयः स्त्रीत्त्वम्, उभयोः साम्यावस्था स्थितिश्च नपुंसकत्त्वमिति सर्वेषु भावेषु कालक्रमेणावश्यम्भाविन अनपायिनो धर्माः लिङ्गत्त्वेन उपदर्शिताः।

श्रीमान् जयादित्योऽप्यस्मिन् विषये इत्थमेवाह ''सस्त्यानम्, प्रसवः, स्थितिश्चेति। संस्त्यानम् अपचयस्वभावं स्त्रीत्त्वम्, तद् यत्रास्ति सोऽर्थः स्त्री। प्रसवः उपचयात्मकः पुंस्त्वम्, तद् यत्रास्ति सोऽर्थः पुमान्। उपचयापचयरहिता यावस्था तदात्मिका स्थितिर्नपुंसकत्त्वम्, तद् यत्रास्ति तन्नपुंसकमिति ''। ततश्च सत्त्वादिप्राकृतगुणानां तिरोभावः स्त्रीत्वम्। सत्त्वादिप्राकृतगुणानाम् आविर्भावः पुंस्त्वम्। सत्त्वादिप्राकृतगुणानां साम्यं नपुंसकत्वमिति।

अथ लौकिकशास्त्रीयभेदात् लिङ्गस्य द्वैविध्येन किमत्र स्वीकार्यमिति चेत् न लौकिकम्। तथाहि स्तनकेशवत्त्वम् इत्यादिलक्षणेषु दोषाः सन्ति। तथाहि स्त्रीवेषधारी यो नटः सः भ्रुकुंस इत्युच्यते। एवञ्च तत्र स्तनकेशवत्त्वस्य सत्त्वात् स्त्रीत्वं प्राप्तम्, ततश्च भ्रुकुंसशब्दात् अजाद्यतष्टाप् इति सूत्रेण टाप्प्रत्ययः स्यात्। एवञ्च अतिव्याप्तिः। एवमेव नापितगृहं खरकुटी कथ्यते। तत्र च खरकुट्यादौ लोमवत्त्वस्य सत्त्वात् खरकुटीः पश्य इत्यादौ तस्माच्छसोः नः पुंसि इत्यनेन नत्वं प्राप्तम्, ततश्चातिव्याप्तिः। यदि च स्वाभाविकपरिणामशालिभिः स्तनादिभिरेव सम्बन्धो विवक्षितः, न तु यथाकथञ्चित् एवञ्च भ्रुकुंसादौ स्वाभाविकस्तनादिसम्बन्धाभावात् न दोष इति प्रोच्यते ततश्च खट्वादौ स्तनकेशवत्त्वस्य अभावात् स्त्रीत्वं न स्यात्, ततश्चाव्याप्तिः। एवं वृक्षादौ लोमवत्त्वस्याभावात् पुंस्त्वं न स्यात् इति एवञ्चास्याप्यव्याप्तिः। एवमेव दारादिषु स्तनकेशवत्त्वस्य सत्त्वात् स्त्रीत्त्वं प्राप्तम्, लोमवत्त्वस्याभावात् पुंस्त्वं चाप्राप्तम्। एवमेवान्येऽपि दोषाः सन्ति। तथा चोक्तं महाभाष्ये

''लिङ्गात्स्त्रीपुंसयोर्ज्ञाने भ्रुकुंसे टाप्प्रसज्यते।
नत्वं खरकुटीः पश्य खट्वावृक्षौ न सिध्यतः।।
नापुंसकं भवेत्तस्मिन् तदभावे नपुंसकम्''।

तथा चाह हरदत्तः – ''अत्र पक्षे भ्रुकुंसे टाप् प्रसज्यते, भ्रुकुंसः स्त्रीवेषधारी नटः, तस्य स्तनकेशसम्बन्धः उपलभ्यते, खरकुट्यादीनां च लोमशत्वात् पुंस्त्वे सति खरकुटीः पश्येत्यत्र नत्वं प्राप्नोति। खरकुटी – नापितगृहमुच्यते। ननु च स्वाभाविकपरिणामशालिभिः स्तनादिभिरत्र सम्बन्धो विवक्षितः न यथाकथञ्चित्, स्तनादि च प्रसिद्धस्यान्यस्याप्युपलक्षणमुक्तं तत्कुतोऽयं प्रसङ्ग एवं तर्हि खट्वावृक्षादौ न सिध्यतः, खट्वावृक्षादीनां स्तनलोमाद्यभावात्''। नापि शास्त्रीयं स्वीकर्तुं शक्यते। तथाहि शास्त्रीयं लिङ्गं केवलान्वयि वर्तते। किन्तु कुमार्याम् उपचयस्य सत्त्वेऽपि कुमारी स्त्री भवति न पुमान्। तथैव वृक्षे अपचयस्य सत्त्वेऽपि वृक्षः पुमान् एव भवति न नपुंसकम्। एवमेव कुण्डे उपचयस्य अपचयस्य सत्त्वेऽपि कुण्डं नपुंसकमेव भवति न स्त्री न पुमानिति। तथा चाह जयादित्यः "अयुक्तमेतत्, तथाहि उपचीयते कुमारीत्यपि कुमारी स्त्री भवति, न पुमान्। अपचीयते वृक्ष इति संस्त्यानविवक्षायामपि वृक्षः पुमानेन भवति न स्त्री। उपचीयते कुण्डमपचीयते वेत्योपचयापचययोरन्यतरविवक्षायामपि कुण्डं नपुंसकमेव भवति न पुमान्, नापि स्त्री "

एवं तर्हि किं गृह्यते इति चेच्छास्त्रीयमेव गृह्यते। तत्र शास्त्रीयस्य केवलान्वयित्वेऽपि न पूर्वोक्तदोषः, यतोहि कुमार्यर्थे उपचयस्य सत्त्वेऽपि कुमारीशब्दः सर्वदा अपचयमेव वक्तुं प्रभवति न तु उपचयमिति। एवमेव वृक्षार्थे अपचयस्य सत्त्वेऽपि वृक्षशब्दः सर्वदा उपचयमेव वक्तुं प्रभवति न तु अपचयमपि। एवमेव कुण्डार्थे उपचयस्य अपचयस्य सत्त्वेऽपि कुण्डशब्दः साम्यावस्थां प्रतिपादितुमेवालं न तु उपचयापचयावस्थामिति न दोषः। तथा चाह हरदत्तः "तदेवं सर्वपदार्थव्यापित्वादुपचयान्तरालावस्थायास्त्रीणि लिङ्गानि। एवञ्च नक्षत्रे तारका तिष्यः, कुमार्यर्थो वस्तु इति एकस्याप्यर्थस्य नानालिङ्गयोग उपपद्यते, आविर्भावादित्रयस्यापि गुणभेदेन तस्मिन्नेवार्थे सर्वदा सम्भवात्। न चैवं तद्वृत्तेः सर्वस्यैव शब्दस्य त्रिलिङ्गताप्रसङ्गः, न ह्यस्ति नियमः, यः शब्दो यत्रार्थे पर्यवस्यति तत्र विद्यमानः सर्व एवाकारस्तेन शब्देनाभिधातव्य इति किन्तु य आकारोऽभिधीयते तेन सता भवितव्यमित्येतावत्"। अथवा जातिरूपं लौकिकमेव गृह्यते, तथापि न कोऽपि दोषः। यतोहि स्त्रीत्त्वादयः जातिरूपाः सन्ति। ततश्च यथा गोत्त्वादिषु जातिषु काश्चन मनुष्यत्वादय आकृतिव्यङ्ग्याः भवन्ति, काश्चन च

ब्राह्मणत्वादय उपदेशव्यङ्ग्याः भवन्ति। तथैव चेतनवृत्तयः स्त्रीत्वादय आकृतिव्यङ्ग्याः भवन्ति, अचेतनवृत्तयश्च स्त्रीत्वादय उपदेशव्यङ्ग्याः भवन्ति। तथा चोक्तं काशिकायां "स्त्रियाम् इत्युच्यते केयं स्त्री नाम, सामान्यविशेषाः स्त्रीत्वादयो गोत्वादय इव बहुप्रकारा व्यक्तयः। क्वचिदाश्रयविशेषाभावादुपदेशव्यङ्ग्या एव भवन्ति यथा ब्राह्मणत्वादयः"।

अत्र नागेशः – नागेशः परमलघुमञ्जूषायां लिङ्गानां लक्षणानि प्राह ''अयमिति व्यवहारविषयत्वं पुंस्त्वम्, इयमिति व्यवहारविषयत्वं स्त्रीत्त्वम्, इदमिति व्यवहारविषयत्त्वं क्लीबत्वमिति विलक्षणं शास्त्रीयं स्त्रीपुन्नपुंसकत्त्वम्''।

निष्कर्षः :– लिङ्गं द्विविधं भवति लौकिकं शास्त्रीयञ्च। तत्र लौकिकं द्विविधं भवति जातिरूपम्, अवयवविशेषरूपञ्च। तत्रावयवविशेषरूपं चेतनमात्रवृत्तिः भवति। तच्च स्त्रीत्वपुंस्त्वनपुंसकत्त्वभेदात् त्रिविधं भवति। तत्र योन्यादिसमवेतत्त्वे सति प्राणित्वं स्त्रीत्वम्। शिश्नादिसमवेतत्त्वे सति प्राणित्वं पुंस्त्वम्। योनिशिश्नोभयसमवेतत्त्वे सति प्राणित्वं नपुंसकत्त्वम्। जातिरूपं लौकिकं लिङ्गं चेतनाचेतनोभयवृत्तिरस्ति, केवलान्वयि, तच्च क्वचित् आश्रयव्यङ्ग्यं भवति क्वचिच्च उपदेशव्यङ्ग्यं भवति। पुनः शास्त्रीयं लिङ्गं शब्दसाधुताप्रयोजकधर्मविशेषं रूपं भवति, चेतनाचेतनोभयसाधारणं भवति, केवलान्वयि च भवति। इदमपि स्त्रीत्वपुंस्त्वनपुंसकत्त्वभेदात् त्रिविधं भवति। तत्र सत्त्वरजस्तसमां प्राकृतगुणानाम् अपचयः स्त्रीत्त्वम्। सत्त्वरजस्तसमां प्राकृतगुणानाम् उपचयः पुंस्त्वम्। सत्त्वरजस्तसमां प्राकृतगुणानां साम्यावस्था नपुंसकत्त्वमिति कथ्यते।

सन्दर्भ–सूची :–

1. वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी, लक्ष्मीटीका, द्वितीयभागः, पत्रसंख्या।
2. महाभाष्यम् (प्रदीपोद्योतसहितम्), चतुर्थखण्डः, पत्रसंख्या 17।
3. महाभाष्यम् (प्रदीपोद्योतसहितम्), चतुर्थखण्डः, पत्रसंख्या 17।
4. काशिका (न्यासपदमञ्जरीभावबोधिनीसहिता), पत्रसंख्या 271।
5. काशिका (न्यासपदमञ्जरीभावबोधिनीसहिता), पत्रसंख्या 273–74।
6. महाभाष्यम् (प्रदीपोद्योतसहितम्), चतुर्थखण्डः, पत्रसंख्या 17।
7. वाक्यपदीयम् (अम्बाकर्त्रीव्याख्यायुतम्), तृतीयखण्डः, द्वितीयभागः, पत्रसंख्या 755।
8. महाभाष्यम् (प्रदीपोद्योतसहितम्), चतुर्थखण्डः, पत्रसंख्या 19।
9. महाभाष्यम् (प्रदीपोद्योतसहितम्), चतुर्थखण्डः, पत्रसंख्या 19।
10. महाभाष्यम् (प्रदीपोद्योतसहितम्), चतुर्थखण्डः, पत्रसंख्या 19।
11. वाक्यपदीयम् (अम्बाकर्त्रीव्याख्यायुतम्), तृतीयखण्डः, द्वितीयभागः, पत्रसंख्या 767।
12. काशिका (न्यासपदमञ्जरीभावबोधिनीसहिता), पत्रसंख्या 271।
13. महाभाष्यम् (प्रदीपोद्योतसहितम्), चतुर्थखण्डः, पत्रसंख्या 17।
14. काशिका (न्यासपदमञ्जरीभावबोधिनीसहिता), पत्रसंख्या 271।
15. काशिका (न्यासपदमञ्जरीभावबोधिनीसहिता), पत्रसंख्या 274।
16. काशिका (न्यासपदमञ्जरीभावबोधिनीसहिता), पत्रसंख्या 273।

A Study of the Attitudes of Students with Special Needs towards Inclusive Education

Dr. Sudheer Kumar Tiwari*

Research Abstract : – Inclusive education ensures its essentiality as a process of education of students with different needs, which is a new venture in the field of education and in which teaching and training is provided to the disabled children along with the non-disabled children. Determining the future of any society focuses on the relevance of its current education system. The most important reason for the relevance of inclusive education is the social value of equality. It addresses the needs of all children in the same class by underscoring that all children are equal and should be provided education regardless of their ability or disability. For the accomplishment of this program, the need of the hour is to know the mindset of students with special needs towards inclusive education. The present study will help us to know what are the attitudes of students with special needs towards inclusive education.

Key word :– Inclusive education, students with special needs, attitude.

In the present time, education has completely rejected the concept of rejection and over-protection for special children, because the feeling of over-protection is inspired by pity and the feeling of rejection is inspired by hatred. Therefore, both hinder the socialization of special children. There is ample evidence that disability is not a sign of incompetence. Today, the performance that disabled people have shown in many fields and competitions puts a question mark on the ability of normal people (Kumar, 2017). Inclusive education has recently been associated with the Indian teaching-learning system. The in-service training program being conducted through the communication module on inclusive education has passed most of the evaluation parameters. There is only a need to improve the strategies of its implementation so that the training program can be made more effective (Sanjeev and Singh, 2008). It is the responsibility of teachers to provide quality education to all learners while respecting their needs.

Practical Constraints – Some examples of attitudinal barriers to inclusive education include:

- **i. Orthodoxy-** The belief that all learners with disabilities are the same or that they are not capable of achieving academic success.
- **ii. Kindness and charity-** There is a perception that learners with disabilities should be pitied and helped rather than recognized as equal members of the learning community.
- **iii. Fear and Avoidance-** Fear of interacting with disabled learners or avoiding engaging in educational activities with them.
- **iv. Accusation-** Labeling learners with disabilities as "different" or "abnormal", which can lead to negative social attitudes and exclusion.
- **v. Lack of knowledge-** Lack of understanding about disabilities and how to support learners with disabilities in the classroom.

Behavioural barriers are important factors in inclusive education. Attitudinal barriers refer to negative attitudes, beliefs and prejudices that alter the way we view students with disabilities. Through inclusive education, we aim to create such an accessible environment where all students

***Assistant Professor, Regional Institute of Education Ajmer-Rajasthan.**

are welcomed and respected. To overcome attitudinal barriers to inclusive education, it is necessary to provide awareness and education to all students. It is also important to create a positive and supportive learning environment which recognizes and celebrates the diversity of all learners. By breaking down attitudinal barriers, inclusive education can be successful and beneficial to all students.

The present form of inclusive education in India is the result of structural changes being made for qualitative upgradation of education. The term inclusion is a social ideology. This process secures opportunities for students with special needs to learn with their non-disabled peers in regular classrooms. Thus, inclusive education is a campaign to strengthen the continuity of participation of students, including children with disabilities (Singh and Namdev, 2014).

Research Method – According to the nature of the research, quantitative method has been followed, so that the attitude of students with special needs under the inclusive education process can be determined through quantitative data.

Population and Sample – Keeping in mind the nature of the research problem and the research method, students with special needs from 10 secondary and higher secondary schools located in Delhi state have been selected through the purposive sampling technique of non-probability sample for the academic year 2020-2021. Under special students, only visually impaired, low vision impaired, deaf and locomotor disabled students have been selected.

Development of attitude measuring instrument for students with special needs – To study the attitude of students with special needs towards inclusive education, quantitative data has been collected through the Special Student Attitude Scale. In the final form of the specific student attitude scale, a total of 34 items (26 positive, 08 negative) were obtained, out of which 07 items (05 positive, 02 negative) were selected in the first dimension, peer group behaviour. In the second dimension, teacher group behaviour, 09 items (05 positive, 04 negative) were selected. In the third dimension, 08 items (06 positive, 02 negative) were selected and in the fourth dimension, teaching-learning process and co-curricular activities, 10 items (10 positive, 00 negative) have been selected.

Research Results – Descriptive main statistical values of the data displayed from the attitude scale of special students towards inclusive education; Like mean, median, mode is being displayed as 87.34, 89.50 and 90 respectively. It is clear from the mean that if the total marks are distributed among all the students, then it will be equally distributed 87.34, also since the median is 89.50 it can be said that half of the students are going to get marks less than 89.50 and half are going to get more than 89.50. The standard deviation of all the data has been measured at 7.99 and variance at 63.86. The skewness of the samples was obtained as -0.731; Which shows negative behavior. The kurtosis in the table has been measured at -0.263, which clearly shows that it is mega-curvilinear, which is clearly visible in the picture. The upper limit of all the data was calculated as 99 and the lower limit was calculated as 66, whose spread is 33.

The presented research results are based on the research findings of Pallavi (2014), Tripathi and Aman (2012), Who found in the results of their research that according to most of the special children, the teachers' attitude towards them is positive and they are satisfied with the behaviour of the teachers in the various programs conducted. The attitude of teachers towards the programs conducted for special students is positive and favorable, which shows a satisfactory positive effect towards inclusive education. Thus, most of the teachers are in favor of inclusive education, as a result of which the implementation of inclusive education is effective, but the

research findings of Khan (2017) and Bala (2017) were found to be different from the presented research results.

Conclusion – The dimensions of inclusion in the educational environment are access, acceptance, participation and achievement. Thus, it is an approach to teaching, which ensures the teaching-learning and participation of children. A key reason for this comprehensive approach is that many of these factors interact and work in conjunction. It seeks to meet the educational needs of children with special needs by combining this broad approach of inclusion and notion of educational needs with the concept of additional support for learning. All students require some form of additional support in the teaching-learning process. Therefore, inclusive education is not limited to the needs of children with special needs, rather it focuses on the needs of all children.

Reference –

1. Bala, R. (2017). A Study of Administrative, Physical and Attitudinal Barriers to Inclusive Education at Primary School Level in Haryana [Published dissertation]. Maharishi Dayanand University, Rohtak. Retrieved December 7, 2021, from http://hdl.handle.net/10603/207097.
2. Khan, E.K. (2017). Inclusion education in government primary schools: Teachers' perception. Journal of Education and Educational Development, 4(1), 32-47. Retrieved January 7, 2020, from https://files.eric.ed.gov/fulltext/ EJ1161534.pdf.
3. Kumar, S. (2017). Study of the attitude of teachers towards disabled children. Perspectives, 24(2), 67-74. Retrieved April 3, 2023, from http://www.niepa.ac.in/Download/Publications/Paripekshya/Paripekshya%20August%202017%20Issue%20Final%20for%20Niepa%20Website.pdf.
4. Pallavi, K. (2014). A study of status of inclusion of children with special needs at the elementary school level [Published dissertation]. Amity University, Noida-Uttar Pradesh. Retrieved April 3, 2022, from http://hdl.handle.net/10603/188404.
5. Sanjeev, K. And Singh, S.P. (2008). Evaluation of inclusive training program of school teachers undergoing in-service training under Sarva Shiksha Abhiyan. Perspective, New Delhi, 15(3), 75-80. Retrieved November 3, 2021, from http://www.niepa.ac.in/Download/ParipekshyaDecember2008.pdf.
6. Singh, R.R. & Namdev, H. (2014). The direction and status of inclusive education in India. Perspective, New Delhi, 21(3), 01-18. Retrieved December 16, 2020, from http://www.niepa.ac.in/Download/Publications/Paripekshya/ParipekshyaDec2014.pdf.
7. Tripathi, V.N. and Aman, A.K. (2012). Contribution of special teachers appointed under Sarva Shiksha Abhiyan in the education of disabled children. Perspectives, 19(2), 35-48. Retrieved January 26, 2019, from http://www.niepa.ac.in/Download/Publications/Paripekshya/ParipekshyaAug2012.Pdf.

Views of Swami Vivekananda for Developing Personality

Dr. Sunil Kumar Manas*

Swami Vivekananda is a great spiritual thinker of India, and he is one of the most influential philosophers and social reformers in his contemporary India, and the most successful missionaries of Vedanta to the Western world. He is also a major force in contemporary Hindu reform movements and contributed to the concept of nationalism in colonial India. He is now widely regarded as one of the most influential people of modern India and a patriotic saint. His birthday in India is celebrated as National Youth Day.

In this way, the most important ideas of Vivekananda are the importance of education, character building, Karma Yoga, Gyan Yoga, Raja Yoga, Bhakti Yoga and personality development. In this way, Vivekananda gave a new impetus to Indian thought on the global stage. Which has its own spiritual philosophy and also social cultural political awareness. There is public love and also national love. There is religious awareness and there is also a feeling of well-being. That is why the ideological philosophy of Vivekananda is going to provide knowledge to the entire world. In the book titled **Philosophical thought of Swami Vivekanand**, it has been said about his viewpoint that- "He gave expression to India's growing nationalism and spirit of self-help and independence."[1] It is further written in this book that- "Vivekananda, thought that values of modern science and the admired Western strength. he was more over, convinced that a free and honorable exchange of ideas and ideals between East and West was a desideratum of the age. he's greatest role was regeneration of India."[2] In this way Vivekananda connects the development of personality with his entire philosophy of life.

The development of one's personality, done in the right manner, is a challenging and rewarding task for every individual, particularly for the energetic youth who can gain much from it. It is challenging in that it demands hard, methodical labour, perseverance, and careful attention. And it is rewarding since no effort in this direction goes in vain. In fact, every effort brings success and satisfaction proportionate to the attempt. Moreover, it is every person's duty to work towards it, since personality development is necessary for success in any field.

In the writings, talks, and lectures of Swami Vivekananda, constructive ideas relating to personality development are profusely scattered. After culling those ideas systematically from *The Complete Works of Swami Vivekananda*, published by us, a compilation entitled *Personality Development* was published by Sri Ramakrishna Ashrama, Mysore, in December 1999.

According to the Cambridge International Dictionary of English, 'your personality is the type of person you are, which is s hown by the way you behave, feel and think.' Personality, according to the Longman Dictionary of Contemporary English, is the 'whole nature or character of a person.'

How a person behaves, feels and thinks, how he conducts himself in a given set of circumstances is largely determined by the state of his mind. Mere external appearance or a person's speech or mannerisms are only fringes of one's personality. They do not reflect the real

---

*** Head of Hindi Department, Government Arts College, Becharaji-Gujarat-384210.**

personality. Personality development in the real sense refers to deeper levels of a person. So a study of our personality should start from a clear grasp of the nature of our mind, and how it functions. same are these-

- Necessity to know our mind.
- The fourfold functions of the mind
- Memory
- Deliberation and Conceptualization
- Determination and Decision-making
- 'I' Consciousness
- More about the mind
- What is character
- What activates the body-mind system
- Faith in Oneself
- Think Positive Thoughts
- Attitude towards Failures and Mistakes
- Self-reliance
- Renunciation and Service

It is basic awareness to know what are my Aim And Purpose of my life which is providing by God. This thinks change your Mind and Life, which is changing you Corrector and Duties. The divine core of our personality is covered, as it were, by five dimensions-

- *Physical dimension* consisting of our body and senses.
- *Energy dimension* which performs digestion of food, circulation of blood, respiration and other activities in the body.
- *Mental dimension* characterized by the activities of the mind, like, thinking, feeling and emotions, etc.
- *Intellectual dimension* characterized by the determinative faculty in a person. This is also the seat of discrimination and willpower.
- *Blissful dimension* experienced as bliss during deep sleep.

Each succeeding dimension is subtler than the preceding one and pervades it. Personality development implies progressive identification with higher dimensions of personality. Thus a person identified only with the physical dimension without exercising his higher mental faculties, lives not far different from animals, whose pleasure and pain are restricted to the sensory system.

- It Is Personality That Matters
- Laws of Personality Development
- Different Layers of Personality
- Man Is Divine
- Pleasure Is Not the Goal
- How to Change Our Character?
- Influence of Thought
- Control Your Negative Emotions
- Change Yourself First
- Take the Whole Responsibility on Yourself
- How to Work?
- Work Like a Master
- Doing Good to This World
- Unselfishness Will Bring Success
- It Is Love That Pays
- Weakness Is Death
- Be Brave
- Heroism
- Faith in Oneself
- Imitation Is Bad
- What Is Ethics?
- Hold On to the Ideal
- The Power of Concentration
- Develop the Sense of Equality
- Be Free
- March On!

In the body mind complex the mental makeup or character carries greatest importance. Thinking, feeling, willing, imagination are some of the aspects of mind. Thought is the only force in the world as Swamiji says. Through thought I judge myself interact with the world. Hence mass

thinking should be avoided. A habit of deep original thinking based on well collected data and capacity to analyses with concentration will go a long way in developing personality. A person has to balance between his intellect and emotions as intellect is lame and emotions are blind. Intellect is trained by reasoning and emotions by prayers, will power are developed through taking challenges and the whole mind through continence. Life becomes meaningful when it fulfills certain felt needs.

Some concepts are very important to valuable Knowledge for developing Personality-

- 'Go on doing good, thinking holy thoughts continuously, that is the only way to suppress base impressions... Character is repeated habits and repeated habits alone can reform character.[3]
- The ideal of all education, all training, should be this man-making. But, instead of that, we are always trying to polish up the outside. What use in polishing up the outside when there is no inside? The end and aim of all training is to make the man grow. The man who influences, who throws his magic, as it were, upon his fellow-beings, is a dynamo of power, and when that man is ready, he can do anything and everything he likes; that personality put upon anything will make it work.[4]
- Pleasure is not The Goal of man, but knowledge. Pleasure and happiness come to an end. It is a istake to suppose that pleasure is the goal. The cause of all the miseries we have in the world is that men foolishly think pleasure to be the ideal to strive for. After a time man finds that it is not happiness, but knowledge, towards which he is going, and that both pleasure and pain are great teachers, and that he learns as much from evil as from good.… Good and evil have an equal share in mounding character, and in some instances misery is a greater teacher than happiness. In studying the great characters the world has produced, I dare say, in the vast majority of cases, it would be found that it was misery that taught more than happiness, it was poverty that taught more than wealth, it was blows that brought out their inner fire more than praise.[5]
- Pleasure is not the Goal Wisdom (*Jnana*) is the goal of all life.[5]
- If you really want to judge of the character of a man, look not at his great performances. Every fool may become a hero at one time or another. Watch a man do his most common actions; those are indeed the things which will tell you the real character of a great man. Great occasions rouse even the lowest of human beings to some kind of greatness, but he alone is the really great man whose character is great always, the same wherever he be.[6]
- The great secret is—absence of jealousy. Be always ready to concede to the opinions of your brethren, and try always to conciliate. That is the whole secret. Fight on bravely! Life is short! Give it up to a great cause.[7]
- Every step that has been really gained in the world has been gained by love; criticizing can never do any good, it has been tried for thousands of years. Condemnation accomplishes nothing.[8]
- *If* what we are now has been the result of our own past actions, it certainly follows that whatever we wish to be in future can be produced by our present actions; so we have to know how to act.[9]
- Wisdom, knowledge, wealth, men, strength, prowess, and whatever else nature gathers and provides us with, are all only for diffusion, when the moment of need is at hand. We often forget this fact, put the stamp of "*mine only*" upon the entrusted deposits, and *pari passu*, we sow the seed of our own ruin.[10]

- Go on bravely. Do not expect success in a day or a year. Always hold on to the highest. Be steady. Avoid jealousy and selfishness. Be obedient and eternally faithful to the cause of truth, humanity, and your country, and you will move the world. Remember it is the person, the life, which is the secret of power—nothing else.… Jealousy is the bane of all slaves. It is the bane of our nation. Avoid that always. All blessings attend you and all success.[11]
- Our first duty is not to hate ourselves, because to advance we must have faith in ourselves first and then in God. He who has no faith in himself can never have faith in God.[12]
- Concentration is the systematic development of the mind. To me the very essence of education is concentration of mind, not the collecting of facts. If I had to do my education over again, and had any voice in the matter, I would not study facts at all. I would develop the power of concentration and detachment, and then with a perfect instrument I could collect facts at will. Side by side, in the child, should be developedthe power of concentration and detachment.[13]

So life should be made meaningful where you will have 1) Deep sense of satisfaction and contentment. 2) Whole hearted action 3) Creative dreaming 4) Love and care 5) Appreciation of beauty 6) Wonder about the mystery of life 7) Innocent fun 8) Life lived here & now. It is said that " One who is content in mind is the richest person.

Our personal development is more important that all other types of development economic educational rural etc. because all these other kinds of development are undertaken only for the benefit of man. Most of the people don't consciously develop their personality as they are not aware of it. Our appearance, speech and actions become apparent to us only through others as we don't see ourselves or our behaviour. Hence study and development of personality is to be done with three things in mind 1) Individual reflection 2) Social interaction and 3) Work. An individual with self reflection interacting with others especially through work is in a position to analyse & develop his / her personality.

Thus, we can say that- “All this beautiful world is very good, because it gives us time and opportunity to help others.”[14]

References :-

1. Philosophical thought of Swami Vivekanand - Jay Sharma Chetan Agrawal, Common Wealth publishers Private Limited 2014, P.P.-3
2. Ibit, P.P.-3
3. The Complete Works of Swami Vivekananda,- I, Advaita Ashrama, Kolkata PP. 208.
4. The Complete Works of Swami Vivekananda,- II, PP. 13-15.
5. The Complete Works of Swami Vivekananda,- I, PP. 27.
6. The Complete Works of Swami Vivekananda,- I, PP. 29.
7. The Complete Works of Swami Vivekananda,- V, Kolkata PP. 37.
8. The Complete Works of Swami Vivekananda,-VI I, , PP. 27-28.
9. The Complete Works of Swami Vivekananda,- I, PP. 31.
10. The Complete Works of Swami Vivekananda, ,PP. 294.
11. The Complete Works of Swami Vivekananda,-VII, PP. 108.
12. The Complete Works of Swami Vivekananda,- I, PP. 38
13. The Complete Works of Swami Vivekananda,- VI, PP. 37-39.
14. Personality Development : Swami Vivekananda, Advaita Ashrama, Kolkata, July 2009, PP- 71.

ഇ★ഢ

Role of Agriculture towards Economic Growth & Development in M.P.

Dr. Sanchet Singh deshmukh*
Dr. Raj Kumar Gautam**

Abstract :- The study explored empirically the role of agriculture in development of MP. The study is borne out of the curiosity to examine the role agriculture plays in the development of a nation having being neglected in this part of the world over a considerable period of time by the government and policy makers while the whole attention is paid on the other sectors. The quantitative technique is employed in a multivariate study with the adaptation of the Solow Growth model that include Capital proxy by Gross Capital Formation (GCF), labour proxy by post-secondary school enrolment, Agricultural Output and Economic Growth and Development proxy by RGDP. Restricted Error Correction Model is used with the aid of Econometrics View Package (e-view). This paper reveals that the Agriculture plays a significant role in economic development of the nation. In addition, the sector has been neglected to the extent that its contribution to the GDP towards economic growth if the country.

Key words :- Agriculture, MP, economy, GDP.

Introduction :- Majority of people in MP live and work in rural area. Almost 75% are rurally based compared to less than 25% in urban area. Similarly, over 58% of the labour force engaged in agriculture. In MP the sector contributes about 55% of gainful employment and almost 40 % of the share of GDP, before the discovery of oil, this figure is as high as between 75 – 80% of the GDP. Nevertheless, this current figure for the GDP share of agriculture sector is quite high when we compared it with the average of 27% for low income nations in Sub-Sahara Africa (WDI, 2010).

The concept of Agriculture :- Agriculture is a way of life that involves production of animals, fishes, crops, forest resources for the consumption of man and supplying the agro-allied product required by our sectors. It is seen as the inherited and dominant occupation employing about 70% of India. Though, subsistence agriculture is practiced in this part of the world, it will not be an overstatement to say that it is the life-wire of the economies of developing countries.

Structural Change in the Agricultural Sector :- The sector has an insignificant average annual growth of 0.8% during the decade of 1959/60 and 1969/70 and a decline of -0.7% on the average through the 70/81 decade; implying a stagnation more or less during the two decades 1960- 1980. Considering the period 1970 to 85 before the structural adjustment programme (SAP), the growth rate was a little above zero (0.3%). In 2010- 2023 there were significant growth rate of 3.9%. The decades of 1981 to 1990, when foreign exchange earnings decline sharply. The sector witnesses a significant growth rate of 4.1%. Any growth rate of agricultural sector that did not exceed population growth of 2.5 to 3.0 per cent is considered insignificant if not disastrous, as it would lead to starvation or food insecurity.

he role of agriculture to economic development will be viewed under the following :- Provision of food for the rapid growing population (FOOD CONTRIBUTION ROLE) Increasing demand for industrial products and thus necessitating expansion of secondary and tertiary output. (PROMOTION OF INDUSTRIALISATION) Providing additional foreign exchange earnings for the import of capital goods for development through increased agricultural exports (FOREIGN EXCHANGE CREATION ROLE) Increase rural income to be mobilised by state (CAPITAL ACCUMULATION).

Review of Literature :- According to Jerzy W. (2022), agriculture is that kind of activity which joins labour, land or soil, live animals, plants, solar energy and so on; the Minister of Agriculture is the Minister

---

*** Assistant professor, school of commerce and management, Sardar patel university, Balaghat.**
**** Associate professor , GS college of commerce and economics, Jabalpur**

of the beginning of life. So, people who are involved with that kind of activity are involved in something special. In recognition of this prominent role the Minister of Agriculture and Federal Government of MP. has taken a giant stride to treat agriculture as serious political, economic and investment issue in MP.

(Michael and Stephen, 2023). Provident productive employment (EMPLOYMENT GENERATION) Improvement of welfare of the rural people (SOCIO-ECONOMIC ADVANCEMENT) Characterizing the role of agriculture in economic development have been classical themes in development economics

Methodology :- This study looks into the methodology and the theoretical framework. The study looks at the Stylised facts briefly. The Econometrics analysis is carried out to determine the significant of role of Agriculture in the development objectives. The prominent role agriculture plays in the development of any nation is examined through the model of complementarities between the agricultural sector itself and the industrial sector of the economy.

Model of Complementarities between Agricultural Sector and Industrial Sector :- First of all, the study first examined the condition when agriculture emerge from the subsistence status to the status where it started producing food at marketable surplus, providing capital and labour for the industrial sector; and, its foreign exchange provision role. The model below explains how the agriculture contributes significantly to the industry through the complementary role.

Theoretical framework :- However, the Solow version of Neo classical is more suitable for this study due to its dynamism. The Solow model focuses on four variables: Output (Y), Capital (K), labour (L), and "knowledge" or the effectiveness of labour (A). At any point, the economy has some of amount of capital, labour and knowledge Romer. These are combines to produce output. The production function takes the form:

$Y(t) = f(K(t), A(t), L(t))$

$Y(t)$ = output at time t, $K(t)$ = capital at time t, $L(t)$ = labour at time t, $A(t)$ = knowledge at time t. $A(t)$ and $L(t)$ enter the model multiplicatively, hence $A(t) L(t)$ is effective labour

Note, there is technology progress if the amounts of knowledge (A) increase.

Basic assumptions guiding this theory :-

1) Constant return to scale, in its two argument, doubling the quantities of capital and effective labour (e.g. doubling K and L with A held fixed) doubles the output. Multiply both variable by any non-negative constant 'C' cause the change in output by the same factor $f(CK(t), CAL(t)) = C f(K(t), A(t)L(t))$ for $C > 0$

2) The second assumption is that other inputs are not relatively important i.e. the model neglects natural resources.

The intensive production function assumed that Inada condition is satisfied.

$f'(K(t)) > 0$ and $f''(K(t)) < 0$

Hence, the specific example of production function is the Cobb Douglas function

$Y = f(K(t), A(t) L(t)) = K_{(t)}^{\alpha} A_{(t)} L_{(t)}^{1-\alpha} \quad 0 < \alpha < 1$

$Y/AL = K/AL^{\alpha} (AL/AL)^{1-\alpha}$

$Y/AL = y$ and $K/AL = k$.

Therefore, $y = k^{\alpha}$ (3.2.5) $Y_{(t)} = f(k_{(t)})$

This production function is very useful for the framework of the research at hand and shall be adapted to incorporate the variables of analysis in this study.

Movement of Labour / knowledge, Capital over time

Growth rate of Capital = $\Delta K/K \quad \Delta K = K(t) - K(t-1)$

Growth rate of Labour = $\Delta L/L \quad \Delta L = L(t) - L(t-1)$

Growth rate of knowledge = $\Delta A/A \quad \Delta A = A(t) - L(t-1)$

Knowledge is growing at the rate **g** Therefore, $k = K(t) / A(t)L(t)$

Using Quotient Rule to derive the fundamental Solow equation model from equation

Hence, $\Delta k = \frac{\Delta K(t)(A(t)L(t)) - (\Delta A(t)L(t))\,K(t) - (A(t)\,\Delta L(t))\,K(t)}{(A(t)L(t))2}$

$\Delta k(t) = \frac{\Delta K(t) - \Delta A(t)\,K(t) - \Delta L(t))\,K(t)}{A(t)L(t)\,A(t)\,(A(t)L(t))\,L(t)(\,A(t)L(t))}$

Note: $\Delta Kt = sY(t) - dK(t)$,

$\frac{\Delta A(t)}{A(t)} = \mathbf{g}$, $\frac{\Delta L(t)}{L(t)}$ = n and given that Y/AL = f(k)

$\Delta k(t) = \frac{sY(t) - dK(t) - k(t)\mathbf{g} - k(t)\mathbf{n}}{A(t)L(t)} = sf(k(t)) - dk(t) - g(k(t)) - n(k(t))$

$\Delta k(t) = sf(k(t)) - (n+g+d)\,k(t)$ (Key equation of Solow model)

f(k(t)) is output per unit of effective labour

*s*f(k(t)) is actual investment per unit of effective labour

(n+g+d) k(t) is breakeven investment.

A Baseline Case: Economic Growth, Agriculture :- The analysis is extended to incorporate the Agricultural factors as they affect economic growth. Thus, the production function 3.1, becomes

$$\mathbf{Y(t)} = K_{(t)}^{\beta}\, A\boldsymbol{G}\boldsymbol{O}_{(t)}^{\lambda}\, (\,A_{(t)}^{\lambda}\, L_{(t)}\,)^{\gamma}$$

Note :

Y(t) is economic growth proxy by GDP Per Capita Constant 2000 US Dollar A(t) and L(t) enter the model multiplicatively, hence A(t) L(t) is effective Labour proxy by Enrolment of Post Primary School, Capital at period *t* proxy by Gross Capital Formation AGO is the Agricultural output. Log both sides of the equation

$$\ln Y(t) = \beta \ln K(t) + \lambda \ln AG(t) + \gamma (\ln A(t) + \ln L(t))$$

Differentiating both sides with respect to time, we obtain the following:

$$gy = \beta gk + \lambda g AG + \gamma (n+g)$$

At the balance Growth Path (BGP) rate of growth of Y and growth of K is the same.

Hence, $gy = \beta gk$

Therefore, $gy = gk = \beta gk$.

$gy - \beta gy = \lambda\, AG + \gamma\, (n+g\,)$

$$\frac{gy\,(1-\beta)}{1-\beta} = \frac{\lambda\,(gAG\,)}{1-\beta} + \frac{\gamma\,(n+g)}{1-\beta}$$

Therefore, the extended version of the Solow growth model indicates that Agriculture is one of the determinants of the economic growth and development.

The Functional Form of the Model :- For the purpose of the research work the relationship among the dependent and independent variables is presented as follows:

PCGDP = f (GCF, ENR, AGO)

Model Specification :- The study employed Error Correction Model to determine the impact of Agric play substantial role on Economic development.

$\ln RGDPt = \alpha 1 + \beta 2 \ln GCFt + \gamma 3 \ln ENRt + \lambda 4 \ln AGOt$

PCGDP = Gross Domestic Product per capita 2000 US Dollar

GCF= Gross Capital Formation

ENR= Post-primary school Enrolment

AGO= Agricultural output

Data Analysis : Stylised facts - The trend of agricultural output and the Economic growth of MP from the year 2017 to 2023. The GDP value before the year 1993 was negligible while is it seen from the charts and the table that as at that period and earlier period, the share of agriculture in the GDP value is very high. It is seen from 2018 the agricultural output as a low share or contribution to the Real GDP. This is depicted by the continuous high rise of the GDP at a rate that is significantly higher than the agricultural output value. This is a reflection that there are others factors that accounts for the increase in Real GDP other than Agricultural output contribution. The reason for this is glaring; the contribution of crude oil is definitely accounting for this difference. It is important to mention that due to the high contribution of the crude oil to

the GDP government has neglected the sector. The previous and current Government have taken a bold and giant step to revive the sector in to avoid over reliance on diminishable fossil fuel that is the pivotal of the economy in present time.

Table 1: Unit Root test applied to variables

Variables	**ADF test Critical Values**	**ADF Test Statistic**	**Prob-Values**	**Decision Rules**
LNGDP	1% -3.679322	-3.596894	0.0122	1(1)
	5% -2.967767			
LNGCF	1% -3.711457	-4.048571	0.0045	
	5% -2.981038			
LNENR	1% -3.984974	-3.984974	0.0047	1(1)
	5% -3.679322			
LNAGO	1% -3.670170	-3.816726	0.0070	1(1)

The unit root test conducted on the variables, the variables found to be non-stationary at level. A further test of stationarity by first level of difference shows the variables attained stationarity. LNGDP, LNGCF, LNER and LNAGO attained the stationarity by first level of differencing at one percent level of significance. The results of this test necessitate the performance of Cointegration test in order to confirm the existence of long run association ship among the variables.

Cointegration Test :- Having differenced the time series, it is certain that it is no more on the long run status. Therefore, it is necessary to conduct Cointegration test for the model to determine if there is long run association among the variables.

Table 2: Presentation of Johansen Test of Cointegration

Hypotheses: Number of Cointegrating Equations	Eigen Value	Max-Eingen Stat	0.05 Critical Value	Prob. Value	Trace Statistic	0.05 Critical Value	Probability Value
0*	0.918505	72.70914	0.0000	0.0136	115.7070	47.85613	0.0000
1*	0.657074	31.13162	0.0015	0.0928	42.99786	29.79707	0.0009
2	0.31977	11.17471	0.1457	0.8227	11.96087	15.49471	0.1588
3	0.026745	0.786166	0.3753	0.3788	0.786166	3.841466	0.3753

Source : computed by author; see appendix

Trace test and Max-Eingen test indicates 2 cointegrating eqn(s) at the 0.05 level

***** denotes rejection of the hypothesis at the 0.05 level

******MacKinn-Haug-Michelis (1999) p-values

There is 2 cointegrated equation at the 0.05 level. The implication of this is that there is long run relationship or association ship among the variables; consequentially, this necessitates the use of restricted VAR i.e. Vector Error Correction Model.

Impulse Response Function :- Analysis of Impulse response function will be suitable to depict the significant role play by the Agriculture in the development of Economy.

Response of Economic Growth to Shock from Agriculture Output :- The IRF shows that economic growth responds to the agriculture output in the positive region. This indicates the significant role play by agricultural sector.

Analysis of Variance Decomposition :-

- Variance Decomposition of LNAGO
- Variance Decomposition of LNRGDP

The variance decomposition analysis reflected the significant role plays by the agricultural sector in the development process. It is seen from the decomposition of economic growth proxy by RGDP the Agricultural sector is attributed to the largest percentage of the decomposed value of 29.20. Most importantly, from the decomposition of agricultural sector it is seen that the sector plays major role to economic development as the economic growth received larger decomposed value as large as 61.32. This is to say all the above discussion on the role of agriculture in the development of the nation is not by chance. It indicates that all the sectors in the economy lean on the agriculture sector.

Conclusion :- The land use and tenure system remain largely the same in spite of the land use act. In order to improve the performance of agricultural sector in promoting development objective, the land use act should be revisited by government and made more favourable to the farmers. The employment of low – productivity primitive technology persists in MP agricultural sector predominated by peasant farmers. It is difficult to experience significant increase in productivity. In fact, with the unceasing rural-to urban migration, old men, women, and children are largely left behind with the likelihood that productivity and output will fall. Ineffective Government support, government merely plays lip service to agricultural development efforts through declaration of laudable objective of food self-sufficiency has always been orchestrated over the decades through various strategies like ‘Operation Feed the Nation’ of the 70’s, Green Revolution of the early 80’s, Better-life for rural women’ of the 80’s, Family Economic Advancement Programme (FEAP of the 1990s etc.) despite these in MP still imports substantial food items like rice, wheat, poultry products and milk products. The government credit support continues to fail and that is why changes are continually being made to the credit institutions and policies.

The political instability and insecurity to life and property exert a heavy toll on the agricultural sector. Cattle herders are always clashing with the crop farmers in the agricultural rich middle belt. Considering all these major problems, if remedial policies are failed to be put in place the contribution of the sector to the promotion of development will not be encouraging

References :-

1. Randy S. (2021): How Important is the 'non-traditional' Economic Roles of Agriculture in Development? : Centre for International Economic Studies.no.0018
2. Paul W. (2022): The Role of Agriculture in Economic Development: Visible and Invisible Surplus Transfers: International Potato Center.
3. Fashola M. (2022): Agricultural Development in Nigeria: Issues in money, finance and economic management in Nigeria. University of Lagos. Lagos.
4. Thirlwall A. (2020). Growth and Development: virinda publications. India.
5. Jhingan M. L. (2021). The Economics of development and Planning: virinda.
6. Michael and Stephen (2022): Economic development: Pearson. London.
7. Agric Biz (2023): Agricultural Transformation Agenda: Af DB Okays $152 million for Nigeria.
8. Central Bank of Nigeria (2023) Annual Report and Statements of Accounts as at 31st Dec Abuja: CBN Central Bank of Nigeria. 2008, Statistical Bulletin, Golden Jubilee Edition.

ഌ★ര

आलोचन दृष्टि-परिवार की ओर से भावभीनी-श्रद्धांजलि

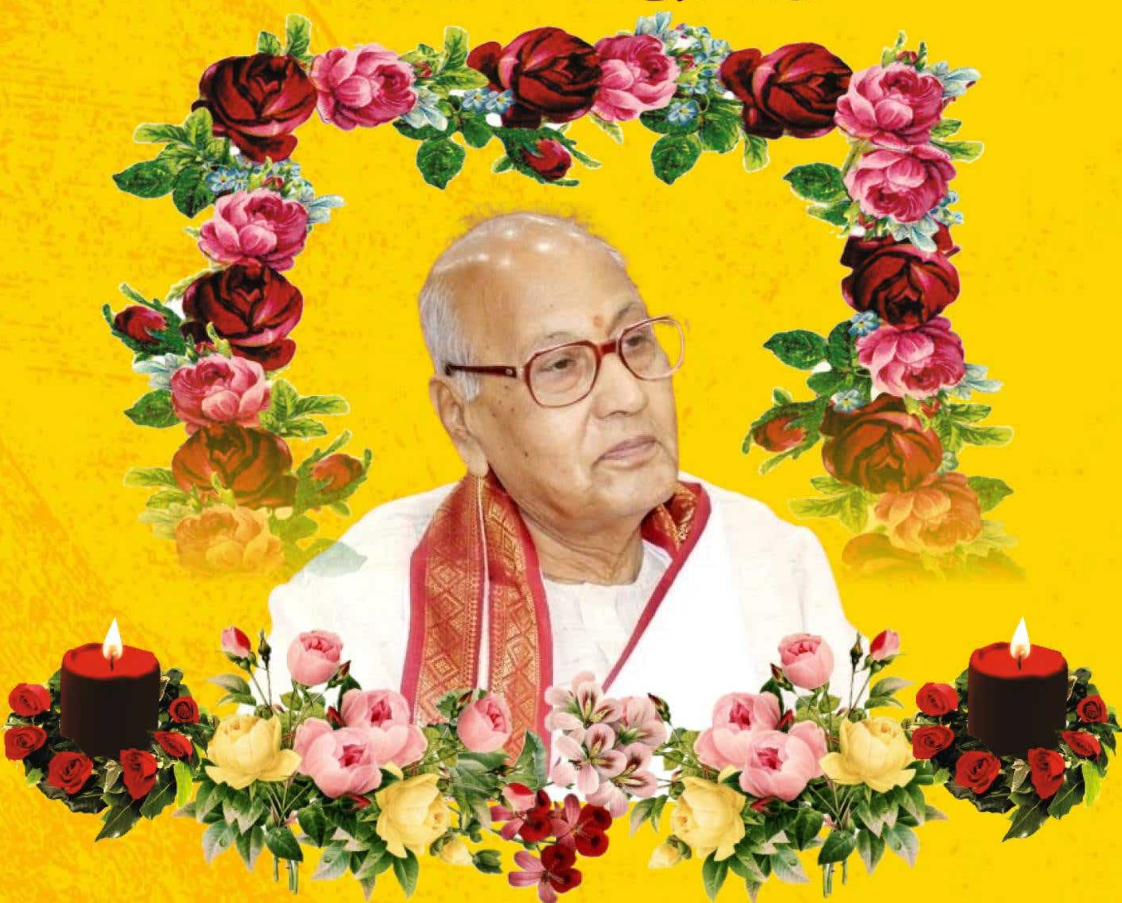

आचार्य कमलेश दत्त त्रिपाठी

(जन्म : 04 अगस्त, 1938- अवसान 03 दिसंबर, 2023)

आचार्य कमलेशदत्त त्रिपाठी कश्मीरी-शैव-दर्शन के महान आचार्य रहे हैं; भारत अध्ययन केन्द्र, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के इमेरिटस प्रोफेसर रहे हैं; संस्कृत और संस्कृति-ज्ञान के वट-वृक्ष रहे हैं; आचार्य भरतमुनि के नाट्यशास्त्र और संस्कृत-नाटको के मर्मज्ञ आचार्य रहे हैं और महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा के माननीय कुलाधिपति जैसे तमाम पदों को भी सुशोभित किया है। आप सच्चे अर्थों में मनीषी एवं ज्ञानी-ध्यानी महापुरुष रहे हैं।.... मैं आपको आलोचन-दृष्टि-परिवार की ओर से भावभीनी-श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

\- डॉ. सुनील कुमार मानस

आलोचन दृष्टि
आजाद नगर, बिन्दकी, जनपद–फतेहपुर,
उ0प्र0–212635
ई–मेल : aalochan.p@gmail.com